है। गायत्री देवी सांख्यायन गोत्रमें उत्पन्न हुई हैं। तीनों लोक उनके तीन चरण हैं। पृथ्वी उनके उदरमें स्थित है। पैरसे लेकर मस्तकतक शरीरके चौबीस स्थानोंमें गायत्रीके चौबीस अक्षरोंका न्यास करके द्विज ब्रह्म-लोकको प्राप्त होता है तथा प्रत्येक अक्षरके देवताका ज्ञान प्राप्त करनेसे विष्णुका सायुज्य मिलता है। अब मैं गायत्रीका दूसरा निश्चित लक्षण बतलाता हूँ। वह अठारह अक्षरोंका यजुर्मन्त्र है। 'अग्नि' शब्दसे उसका आरम्भ होता है और 'स्वाहा' के हकारपर उसकी समाप्ति। जलमें खड़ा होकर इस मन्त्रका सौ बार जप करना चाहिये। इससे करोड़ों पातक और उपपातक नष्ट हो जाते हैं तथा जप करनेवाले पुरुष ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त होते हैं। वह मन्त्र इस प्रकार है—**'ॐ अग्नेर्वाक्पुंसि यजुर्वेदेन जुष्टा सोमं पिब स्वाहा'**। इसी प्रकार विष्णु-मन्त्र, माहेश्वर महामन्त्र, देवीमन्त्र, सूर्यमन्त्र, गणेश-मन्त्र तथा अन्यान्य देवताओंके मन्त्रोंका जप करनेसे भी मनुष्य पापरहित होकर उत्तम गति पाता है। जिस किसी कुलमें उत्पन्न हुआ ब्राह्मण भी यदि जप-परायण हो तो वह साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है; उसका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। ऐसे ब्राह्मणको प्रत्येक पर्वपर विधिपूर्वक दान देना चाहिये। इससे दाताको करोड़ों जन्मोंतक अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो ब्राह्मण स्वाध्यायपरायण होकर स्वयं पढ़ता, दूसरोंको पढ़ाता और संसारमें द्विजातियोंके यहाँ धर्म, सदाचार, श्रुति, स्मृति, पुराण-संहिता तथा धर्मसंहिताका श्रवण कराता है, वह इस पृथ्वीपर भगवान् श्रीविष्णुके समान है। मनुष्यों और देवताओंका भी पूज्य है। उस तीर्थस्वरूप और निष्पाप ब्राह्मणका बल अक्षय होता है। उसका आदरपूर्वक पूजन करके मनुष्य श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है। जो द्विज गायत्रीके प्रत्येक अक्षरका उसके देवतासहित अपने शरीरमें न्यास करके प्रतिदिन प्राणायामपूर्वक उसका जप करता है, वह करोड़ों जन्मोंके किये हुए सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता है। इतना ही नहीं, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होकर प्रकृतिसे परे हो जाता है; इसलिये नारद! तुम प्राणायामसहित गायत्रीका जप किया करो।

**नारदजीने पूछा**—ब्रह्मन्! प्राणायामका क्या स्वरूप है, गायत्रीके प्रत्येक अक्षरके देवता कौन-कौन हैं तथा शरीरके किन-किन अवयवोंमें उनका न्यास किया जाता है? तात! इन सभी बातोंका क्रमशः वर्णन कीजिये।

**ब्रह्माजी बोले**—प्रत्येक देहधारीके गुदादेशमें अपान और हृदयमें प्राण रहता है; इसलिये गुदाको सङ्कुचित करके पूरक क्रियाके द्वारा अपान वायुको प्राणवायुके साथ संयुक्त करे। तत्पश्चात् वायुको रोककर कुम्भक करे [और उसके बाद रेचककी क्रियाद्वारा वायुको बाहर निकाले]। पूरक आदि प्रत्येक क्रियाके साथ तीन-तीन बार प्राणायाम-मन्त्रका जप करना चाहिये]। द्विजको तीन प्राणायाम करके गायत्रीका जप करना उचित है। इस प्रकार जो जप करता है, उसके महापातकोंकी राशि भस्म हो जाती है। तथा दूसरे-दूसरे पातक भी एक ही बारके मन्त्रोच्चारणसे नष्ट हो जाते हैं। जो प्रत्येक वर्णके देवताका ज्ञान प्राप्त करके अपने शरीरमें उसका न्यास करता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है; उसे मिलनेवाले फलका वर्णन नहीं किया जा सकता। बेटा! प्रत्येक अक्षरके जो-जो देवता हैं, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। [इन अक्षरोंका जप करनेसे द्विजको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता]। प्रथम अक्षरके देवता अग्नि, दूसरेके वायु, तीसरेके सूर्य, चौथेके वियत् (आकाश), पाँचवेंके यमराज, छठेके वरुण, सातवेंके बृहस्पति, आठवेंके पर्जन्य, नवेंके इन्द्र, दसवेंके गन्धर्व, ग्यारहवेंके पूषा, बारहवेंके मित्र, तेरहवेंके त्वष्टा, चौदहवेंके वसु, पंद्रहवेंके मरुद्गण, सोलहवेंके सोम, सतरहवेंके अङ्गिरा, अठारहवेंके विश्वेदेव, उन्नीसवेंके अश्विनीकुमार, बीसवेंके प्रजापति, इक्कीसवेंके सम्पूर्ण देवता, बाईसवेंके रुद्र, तेईसवेंके ब्रह्मा और चौबीसवेंके श्रीविष्णु हैं। इस प्रकार चौबीस

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

अक्षरोंके ये चौबीस देवता माने गये हैं।* गायत्री मन्त्रके इन देवताओंका ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर सम्पूर्ण वाङ्मय (वाणीके विषय) का बोध हो जाता है। जो इन्हें जानता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मपदको प्राप्त होता है।

विज्ञ पुरुषको चाहिये कि अपने शरीरके पैरसे लेकर सिरतक चौबीस स्थानोंमें पहले गायत्रीके अक्षरोंका न्यास करे। 'तत्'का पैरके अँगूठेमें, 'स' का गुल्फ (घुट्ठी) में, 'वि'का दोनों पिंडलियोंमें, 'तु'का घुटनोंमें, 'र्व'का जाँघोंमें, 'रे'का गुदामें, 'ण्य'का अण्डकोषमें, 'म्'का कटिभागमें, 'भ'का नाभिमण्डलमें, 'र्गो'का उदरमें, 'दे'का दोनों स्तनोंमें, 'व'का हृदयमें, 'स्य'का दोनों हाथोंमें, 'धी'का मुँहमें, 'म'का तालुमें, 'हि' का नासिकाके अग्रभागमें, 'धि'का दोनों नेत्रोंमें, 'यो'का दोनों भौंहोंमें, 'यो'का ललाटमें 'नः'का मुखके पूर्वभागमें, 'प्र'का दक्षिण भागमें, 'चो'का पश्चिम भागमें और 'द'का मुखके उत्तर भागमें न्यास करे। फिर 'यात्'का मस्तकमें न्यास करके सर्वव्यापी स्वरूपसे स्थित हो जाय। धर्मात्मा पुरुष इन अक्षरोंका न्यास करके ब्रह्मा, विष्णु और शिवका स्वरूप हो जाता है। वह महायोगी और महाज्ञानी होकर परम शान्तिको प्राप्त होता है।

नारद ! अब सन्ध्या-कालके लिये एक और न्यास बतलाता हूँ, उसका भी यथार्थ वर्णन सुनो। **'ॐ भूः'** इसका हृदयमें[1] न्यास करके, **'ॐ भुवः'**का सिरमें[2] न्यास करे। फिर **'ॐ स्वः'**का शिखामें[3], **'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्'**का समस्त शरीरमें[4], **'ॐ भर्गो देवस्य धीमहि'** इसका नेत्रोंमें[5] तथा **'ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्'**का 'दोनों [6]हाथोंमें न्यास करे। तत्पश्चात् **'ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्'** का उच्चारण करके जल-स्पर्श मात्र करनेसे द्विज पापसे शुद्ध होकर श्रीहरिको प्राप्त होता है।

इस प्रकार व्याहृति और बारह ॐकारोंसे युक्त गायत्रीका सन्ध्याके समय कुम्भक क्रियाके साथ तीन बार जप करके सूर्योपस्थानकालमें जो चौबीस अक्षरोंकी गायत्रीका जप करता है, वह महाविद्याका अधीश्वर होता है और ब्रह्मपदको प्राप्त करता है।

व्याहृतियोंसहित इस गायत्रीका पुनः न्यास करना चाहिये। ऐसा करनेसे द्विज सब पापोंसे मुक्त होकर श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। न्यास-विधि यह है—**'ॐ भूः पादाभ्याम्'** का उच्चारण करके दोनों चरणोंका स्पर्श करे। इसी प्रकार **'ॐ भुवः जानुभ्याम्'** कहकर दोनों घुटनोंका, **'ॐ स्वः कट्याम्'** बोलकर कटिभागका, **'ॐ महः नाभौ'** का उच्चारण करके नाभिस्थानका, **'ॐ जनः हृदये'** कहकर हृदयका, **'ॐ तपः करयोः'** बोलकर दोनों हाथोंका, **'ॐ सत्यं ललाटे'** का उच्चारण करके ललाटका तथा गायत्री-मन्त्रका पाठ करके शिखाका स्पर्श करना चाहिये।

सब बीजोंसे युक्त इस गायत्रीको जो जानता है, वह मानो चारों वेदोंका, योगका तथा तीनों प्रकारके

---

* आग्नेयं प्रथमं ज्ञेयं वायव्यं तु द्वितीयकम्। तृतीयं सूर्यदैवत्यं चतुर्थं वैयतं तथा॥
पञ्चमं यमदैवत्यं वारुणं षष्ठमुच्यते। सप्तमं बार्हस्पत्यं तु पार्जन्यं चाष्टमं विदुः॥
ऐन्द्रं च नवमं ज्ञेयं गान्धर्वं दशमं तथा। पौष्णमेकादशं विद्धि मैत्रं द्वादशकं स्मृतम्॥
त्वाष्ट्रं त्रयोदशं ज्ञेयं वासवं तु चतुर्दशम्। मारुतं पञ्चदशकं सौम्यं षोडशकं स्मृतम्॥
आङ्गिरसं सप्तदशं वैश्वदेवमतः परम्। आश्विनं चैकोनविंशं प्राजापत्यं तु विंशकम्॥
सर्वदेवमयं ज्ञेयमेकविंशकमक्षरम्। रौद्रं द्वाविंशकं ज्ञेयं ब्राह्मं ज्ञेयमतः परम्॥
वैष्णवं तु चतुर्विंशमेता अक्षरदेवताः। (४३। १६९—१७५)

१. ॐ भूरिति हृदये। २. ॐ भुवः शिरसि। ३. ॐ स्वः शिखायै। ४. ॐ तत्सवितुर्वरेण्यमिति कलेवरे। ५. ॐ भर्गो देवस्य धीमहीति नेत्रयोः। ६. ॐ धियो यो नः प्रचोदयादिति करयोः। इन छः वाक्योंको क्रमशः पढ़कर सिर आदि छः अङ्गोंका स्पर्श करना चाहिये।

(वाचिक, उपांशु और मानसिक) जपका ज्ञान रखता है। जो इस गायत्रीको नहीं जानता, वह शूद्रसे भी अधम माना गया है। उस अपवित्र ब्राह्मणको पितरोंके निमित्त किये हुए पार्वण श्राद्धका दान नहीं देना चाहिये। उसे कोई भी तीर्थ स्नानका फल नहीं देता। उसका किया हुआ समस्त शुभ-कर्म निष्फल हो जाता है। उसकी विद्या, धन-सम्पत्ति, उत्तम जन्म, द्विजत्व तथा जिस पुण्यके कारण उसे यह सब कुछ मिला है, वह भी व्यर्थ होता है। ठीक उसी तरह, जैसे कोई पवित्र पुष्प किसी गंदे स्थानमें पड़ जानेपर काममें लेनेयोग्य नहीं रह जाता। मैंने पूर्वकालमें चारों वेद और गायत्रीकी तुलना की थी, उस समय चारों वेदोंकी अपेक्षा गायत्री ही गुरुतर सिद्ध हुई; क्योंकि गायत्री मोक्ष देनेवाली मानी गयी है। गायत्री दस बार जपनेसे वर्तमान जन्मके, सौ बार जपनेसे पिछले जन्मके तथा एक हजार बार जपनेसे तीन युगोंके पाप नष्ट कर देती है।* जो सबेरे और शामको रुद्राक्षकी मालापर गायत्रीका जप करता है, वह निःसन्देह चारों वेदोंका फल प्राप्त करता है। जो द्विज एक वर्षतक तीनों समय गायत्रीका जप करता है, उसके करोड़ों जन्मोंके उपार्जित पाप नष्ट हो जाते हैं। गायत्रीके उच्चारणमात्रसे पापराशिसे छुटकारा मिल जाता है—मनुष्य शुद्ध हो जाता है। तथा जो द्विजश्रेष्ठ प्रतिदिन गायत्रीका जप करता है, उसे स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

जो नित्यप्रति वासुदेवमन्त्रका जप और भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंमें प्रणाम करता है, वह मोक्षका अधिकारी हो जाता है। जिसके मुखमें भगवान् वासुदेवके स्तोत्र और उनकी उत्तम कथा रहती है, उसके शरीरमें पापका लेशमात्र भी नहीं रहता। वेदशास्त्रोंका अवगाहन करने—उनके विचारमें संलग्न रहनेसे गङ्गा-स्नानके समान फल होता है। लोकमें धार्मिक ग्रन्थोंका पाठ करनेवाले मनुष्योंको करोड़ों यज्ञोंका फल मिलता है। नारद ! मुझमें ब्राह्मणोंके गुणोंका पूरा-पूरा वर्णन करनेकी शक्ति नहीं है। ब्राह्मणके सिवा, दूसरा कौन देहधारी है, जो विश्वस्वरूप हो। ब्राह्मण श्रीहरिका मूर्तिमान् विग्रह है। उसके शापसे विनाश होता है और वरदानसे आयु, विद्या, यश, धन तथा सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। ब्राह्मणोंके ही प्रसादसे भगवान् श्रीविष्णु सदा ब्रह्मण्य कहलाते हैं। जो ब्रह्मण्य (ब्राह्मणोंके प्रति अनुराग रखनेवाले) देव हैं, गौ और ब्राह्मणोंके हितकारी हैं तथा संसारकी भलाई करनेवाले हैं, उन गोविन्द श्रीकृष्णको बारम्बार नमस्कार है।† जो सदा इस मन्त्रसे श्रीहरिका पूजन करता है, उसके ऊपर भगवान् प्रसन्न होते हैं तथा वह श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त करता है। जो इस धर्मस्वरूप पवित्र आख्यानका श्रवण करता है, उसके जन्म-जन्मान्तरोंके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। जो इसे पढ़ता, पढ़ाता तथा दूसरे लोगोंको उपदेश करता है, उसे पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता। वह इस लोकमें धन, धान्य, राजोचित भोग, आरोग्य, उत्तम पुत्र तथा शुभ-कीर्ति प्राप्त करता है।

---

* चतुर्वेदाश्च गायत्री पुरा वै तुलिता मया॥ चतुर्वेदात् परा गुर्वी गायत्री मोक्षदा स्मृता।
दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुराकृतम्॥ त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति किल्बिषम्।
(४३। १९२—१९४)

† नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥
(४३। २०३)

## अधम ब्राह्मणोंका वर्णन, पतित विप्रकी कथा और गरुड़जीका चरित्र

**नारदजीने कहा**—देवेश्वर ! आपकी कृपासे मुझे परम पवित्र उत्तम ब्राह्मणका परिचय तो मिल गया; अब जिस प्रकार मैं कर्मसे अधम ब्राह्मणको भी पहचान सकूँ, वह बात बताइये।

**ब्रह्माजी बोले**—बेटा ! जो दस प्रकारके स्नान, सन्ध्योपासन और तर्पण आदि नहीं करता, जिसमें इन्द्रिय-संयमका अभाव है, वही अधम ब्राह्मण है। जो देवताओंकी पूजा, व्रत, वेद-विद्या, सत्य, शौच, योग, ज्ञान तथा अग्निहोत्रका त्यागी है, वह भी ब्राह्मणोंमें अधम ही है। महर्षियोंने ब्राह्मणोंके लिये पाँच स्नान बताये हैं—आग्नेय, वारुण, ब्राह्म, वायव्य और दिव्य। सम्पूर्ण शरीरमें भस्म लगाना आग्नेय स्नान है; जलसे जो स्नान किया जाता है, उसे वारुण स्नान कहते हैं; 'आपो हि ष्ठा०' इत्यादि ऋचाओंसे जो अपने ऊपर अभिषेक किया जाता है, वह ब्राह्म स्नान है। शरीरपर हवासे उड़कर जो गौके चरणोंकी धूलि पड़ती है, उसे वायव्य-स्नान माना गया है तथा धूप रहते हुए जो आकाशसे जलकी वर्षा होती है, उससे नहानेको दिव्य स्नान कहते हैं। उपर्युक्त वस्तुओंके द्वारा मन्त्रपाठपूर्वक स्नान करनेसे तीर्थ-स्नानका फल प्राप्त होता है। तुलसीके पत्तेसे लगा हुआ जल, शालग्राम-शिलाको नहलाया हुआ जल, गौओंके सींगसे स्पर्श कराया हुआ जल, ब्राह्मणका चरणोदक तथा मुख्य-मुख्य गुरुजनोंका चरणोदक—ये पवित्रसे भी पवित्र माने गये हैं। ऐसा स्मृतियोंका कथन है। [इन पाँच तरहके जलोंसे मस्तकपर अभिषेक करना पुनः पाँच प्रकारका स्नान है—इस तरह पहलेके पाँच स्नानोंके साथ मिलकर यह दस प्रकारका स्नान माना गया है]। त्याग, तीर्थ-स्नान, यज्ञ, व्रत और होम आदिके द्वारा जो फल मिलता है, वही फल धीर पुरुष उपर्युक्त स्नानोंसे प्राप्त कर लेता है।

जो प्रतिदिन पितरोंका तर्पण नहीं करता, वह पितृघातक है, उसे नरकमें जाना पड़ता है। सन्ध्या नहीं करनेवाला द्विज ब्रह्महत्यारा है। जो ब्राह्मण, मन्त्र, व्रत, वेद, विद्या, उत्तम गुण, यज्ञ और दान आदिका त्याग कर देता है, वह अधमसे भी अधम है। मन्त्र और संस्कारसे हीन, शौच और संयमसे रहित, बलिवैश्व किये बिना ही अन्न भोजन करनेवाले, दुरात्मा, चोर, मूर्ख, सब प्रकारके धर्मोंसे शून्य, कुमार्गगामी, श्राद्ध आदि कर्म न करनेवाले, गुरु-सेवासे दूर रहनेवाले, मन्त्रज्ञानसे वञ्चित तथा धार्मिक मर्यादा भङ्ग करनेवाले—ये सभी ब्राह्मण अधमसे भी अधम हैं। उन दुष्टोंसे बात भी नहीं करनी चाहिये। वे सब-के-सब नरकगामी होते हैं। उनका आचरण दूषित होता है; अतएव वे अपवित्र और अपूज्य होते हैं। जो द्विज तलवारसे जीविका चलाते, दासवृत्ति स्वीकार करते, बैलोंको सवारीमें जोतते, बढ़ईका काम करके जीवन-निर्वाह करते, ऋण देकर व्याज लेते, बालिका और वेश्याओंके साथ व्यभिचार करते, चाण्डालोंके आश्रयमें रहते, दूसरोंके उपकारको नहीं मानते और गुरुकी हत्या करते हैं, वे सबसे अधम माने गये हैं। इनके सिवा दूसरे भी जो आचारहीन, पाखण्डी, धर्मकी निन्दा करनेवाले तथा भिन्न-भिन्न देवताओंपर दोषारोपण करनेवाले हैं, वे सभी द्विज ब्रह्मद्रोही हैं। नारद ! अधम होनेपर भी ब्राह्मणका कभी वध नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसको मारनेसे मनुष्यको ब्रह्म-हत्याका पाप लगता है।

**नारदजीने पूछा**—सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ! यदि ब्राह्मण ऐसे-ऐसे दुष्कर्म करनेके पश्चात् फिर पुण्यका अनुष्ठान करे तो वह किस गतिको प्राप्त होता है ?

**ब्रह्माजीने कहा**—वत्स ! जो सारे पाप करनेके पश्चात् भी इन्द्रियोंको वशमें कर लेता है, वह उन पापोंसे छुटकारा पा जाता है तथा पुनः ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेके योग्य बन जाता है। इस विषयमें एक प्राचीन कथा सुनो, जो बड़ी सुन्दर और विचित्र है। पूर्वकालमें किसी ब्राह्मणका एक नौजवान पुत्र था। उसने जवानीकी उमंगमें मोहके वशीभूत होकर एक बार चाण्डालीके

साथ समागम किया। चाण्डालीके गर्भसे उसने अनेकों पुत्र और कन्याएँ उत्पन्न कीं तथा अपना कुटुम्ब छोड़कर वह चिरकालतक उसीके घरमें रहा। किन्तु घृणाके कारण न तो वह दूसरा कोई अभक्ष्य पदार्थ खाता और न कभी शराब ही पीता था। चाण्डाली उससे सदा ही कहा करती थी कि 'ये सब चीजें खाओ और शराब पियो।' किन्तु वह उसे यही उत्तर देता—'प्रिये! तुझे ऐसी गंदी बात नहीं कहनी चाहिये। शराबका तो नाम सुननेमात्रसे मुझे ओकाई आती है।'

एक दिनकी बात है—वह थका-माँदा होनेके कारण दिनमें भी घरपर ही सो रहा था। चाण्डालीने शराब उठायी और हँसकर उसके मुँहमें डाल दी। मदिराकी बूँद पड़ते ही उस ब्राह्मणके मुँहसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी; उसकी ज्वालाने फैलकर कुटुम्बसहित उस चाण्डालीको जलाकर भस्म कर दिया तथा उसके घरको भी फूँक डाला। उस समय वह ब्राह्मण 'हाय! हाय!' करता हुआ उठा और बिलख-बिलखकर रोने लगा। विलापके बाद उसने पूछना आरम्भ किया—'कहाँसे आग प्रकट हुई और कैसे मेरा घर जला?' तब आकाशवाणीने उससे कहा—'तुम्हारे ब्रह्मतेजने चाण्डालीके घरमें आग लगायी है।' इसके बाद उसने ब्राह्मणके मुँहमें शराब डालने आदिका ठीक-ठीक वृत्तान्त कह सुनाया। यह सब सुनकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। उसने इस विषयपर भलीभाँति विचार करके अपने-आपको उपदेश देनेके लिये यह बात कही—'विप्र! तेरा तेज नष्ट हो गया, अब तू पुनः धर्मका आचरण कर।' तदनन्तर उस ब्राह्मणने बड़े-बड़े मुनियोंके पास जाकर उनसे अपने हितकी बात पूछी। मुनियोंने कहा—'तू दान-धर्मका आचरण कर। ब्राह्मण नियम और व्रतोंके द्वारा सब पापोंसे छूट जाते हैं। अतः तू भी अपनी पवित्रताके लिये शास्त्रोक्त नियमोंका आचरण कर। चान्द्रायण, कृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र, प्राजापत्य तथा दिव्य व्रतोंका बारम्बार अनुष्ठान कर। ये व्रत समस्त दोषोंका तत्काल शोषण कर लेते हैं। तू पवित्र तीर्थोंमें जा और वहाँ भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना कर। ऐसा करनेसे तेरे सारे पाप शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे। पुण्यतीर्थों और भगवान् श्रीगोविन्दके प्रभावसे पापोंका क्षय होगा और तू ब्रह्मत्वको प्राप्त होगा। तात! इस विषयमें हम तुझे एक प्राचीन इतिहास सुनाते हैं। पूर्वकालमें विनतानन्दन गरुड़ जब अंडा फोड़कर बाहर निकले, तब नवजात शिशुकी अवस्थामें ही उन्हें आहार ग्रहण करनेकी इच्छा हुई। वे भूखसे व्याकुल होकर मातासे बोले—'माँ! मुझे कुछ खानेको दो।'

पर्वतके समान शरीरवाले महाबली गरुड़को देखकर परम सौभाग्यवती माता विनताके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। वे अपने पुत्रसे बोलीं—'बेटा! मुझमें तेरी भूख मिटानेकी शक्ति नहीं है। तेरे पिता धर्मात्मा कश्यप साक्षात् ब्रह्माजीके समान तेजस्वी हैं। वे सोन नदीके उत्तर तटपर तपस्या करते हैं। वहीं जा और अपने पितासे इच्छानुसार भोजनके विषयमें परामर्श कर। तात! उनके उपदेशसे तेरी भूख शान्त हो जायगी।'

**ऋषि कहते हैं**—माताकी बात सुनकर मनके समान वेगवाले महाबली गरुड़ एक ही मुहूर्तमें पिताके समीप जा पहुँचे। वहाँ प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी अपने पिता मुनिवर कश्यपजीको देखकर उन्हें मस्तक झुका प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'प्रभो! मैं आपका पुत्र हूँ और आहारकी इच्छासे आपके पास आया हूँ। भूख बहुत सता रही है, कृपा करके मुझे कुछ भोजन दीजिये।'

**कश्यपजीने कहा**—वत्स! उधर समुद्रके किनारे विशाल हाथी और कछुआ रहते हैं। वे दोनों बहुत बड़े जीव हैं। उनमें अपार बल है। वे एक-दूसरेको मारनेकी घातमें लगे हुए हैं। तू शीघ्र ही उनके पास जा, उनसे तेरी भूख मिट सकती है।

पिताकी बात सुनकर महान् वेगशाली और विशाल आकारवाले गरुड़ उड़कर वहाँ गये तथा उन दोनोंको नखोंसे विदीर्ण करके चोंच और पंजोंमें लेकर विद्युत्के समान वेगसे आकाशमें उड़ चले। उस समय मन्दराचल आदि पर्वत उन्हें धारण नहीं कर पाते थे। तब वे वायुवेगसे दो लाख योजन आगे जाकर एक जामुनके

वृक्षकी बहुत बड़ी शाखापर बैठे। उनके पंजा रखते ही वह शाखा सहसा टूट पड़ी। उसे गिरते देख महाबली पक्षिराज गरुड़ने गौ और ब्राह्मणोंके वधके भयसे तुरंत पकड़ लिया और फिर बड़े वेगसे आकाशमें उड़ने लगे। उन्हें बहुत देरसे आकाशमें मँड़राते देख भगवान् श्रीविष्णु मनुष्यका रूप धारण कर उनके पास जा इस प्रकार बोले—'पक्षिराज ! तुम कौन हो और किसलिये यह विशाल शाखा तथा ये महान् हाथी एवं कछुआ लिये आकाशमें घूम रहे हो ?' उनके इस प्रकार पूछनेपर पक्षिराजने नररूपधारी श्रीनारायणसे कहा—'महाबाहो ! मैं गरुड़ हूँ। अपने कर्मके अनुसार मुझे पक्षी होना पड़ा है। मैं कश्यप मुनिका पुत्र हूँ और माता विनताके गर्भसे मेरा जन्म हुआ है। देखिये, इन बड़े-बड़े जीवोंको मैंने खानेके लिये पकड़ रखा है। वृक्ष और पर्वत—कोई भी मुझे धारण नहीं कर पाते। अनेकों योजन उड़नेके बाद मैं एक विशाल जामुनका वृक्ष देखकर इन दोनोंको खानेके लिये उसकी शाखापर बैठा था; किन्तु मेरे बैठते ही वह भी सहसा टूट गयी, अतः सहस्रों ब्राह्मणों और गौओंके वधके डरसे इसे भी लिये डोलता हूँ। अब मेरे मनमें बड़ा विषाद हो रहा है कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कौन मेरा वेग सहन करेगा।'

**श्रीविष्णु बोले**—अच्छा, मेरी बाँहपर बैठकर तुम इन दोनों—हाथी और कछुएको खाओ।

**गरुड़ने कहा**—बड़े-बड़े पर्वत भी मुझे धारण करनेमें असमर्थ हो रहे हैं; फिर तुम मुझ-जैसे महाबली पक्षीको कैसे धारण कर सकोगे ? भगवान् श्रीनारायणके सिवा दूसरा कौन है, जो मुझे धारण कर सके। तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो मेरा भार सह लेगा।

**श्रीविष्णु बोले**—पक्षिश्रेष्ठ ! बुद्धिमान् पुरुषको अपना कार्य सिद्ध करना चाहिये, अतः इस समय तुम अपना काम करो। कार्य हो जानेपर निश्चय ही मुझे जान लोगे।

गरुड़ने उन्हें महान् शक्तिसम्पन्न देख मन-ही-मन कुछ विचार किया, फिर 'एवमस्तु' कहकर वे उनकी विशाल भुजापर बैठे। गरुड़के वेगपूर्वक बैठनेपर भी उनकी भुजा काँपी नहीं। वहाँ बैठकर गरुड़ने उस शाखाको तो पर्वतके शिखरपर डाल दिया और हाथी तथा कछुएको भक्षण किया। तत्पश्चात् वे श्रीविष्णुसे बोले—'तुम कौन हो ? इस समय तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?'

**भगवान् श्रीविष्णुने कहा**—मुझे नारायण समझो, मैं तुम्हारा प्रिय करनेके लिये यहाँ आया हूँ।

यह कहकर भगवान्ने उन्हें विश्वास दिलानेके लिये अपना रूप दिखाया। मेघके समान श्याम विग्रहपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। चार भुजाओंके कारण उनकी झाँकी बड़ी मनोरम जान पड़ती थी। हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये सर्वदेवेश्वर श्रीहरिका

दर्शन करके गरुड़ने उन्हें प्रणाम किया और कहा—'पुरुषोत्तम ! बताइये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?'

**श्रीविष्णु बोले**—सखे ! तुम बड़े शूरवीर हो, अतः हर समय मेरा वाहन बने रहो।

यह सुनकर पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ने भगवान्से कहा—'देवेश्वर ! आपका दर्शन करके मैं धन्य हुआ,

मेरा जन्म सफल हो गया। प्रभो ! मैं पिता-मातासे आज्ञा लेकर आपके पास आऊँगा।' तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर कहा—'पक्षिराज ! तुम अजर-अमर बने रहो, किसी भी प्राणीसे तुम्हारा वध न हो। तुम्हारा कर्म और तेज मेरे समान हो। सर्वत्र तुम्हारी गति हो। निश्चय ही तुम्हें सब प्रकारके सुख प्राप्त हों। तुम्हारे मनमें जो-जो इच्छा हो, सब पूर्ण हो जाय। तुम्हें अपनी रुचिके अनुकूल यथेष्ट आहार बिना किसी कष्टके प्राप्त होता रहेगा। तुम शीघ्र ही अपनी माताको कष्टसे मुक्त करोगे।' ऐसा कहकर भगवान् श्रीविष्णु तत्काल अन्तर्धान हो गये। गरुड़ने भी अपने पिताके पास जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

गरुड़का वृत्तान्त सुनकर उनके पिता महर्षि कश्यप मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए और अपने पुत्रसे इस प्रकार बोले—'खगश्रेष्ठ ! मैं धन्य हूँ; तुम्हारी कल्याणमयी माता भी धन्य है। माताकी कोख तथा यह कुल, जिसमें तुम्हारे-जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ— सभी धन्य हैं। जिसके कुलमें वैष्णव पुत्र उत्पन्न होता है; वह धन्य है, वह वैष्णव पुत्र पुरुषोंमें श्रेष्ठ है तथा अपने कुलका उद्धार करके श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त करता है। जो प्रतिदिन श्रीविष्णुकी पूजा करता, श्रीविष्णुका ध्यान करता, उन्हींके यशको गाता, सदा उन्हींके मन्त्रको जपता, श्रीविष्णुके ही स्तोत्रका पाठ करता, उनका प्रसाद पाता और एकादशीके दिन उपवास करता है, वह सब पापोंका क्षय हो जानेसे निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। जिसके हृदयमें सदा ही श्रीगोविन्द विराजते हैं, वह नरश्रेष्ठ विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जलमें, पवित्र स्थानमें, उत्तम पथपर, गौमें, ब्राह्मणमें, स्वर्गमें, ब्रह्माजीके भवनमें तथा पवित्र पुरुषके घरमें सदा ही भगवान् श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं। इन सब स्थानोंमें जो भगवान्‌का जप और चिन्तन करता है, वह अपने पुण्यके द्वारा पुरुषोंमें श्रेष्ठ होता है और सब पापोंका क्षय हो जानेसे भगवान् श्रीविष्णुका किङ्कर होता है। जो श्रीविष्णुका सारूप्य प्राप्त कर ले, वही मानव संसारमें धन्य है। बड़े-बड़े देवता जिनकी पूजा करते हैं, जो इस जगत्‌के स्वामी, नित्य, अच्युत और अविनाशी हैं, वे भगवान् श्रीविष्णु जिसके ऊपर प्रसन्न हो जायँ, वही पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। नाना प्रकारकी तपस्या तथा भाँति-भाँतिके धर्म और यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी देवतालोग भगवान् श्रीविष्णुको नहीं पाते; किन्तु तुमने उन्हें प्राप्त कर लिया। [अतः तुम धन्य हो।] तुम्हारी माता सौतके द्वारा घोर संकटमें डाली गयी है, उसे छुड़ाओ। माताके दुःखका प्रतीकार करके देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुके पास जाना।'

इस प्रकार श्रीविष्णुसे महान् वरदान पा और पिताकी आज्ञा लेकर गरुड़ अपनी माताके पास गये और हर्षपूर्वक उन्हें प्रणाम करके सामने खड़े हो उन्होंने पूछा—'माँ ! बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ? कार्य करके मैं भगवान् विष्णुके पास जाऊँगा।' यह सुनकर सती विनताने गरुड़से कहा—'बेटा ! मुझपर महान् दुःख आ पड़ा है, तुम उसका निवारण करो। बहिन कद्रू मेरी सौत है। पूर्वकालमें उसने मुझे एक बातमें अन्यायपूर्वक हराकर दासी बना लिया। अब मैं उसकी दासी हो चुकी हूँ। तुम्हारे सिवा कौन मुझे इस दुःखसे छुटकारा दिलायेगा। कुलनन्दन ! जिस समय मैं उसे मुँहमाँगी वस्तु दे दूँगी, उसी समय दासीभावसे मेरी मुक्ति हो सकती है।'

**गरुड़ने कहा**—माँ ! शीघ्र ही उसके पास जाकर पूछो, वह क्या चाहती है ? मैं तुम्हारे कष्टका निवारण करूँगा। तब दुःखिनी विनताने कद्रूसे कहा—'कल्याणी ! तुम अपनी अभीष्ट वस्तु बताओ, जिसे देकर मैं इस कष्टसे छुटकारा पा सकूँ।' यह सुनकर उस दुष्टाने कहा—'मुझे अमृत ला दो।' उसकी बात सुनकर विनता धीरे-धीरे लौटी और बेटेसे दुःखी होकर बोली—'तात ! वह तो अमृत माँग रही है, अब तुम क्या करोगे ?'

**गरुड़ने कहा**—'माँ ! तुम उदास न हो, मैं अमृत ले आऊँगा।' यों कहकर मनके समान वेगवान् पक्षी गरुड़ सागरसे जल ले आकाशमार्गसे चले। उनके पंखोंकी हवासे बहुत-सी धूल भी उनके साथ-साथ

उड़ती गयी। वह धूलराशि उनका साथ न छोड़ सकी। गन्तव्य स्थानपर पहुँचकर गरुड़ने अपनी चोंचमें रखे हुए जलसे वहाँके अग्निमय प्राकार (परकोटे) को बुझा दिया तथा अमृतकी रक्षाके लिये जो देवता नियुक्त थे, उनकी आँखोंमें पूर्वोक्त धूल भर गयी, जिससे वे गरुड़जीको देख नहीं पाते थे। बलवान् गरुड़ने रक्षकोंको मार गिराया और अमृत लेकर वे वहाँसे चल दिये। पक्षीको अमृत लेकर आते देख ऐरावतपर चढ़े हुए इन्द्रने कहा—'अहो! पक्षीका रूप धारण करनेवाले तुम कौन हो, जो बलपूर्वक अमृतको लिये जाते हो? सम्पूर्ण देवताओंका अप्रिय करके यहाँसे जीवित कैसे जा सकते हो।'

**गरुड़ने कहा**—देवराज! मैं तुम्हारा अमृत लिये जाता हूँ, तुम अपना पराक्रम दिखाओ।

यह सुनकर महाबाहु इन्द्रने गरुड़पर तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, मानो मेरुगिरिके शिखरपर मेघ जलकी धाराएँ बरसा रहा हो। गरुड़ने अपने वज्रके समान तीखे नखोंसे ऐरावत हाथीको विदीर्ण कर डाला तथा मातलिसहित रथ और चक्कोंको हानि पहुँचाकर अग्रगामी देवताओंको भी घायल कर दिया। तब इन्द्रने कुपित होकर उनके ऊपर वज्रका प्रहार किया। वज्रकी चोट खाकर भी महापक्षी गरुड़ विचलित नहीं हुए। वे बड़े वेगसे भूतलकी ओर चले। तब इन्द्रने सब देवताओंके आगे स्थित होकर कहा—'निष्पाप गरुड़! यदि तुम नागमाताको इस समय अमृत दे दोगे तो सारे साँप अमर हो जायँगे; अतः यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं इस अमृतको वहाँसे हर लाऊँगा।'

**गरुड़ बोले**—मेरी साध्वी माता विनता दासीभावके कारण बहुत दुःखी है। जिस समय वह दासीपनसे मुक्त हो जाय और सब लोग इस बातको जान लें, उस समय तुम अमृतको हर ले आना।

यों कहकर महाबली गरुड़ माताके पास जा इस प्रकार बोले—'माँ! मैं अमृत ले आया हूँ, इसे नागमाताको दे दो।' अमृतसहित पुत्रको आया देख विनताका हृदय हर्षसे खिल उठा। उसने कद्रूको बुलाकर अमृत दे दिया और स्वयं दासीभावसे मुक्त हो गयी। इसी बीचमें इन्द्रने सहसा पहुँचकर अमृतका घड़ा चुरा लिया और वहाँ विषका पात्र रख दिया। उन्हें ऐसा करते कोई देख न सका। कद्रूका मन बहुत प्रसन्न था। उसने पुत्रोंको वेगपूर्वक बुलाया और उनके मुखमें अमृत-जैसा दिखायी देनेवाला विष दे दिया। नागमाताने पुत्रोंसे कहा—तुम्हारे कुलमें होनेवाले सभी सर्पोंके मुखमें ये अमृतकी बूँदें नित्य-निरन्तर उत्पन्न होती रहें तथा तुमलोग इनसे सदा सन्तुष्ट रहो। इसके बाद गरुड़ अपने पिता-मातासे वार्तालाप करके देवताओंकी पूजा कर अविनाशी भगवान् श्रीविष्णुके पास चले गये। जो गरुड़के इस उत्तम चरित्रका पाठ या श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर देवलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

**ब्रह्माजी कहते हैं**—ऋषियोंके मुखसे यह उपदेश और गरुड़का प्रसंग सुनकर वह पतित ब्राह्मण नाना प्रकारके पुण्य-कर्मोंका अनुष्ठान करके पुनः ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुआ और तीव्र तपस्या करके स्वर्गलोकमें चला गया। सदाचारी मनुष्यका पाप प्रतिदिन क्षीण होता है और दुराचारीका पुण्य सदा नष्ट होता रहता है। अनाचारसे पतित हुआ ब्राह्मण भी यदि फिर सदाचारका सेवन करे तो वह देवत्वको प्राप्त होता है। अतः द्विज प्राणोंके कण्ठगत होनेपर भी सदाचारका त्याग नहीं करते। नारद! तुम भी मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा सदाचारका पालन करो।

—★—

## ब्राह्मणोंके जीविकोपयोगी कर्म और उनका महत्त्व तथा गौओंकी महिमा और गोदानका फल

**नारदजीने पूछा**—प्रभो ! उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजा करके तो सब लोग श्रेष्ठ गति प्राप्त करते हैं; किन्तु जो उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं, उनकी क्या गति होती है ?

**ब्रह्माजी बोले**—क्षुधासे संतप्त हुए उत्तम ब्राह्मणोंका जो लोग अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक सत्कार नहीं करते, वे नरकमें पड़ते हैं। जो क्रोधपूर्वक कठोर शब्दोंमें ब्राह्मणकी निन्दा करके उसे द्वारसे हटा देते हैं, वे अत्यन्त घोर महारौरव एवं कृच्छ्र नरकमें पड़ते हैं तथा नरकसे निकलनेपर कीड़े होते हैं। उससे छूटनेपर चाण्डालयोनिमें जन्म लेते हैं। फिर रोगी एवं दरिद्र होकर भूखसे पीड़ित होते हैं। अतः भूखसे पीड़ित हो घरपर आये हुए ब्राह्मणका कभी अपमान नहीं करना चाहिये। जो देवता, अग्नि और ब्राह्मणके लिये 'नहीं दूँगा' ऐसा वचन कहता है, वह सौ बार नीचेकी योनियोंमें जन्म लेकर अन्तमें चाण्डाल होता है। जो लात उठाकर ब्राह्मण, गौ, पिता-माता और गुरुको मारता है, उसका रौरव नरकमें वास निश्चित है; वहाँसे कभी उसका उद्धार नहीं होता। यदि पुण्यवश जन्म हो भी जाय तो वह पङ्गु होता है। साथ ही अत्यन्त दीन, विषादग्रस्त और दुःखशोकसे पीड़ित रहता है। इस प्रकार तीन जन्मोंतक कष्ट भोगनेके बाद ही उसका उद्धार होता है। जो पुरुष मुक्कों, तमाचों और कीलोंसे ब्राह्मणको मारता है, वह एक कल्पतक तापन और रौरव नामक घोर नरकमें निवास करता है और पुनः जन्म लेनेपर कुत्ता होता है। उसके बाद चाण्डालयोनिमें जन्म लेकर दरिद्र और उदरशूलसे पीड़ित होता है। माता, पिता, ब्राह्मण, स्नातक, तपस्वी और गुरुजनोंको क्रोधपूर्वक मारकर मनुष्य दीर्घकालतक कुम्भीपाक नरकमें पड़ा रहता है। इसके बाद वह कीट-योनिमें जन्म लेता है। बेटा नारद ! जो ब्राह्मणोंके विरुद्ध कठोर वचन बोलता है, उसके शरीरमें आठ प्रकारकी कोढ़ होती है—खुजली, दाद, मण्डल, (चकत्ता), शुक्ति (सफेदी), सिध्म (सेहुँआ), काली कोढ़, सफेद कोढ़ और तरुण कुष्ठ—इनमें काली कोढ़, सफेद कोढ़ और अत्यन्त दारुण तरुण कुष्ठ—ये तीन महाकुष्ठ माने गये हैं। जो जान-बूझकर महापातकमें प्रवृत्त होते हैं अथवा महापातकी पुरुषोंका सङ्ग करते हैं अथवा अतिपातकका आचरण करते हैं, उनके शरीरमें ये तीनों प्रकारके कुष्ठ होते हैं। संसर्गसे अथवा परस्पर सम्बन्ध होनेसे मनुष्योंमें इस रोगका संक्रमण होता है। इसलिये विवेकी पुरुष कोढ़ीसे दूर ही रहे। उसका स्पर्श हो जानेपर तुरंत स्नान कर ले। पतित, कोढ़ी, चाण्डाल, गोभक्षी, कुत्ता, रजस्वला स्त्री और भीलका स्पर्श हो जानेपर तत्काल स्नान करना चाहिये।

जो ब्राह्मणकी न्यायोपार्जित जीविका तथा उसके धनका अपहरण करते हैं, वे अक्षय नरकमें पड़ते हैं। जो चुगलखोर मनुष्य ब्राह्मणोंका छिद्र ढूँढ़ा करता है, उसे देखकर या स्पर्श करके वस्त्रसहित जलमें गोता लगाना चाहिये। ब्राह्मणके धनका यदि कोई प्रेमसे उपभोग कर ले, तो भी वह उसकी सात पीढ़ियोंतकको जला डालता है। और जो पराक्रमपूर्वक छीनकर उसका उपभोग करता है, वह तो दस पीढ़ी पहले और दस पीढ़ी पीछेतकके पुरुषोंको नष्ट करता है। विषको विष नहीं कहते, ब्राह्मणका धन ही विष कहलाता है। विष तो केवल उसके खानेवालेको ही मारता है, किन्तु ब्राह्मणका धन पुत्र-पौत्रोंका भी नाश कर डालता है। जो मोहवश माता, ब्राह्मणी अथवा गुरुकी स्त्रीके साथ समागम करता है, वह घोर रौरव नरकमें पड़ता है। वहाँसे पुनः मनुष्ययोनिमें आना कठिन होता है।

**नारदजीने पूछा**—पिताजी ! सभी ब्राह्मणोंकी हत्यासे बराबर ही पाप लगता है अथवा किसीमें कुछ

अधिक या कम भी ? यदि न्यूनाधिक होता है तो क्यों ? इसको यथार्थ रूपसे बताइये।

**ब्रह्माजीने कहा**—'बेटा ! ब्रह्महत्याका जो पाप बताया गया है, वह किसी भी ब्राह्मणका वध करनेपर अवश्य लागू होता है। ब्रह्महत्यारा घोर नरकमें पड़ता है। इस विषयमें कुछ और भी कहना है, उसे सुनो। वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय एवं श्रोत्रिय ब्राह्मणकी हत्या करनेपर करोड़ों ब्राह्मणोंके वधका दोष लगता है। शैव तथा वैष्णव ब्राह्मणको मारनेपर उससे भी दसगुना अधिक पाप होता है। अपने वंशके ब्राह्मणका वध करनेपर तो कभी नरकसे उद्धार होता ही नहीं। तीन वेदोंके ज्ञाता स्नातककी हत्या करनेपर जो पाप लगता है, उसकी कोई सीमा ही नहीं है। श्रोत्रिय, सदाचारी तथा तीर्थ-स्नान और वेदमन्त्रसे पवित्र ब्राह्मणके वधसे होनेवाले पापका भी कभी अन्त नहीं होता। यदि किसीके द्वारा अपनी बुराई होनेपर ब्राह्मण स्वयं भी शोकवश प्राण त्याग दे तो वह बुराई करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्यारा ही समझा जाता है। कठोर वचनों और कठोर बर्तावोंसे पीड़ित एवं ताड़ित हुआ ब्राह्मण जिस अत्याचारी मनुष्यका नाम ले-लेकर अपने प्राण त्यागता है, उसे सभी ऋषि, मुनि, देवता और ब्रह्मवेत्ताओंने ब्रह्महत्यारा बताया है। ऐसी हत्याका पाप उस देशके निवासियों तथा राजाको लगता है। अतः वे ब्रह्महत्याका पाप करके अपने पितरोंसहित नरकमें पकाये जाते हैं। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह मरणपर्यन्त उपवास (अनशन) करनेवाले ब्राह्मणको मनाये—उसे प्रसन्न करके अनशन तोड़नेका प्रयत्न करे। यदि किसी निर्दोष पुरुषको निमित्त बनाकर कोई ब्राह्मण अपने प्राण त्यागता है तो वह स्वयं ही ब्रह्महत्याके घोर पापका भागी होता है। जिसका नाम लेकर मरता है, वह नहीं। जो अधम ब्राह्मण अपने कुटुम्बीका वध करता है, उसको भी ब्रह्महत्याका पाप लगता है। यदि कोई आततायी ब्राह्मण युद्धके लिये अपने पास आ रहा हो और प्राण लेनेकी चेष्टा करता हो, तो उसे अवश्य मार डाले; इससे वह ब्रह्महत्याका भागी नहीं होता। जो घरमें आग लगाता है, दूसरेको जहर देता है, धन चुरा लेता है, सोते हुएको मार डालता है; तथा खेत और स्त्रीका अपहरण करता है—ये छः आततायी माने गये हैं।* संसारमें ब्राह्मणके समान दूसरा कोई पूजनीय नहीं है। वह जगत्का गुरु है। ब्राह्मणको मारनेपर जो पाप होता है, उससे बढ़कर दूसरा कोई पाप है ही नहीं।

**नारदजीने पूछा**—सुरश्रेष्ठ ! पापसे दूर रहनेवाले द्विजको किस वृत्तिका आश्रय लेकर जीवन-निर्वाह करना चाहिये ? इसका यथावत् वर्णन कीजिये।

**ब्रह्माजीने कहा**—बेटा ! बिना माँगे मिली हुई भिक्षा उत्तम वृत्ति बतायी गयी है। उञ्छवृत्ति[1] उससे भी उत्तम है। वह सब प्रकारकी वृत्तियोंमें श्रेष्ठ और कल्याणकारिणी है। श्रेष्ठ मुनिगण उञ्छवृत्तिका आश्रय लेकर ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं। यज्ञमें आये हुए ब्राह्मणको यज्ञकी समाप्ति हो जानेपर यजमानसे जो दक्षिणा प्राप्त होती है, वह उसके लिये ग्राह्य वृत्ति है। द्विजोंको पढ़ाकर या यज्ञ कराकर उसकी दक्षिणा लेनी चाहिये। पठन-पाठन तथा उत्तम माङ्गलिक शुभ कर्म करके भी उन्हें दक्षिणा ग्रहण करनी चाहिये। यही ब्राह्मणोंकी जीविका है। दान लेना उनके लिये अन्तिम वृत्ति है। उनमें जो शास्त्रके द्वारा जीविका चलाते हैं, वे धन्य हैं। वृक्ष और लताओंके सहारे जिनकी जीविका चलती है, वे भी धन्य हैं।

ब्राह्मणोचित वृत्तिके अभावमें ब्राह्मणोंको क्षत्रियवृत्तिसे जीवन-निर्वाह करना चाहिये। उस अवस्थामें न्याययुक्त युद्धका अवसर उपस्थित होनेपर युद्ध करना उनका कर्तव्य है। उन्हें उत्तम वीरव्रतका

---

* अग्निदो गरदश्चैव धनहारी च सुप्तघः। क्षेत्रदारापहारी च षडेते ह्याततायिनः॥ (४८। ५८)

१-कटे हुए खेत, खलिहान या उठे हुए बाजारसे अन्नका एक-एक दाना बीनकर लाने और उसीसे जीविका चलानेका नाम 'उञ्छवृत्ति' है।

आचरण करना चाहिये। ब्राह्मण क्षत्रियवृत्तिके द्वारा राजासे जो धन प्राप्त करता है, वह श्राद्ध और यज्ञ आदिमें दानके लिये पवित्र माना गया है। उस ब्राह्मणको सदा पापसे दूर रहकर वेद और धनुर्वेद दोनोंका अभ्यास करना चाहिये। जो ब्राह्मण न्यायोचित युद्धमें सम्मिलित होकर संग्राममें शत्रुका सामना करते हुए मारे जाते हैं, वे वेदपाठियोंके लिये भी दुर्लभ परमपदको प्राप्त होते हैं। धर्मयुद्धका जो पवित्र बर्ताव है, उसका यथार्थ वर्णन सुनो। धर्मयुद्ध करनेवाले योद्धा सामने लड़ते हैं, कभी कायरता नहीं दिखाते तथा जो पीठ दिखा चुका हो, जिसके पास कोई हथियार न हो और जो युद्धभूमिसे भागा जा रहा हो—ऐसे शत्रुपर पीछेकी ओरसे प्रहार नहीं करते। जो दुराचारी सैनिक विजयकी इच्छासे डरपोक, युद्धसे विमुख, पतित, मूर्च्छित, असत्शूद्र, स्तुतिप्रिय और शरणागत शत्रुको युद्धमें मार डालते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं।

यह क्षत्रियवृत्ति सदाचारी पुरुषोंद्वारा प्रशंसित है। इसका आश्रय लेकर समस्त क्षत्रिय स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं। धर्मयुद्धमें शत्रुका सामना करते हुए मृत्युको प्राप्त होना क्षत्रियके लिये शुभ है। वह पवित्र होकर सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और एक कल्पतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। उसके बाद सार्वभौम राजा होता है। उसे सब प्रकारके भोग प्राप्त होते हैं। उसका शरीर नीरोग और कामदेवके समान सुन्दर होता है। उसके पुत्र धर्मशील, सुन्दर, समृद्धिशाली और पिताकी रुचिके अनुकूल चलनेवाले होते हैं। इस प्रकार क्रमशः सात जन्मोंतक वे क्षत्रिय उत्तम सुखका उपभोग करते हैं। इसके विपरीत जो अन्यायपूर्वक युद्ध करनेवाले हैं, उन्हें चिरकालतक नरकमें निवास करना पड़ता है। इस तरह ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ क्षत्रिय-वृत्तिका सहारा लेना उचित है।

उत्तम ब्राह्मण आपत्तिकालमें वैश्यवृत्तिसे—व्यापार एवं खेती आदिसे भी जीविका चला सकता है। परन्तु उसे चाहिये कि वह दूसरोंके द्वारा खेती और व्यापारका काम कराये, स्वयं ब्राह्मणोचित कर्मका त्याग न करे। वैश्यवृत्तिका आश्रय लेकर यदि ब्राह्मण झूठ बोले या किसी वस्तुकी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करे तो [लोगोंको ठगनेके कारण] वह दुर्गतिको प्राप्त होता है। भीगे हुए द्रव्यके व्यापारसे बचा रहकर ब्राह्मण कल्याणका भागी होता है। तौलमें कभी असत्यपूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहिये, क्योंकि तुला धर्मपर ही प्रतिष्ठित है। जो तराजूपर तोलते समय छल करता है, वह नरकमें पड़ता है। जो द्रव्य तराजूपर चढ़ाये बिना ही बेचा जाता है, उसमें भी झूठ-कपटका त्याग कर देना चाहिये। इस प्रकार मिथ्या बर्ताव नहीं करना चाहिये; क्योंकि मिथ्या व्यवहारसे पापकी उत्पत्ति होती है। 'सत्यसे बढ़कर धर्म और झूठसे बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है' अतः सब कार्योंमें सत्यको ही श्रेष्ठ माना गया है।* यदि एक ओर एक हजार अश्वमेध यज्ञोंका पुण्य और दूसरी ओर सत्यको तराजूपर रखकर तोला जाय तो एक हजार अश्वमेध यज्ञोंकी अपेक्षा सत्यका ही पलड़ा भारी होता है। जो समस्त कार्योंमें सत्य बोलता और मिथ्याका परित्याग करता है, वह सब दुःखोंसे पार हो जाता है और अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है।† ब्राह्मण [दूसरोंके द्वारा] व्यापारका काम करा सकता है; किन्तु उसे झूठका त्याग करना ही चाहिये। उसे चाहिये कि जो मुनाफा हो उसमेंसे पहले तीर्थोंमें दान करे; जो शेष बचे, उसका स्वयं उपभोग करे। यदि ब्राह्मण वाणिज्य-वृत्तिसे न्यायपूर्वक उपार्जित किये हुए धनको

---

*तुलेऽसत्यं न कर्तव्यं तुला धर्मप्रतिष्ठिता॥
छलभावं तुलें कृत्वा नरकं प्रतिपद्यते। अतुलं चापि यद् द्रव्यं तत्र मिथ्या परित्यजेत्॥
एवं मिथ्या न कर्तव्या मृषा पापप्रसूतिका। नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्॥
अतः सर्वेषु कार्येषु सत्यमेव विशिष्यते। (४५। ९३—९६)

†यो वदेत् सर्वकार्येषु सत्यं मिथ्यां परित्यजेत्॥
स निस्तरति दुर्गाणि स्वर्गमक्षयमश्नुते। (४५। ९७-९८)

पितरों, देवताओं और ब्राह्मणोंके निमित्त यत्नपूर्वक दान देता है; तो उसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। वाणिज्य लाभकारी व्यवसाय है। किन्तु दो उसमें बहुत बड़े दोष आ जाते हैं—लोभ न छोड़ना और झूठ बोलकर माल बेचना। विद्वान् पुरुष इन दोनों दोषोंका परित्याग करके धनोपार्जन करे। व्यापारमें कमाये हुए धनका दान करनेसे वह अक्षय फलका भागी होता है।*

नारद! पुण्यकर्ममें लगे हुए ब्राह्मणको इस प्रकार खेती करानी चाहिये। वह आधे दिन (दोपहर) तक चार बैलोंको हलमें जोते। चारके अभावमें तीन बैलोंको भी जोता जा सकता है। बैलोंसे इतना काम न ले कि उन्हें दिनभर विश्राम करनेका मौका ही न मिले। प्रतिदिन बैलोंको चोर और व्याघ्र आदिसे रहित स्थानमें, जहाँकी घास काटी न गयी हो, ले जाकर चराये। उन्हें यथेष्ट घास खानेको दे और स्वयं उपस्थित रहकर उनके खाने-पीनेकी व्यवस्था करे। उनके रहनेके लिये गोशाला बनवावे, जहाँ किसी प्रकार उपद्रव न हो।† वहाँसे गोबर, मूत्र और बिखरी हुई घास आदि हटाकर गोशालाको सदा साफ रखे। गोशाला सम्पूर्ण देवताओंका निवासस्थान है, अतः वहाँ कूड़ा नहीं फेंकना चाहिये। विद्वान् पुरुषको उचित है कि वह अपने शयन-गृहके समान गोशालाको साफ रखे। उसकी फर्शको समतल बनाये तथा यत्नपूर्वक ऐसी व्यवस्था करे, जिससे वहाँ सर्दी, हवा और धूल-धक्कड़से बचाव हो। गौको अपने प्राणोंके समान समझे। उसके शरीरको अपने ही शरीरके तुल्य माने। अपनी देहमें जैसे सुख-दुःख होते हैं, वैसे ही गौके शरीरमें भी होते हैं—ऐसा समझकर गौके कष्टको दूर करने और उसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करे।

जो इस विधिसे खेतीका काम कराता है, वह बैलको जोतनेके दोषसे मुक्त और धनवान् होता है। जो दुर्बल, रोगी, अत्यन्त छोटी अवस्थाके और अधिक बूढ़े बैलसे काम लेकर उसे कष्ट पहुँचाता है, उसे गोहत्याका पाप लगता है। जो एक ओर दुर्बल और दूसरी ओर बलवान् बैलको जोड़कर उनसे भूमिको जुतवाता है, उसे गोहत्याके समान पापका भागी होना पड़ता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो बिना चारा खिलाये ही बैलको हल जोतनेके काममें लगाता है तथा घास खाते और पानी पीते हुए बैलको मोहवश हाँक देता है, वह भी गोहत्याके पापका भागी होता है।‡ अमावास्या, संक्रान्ति तथा पूर्णिमाको हल जोतनेसे दस हजार गोहत्याओंका पाप लगता है। जो उपर्युक्त तिथियोंको गौओंके शरीरमें सफेद और रंग-बिरंगी रचना करके काजल, पुष्प और तेलके द्वारा उनकी पूजा करता है, वह अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। जो प्रतिदिन दूसरेकी गायको मुट्ठीभर घास देता है, उसके समस्त पापोंका नाश हो जाता है तथा वह अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है। जैसा ब्राह्मणका महत्त्व है, वैसा ही गौका भी महत्त्व है; दोनोंकी पूजाका फल समान ही है। विचार करनेपर मनुष्योंमें ब्राह्मण प्रधान है और पशुओंमें गौ।

**नारदजीने पूछा**—नाथ! आपने बताया है कि ब्राह्मणकी उत्पत्ति भगवान्‌के मुखसे हुई है; फिर गौओंकी

---

* एतौ दोषौ महान्तौ च वाणिज्ये लाभकर्मणि। लोभानामपरित्यागो मृषाग्राह्यश्च विक्रयः॥
एतौ दोषौ परित्यज्य कुर्यादर्थार्जनं बुधः। अक्षयं लभते दानाद् ..... ॥
(४५। १०७-८)

† दद्याद् घासं यथेष्टं च नित्यमातिष्ठयेत् स्वयम्। गोष्ठं च कारयेत्तत्र किञ्चिद्विघ्नविवर्जितम्॥
(४५। १०९)

‡ दुर्बलं पीडयेद्यस्तु तथैव गदसंयुतम्। अतिबालातिवृद्धैश्च स गोहत्यां समालभेत्॥
विषमं वाहयेद्यस्तु दुर्बलेन बलेन च। स गोहत्यासमं पापं प्राप्नोतीह न संशयः॥
यो वाहयेद्विना सस्यं खादन्तं गां निवारयेत्। मोहात्तृणं जलं वापि स गोहत्यासमं लभेत्॥
(४५। ११४—१६)

उससे तुलना कैसे हो सकती है? विधाता! इस विषयको लेकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

**ब्रह्माजीने कहा**—बेटा! पहले भगवान्‌के मुखसे महान् तेजोमय पुञ्ज प्रकट हुआ। उस तेजसे सर्वप्रथम वेदकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् क्रमशः अग्नि, गौ और ब्राह्मण—ये पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए। मैंने सम्पूर्ण लोकों और भुवनोंकी रक्षाके लिये पूर्वकालमें एक वेदसे चारों वेदोंका विस्तार किया। अग्नि और ब्राह्मण देवताओंके लिये हविष्य ग्रहण करते हैं और हविष्य (घी) गौओंसे उत्पन्न होता है; इसलिये ये चारों ही इस जगत्‌के जन्मदाता हैं। यदि ये चारों महत्तर पदार्थ विश्वमें नहीं होते तो यह सारा चराचर जगत् नष्ट हो जाता। ये ही सदा जगत्‌को धारण किये रहते हैं; जिससे स्वभावतः इसकी स्थिति बनी रहती है। ब्राह्मण, देवता तथा असुरोंको भी गौकी पूजा करनी चाहिये; क्योंकि गौ सब कार्योंमें उदार तथा वास्तवमें समस्त गुणोंकी खान है। वह साक्षात् सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है। सब प्राणियोंपर उसकी दया बनी रहती है। प्राचीन कालमें सबके पोषणके लिये मैंने गौकी सृष्टि की थी। गौओंकी प्रत्येक वस्तु पावन है और समस्त संसारको पवित्र कर देती है। गौका मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी—इन पञ्चगव्योंका पान कर लेनेपर शरीरके भीतर पाप नहीं ठहरता। इसलिये धार्मिक पुरुष प्रतिदिन गौके दूध, दही और घी खाया करते हैं। गव्य पदार्थ सम्पूर्ण द्रव्योंमें श्रेष्ठ, शुभ और प्रिय हैं। जिसको गायका दूध, दही और घी खानेका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, उसका शरीर मलके समान है। अन्न आदि पाँच रात्रितक, दूध सात रात्रितक, दही बीस रात्रितक और घी एक मासतक शरीरमें अपना प्रभाव रखता है। जो लगातार एक मासतक बिना गव्यका भोजन करता है, उस मनुष्यके भोजनमें प्रेतोंको भाग मिलता है; इसलिये प्रत्येक युगमें सब कार्योंके लिये एकमात्र गौ ही प्रशस्त मानी गयी है। गौ सदा और सब समय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाली है।

जो गौकी एक बार प्रदक्षिणा करके उसे प्रणाम करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। जैसे देवताओंके आचार्य बृहस्पतिजी वन्दनीय हैं, जिस प्रकार भगवान् लक्ष्मीपति सबके पूज्य हैं, उसी प्रकार गौ भी वन्दनीय और पूजनीय है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर गौ और उसके घीका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गौएँ दूध और घी प्रदान करनेवाली हैं। वे घृतकी उत्पत्ति-स्थान और घीकी उत्पत्तिमें कारण हैं। वे घीकी नदियाँ हैं, उनमें घीकी भँवरें उठती हैं। ऐसी गौएँ सदा मेरे घरपर मौजूद रहें।* घी मेरे सम्पूर्ण शरीर और मनमें स्थित हो। 'गौएँ सदा मेरे आगे रहें। वे ही मेरे पीछे रहें। मेरे सब अङ्गोंको गौओंका स्पर्श प्राप्त हो। मैं गौओंके बीचमें निवास करूँ।'† इस मन्त्रको प्रतिदिन सन्ध्या और सबेरेके समय शुद्ध भावसे आचमन करके जपना चाहिये। ऐसा करनेसे उसके सब पापोंका क्षय हो जाता है तथा वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जैसे गौ आदरणीय है वैसे ब्राह्मण; जैसे ब्राह्मण हैं वैसे भगवान् श्रीविष्णु। जैसे भगवान् श्रीविष्णु हैं वैसी ही श्रीगङ्गाजी भी हैं। ये सभी धर्मके साक्षात् स्वरूप माने गये हैं। गौएँ मनुष्योंकी बन्धु हैं और मनुष्य गौओंके बन्धु हैं। जिस घरमें गौ नहीं है, वह बन्धुरहित गृह है। छहों अङ्गों, पदों और क्रमोंसहित सम्पूर्ण वेद गौओंके मुखमें निवास करते हैं। उनके सींगोंमें भगवान् श्रीशङ्कर और श्रीविष्णु सदा विराजमान रहते हैं। गौओंके उदरमें कार्तिकेय, मस्तकमें ब्रह्मा, ललाटमें महादेवजी, सींगोंके अग्रभागमें इन्द्र, दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्रमा और सूर्य, दाँतोंमें गरुड़, जिह्वामें सरस्वती देवी, अपान (गुदा) में

---

* घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः। घृतनद्यो घृतावर्त्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे॥

(४५। १४९)

† गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च। गावश्च सर्वगात्रेषु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

सम्पूर्ण तीर्थ, मूत्रस्थानमें गङ्गाजी, रोमकूपोंमें ऋषि, मुख और पृष्ठभागमें यमराज, दक्षिण पार्श्वमें वरुण और कुबेर, वाम पार्श्वमें तेजस्वी और महाबली यक्ष, मुखके भीतर गन्धर्व, नासिकाके अग्रभागमें सर्प, खुरोंके पिछले भागमें अप्सराएँ, गोबरमें लक्ष्मी, गोमूत्रमें पार्वती, चरणोंके अग्रभागमें आकाशचारी देवता, रँभानेकी आवाजमें प्रजापति और थनोंमें भरे हुए चारों समुद्र निवास करते हैं। जो प्रतिदिन स्नान करके गौका स्पर्श करता है, वह मनुष्य सब प्रकारके स्थूल पापोंसे भी मुक्त हो जाता है। जो गौओंके खुरसे उड़ी हुई धूलको सिरपर धारण करता है, वह मानो तीर्थके जलमें स्नान कर लेता है और सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

**नारदजीने पूछा**—गुरुश्रेष्ठ ! परमेष्ठिन् ! विभिन्न रंगोंकी गौओंमें किसके दानसे क्या फल होता है ? इसका तत्त्व बतलाइये।

**ब्रह्माजीने कहा**—बेटा ! ब्राह्मणको श्वेत गौका दान करके मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है। सदा महलमें निवास करता है तथा भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न होकर सुख-समृद्धिसे भरा-पूरा रहता है। धूएँके समान रङ्गवाली गौ स्वर्ग प्रदान करनेवाली तथा भयङ्कर संसारमें पापोंसे छुटकारा दिलानेवाली है। कपिला गौका दान अक्षय फल प्रदान करनेवाला है। कृष्णा गौका दान देकर मनुष्य कभी कष्टमें नहीं पड़ता। भूरे रङ्गकी गौ संसारमें दुर्लभ है। गौर वर्णकी धेनु समूचे कुलको आनन्द प्रदान करनेवाली होती है। लाल नेत्रोंवाली गौ रूपकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको रूप प्रदान करती है। नीली गौ धनाभिलाषी पुरुषकी कामना पूर्ण करती है। एक ही कपिला गौका दान करके मनुष्य सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है। बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें जो पाप किया गया है, क्रियासे, वचनसे तथा मनसे भी जो पाप बन गये हैं, उन सबका कपिला गौके दानसे क्षय हो जाता है और दाता पुरुष विष्णुरूप होकर वैकुण्ठमें निवास करता है। जो दस गौएँ दान करता है तथा जो भार ढोनेमें समर्थ एक ही बैल दान करता है, उन दोनोंका फल ब्रह्माजीने समान ही बतलाया है। जो पुत्र पितरोंके उद्देश्यसे साँड़ छोड़ता है, उसके पितर अपनी इच्छाके अनुसार विष्णुलोकमें सम्मानित होते हैं। छोड़े हुए साँड़ या दान की हुई गौओंके जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक मनुष्य स्वर्गका सुख भोगते हैं। छोड़ा हुआ साँड़ अपनी पूँछसे जो जल फेंकता है, वह एक हजार वर्षोंतक पितरोंके लिये तृप्तिदायक होता है। वह अपने खुरसे जितनी भूमि खोदता है, जितने ढेले और कीचड़ उछालता है, वे सब लाखगुने होकर पितरोंके लिये स्वधारूप हो जाते हैं। यदि पिताके जीते-जी माताकी मृत्यु हो जाय तो उसकी स्वर्ग-प्राप्तिके लिये चन्दन-चर्चित धेनुका दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे दाता पितरोंके ऋणसे मुक्त हो जाता है तथा भगवान् श्रीविष्णुकी भाँति पूजित होकर अक्षय स्वर्गको प्राप्त करता है। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे युक्त, प्रतिवर्ष बच्चा देनेवाली नयी दुधार गाय पृथ्वीके समान मानी गयी है। उसके दानसे भूमि-दानके समान फल होता है। उसे दान करनेवाला मनुष्य इन्द्रके तुल्य होता है और अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो गौका हरण करके उसके बछड़ेकी मृत्युका कारण बनता है, वह महाप्रलयपर्यन्त कीड़ोंसे भरे हुए कुएँमें पड़ा रहता है। गौओंका वध करके मनुष्य अपने पितरोंके साथ घोर रौरव नरकमें पड़ता है तथा उतने ही समयतक अपने पापका दण्ड भोगता रहता है। जो इस पवित्र कथाको एक बार भी दूसरोंको सुनाता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है तथा वह देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करता है। जो इस परम पुण्यमय प्रसङ्गका श्रवण करता है, वह सात जन्मोंके पापोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है।

★

## द्विजोचित आचार, तर्पण तथा शिष्टाचारका वर्णन

**नारदजीने पूछा**—पिताजी ! किस आचरणसे ब्राह्मणके ब्रह्मतेजकी वृद्धि होती है ?

**ब्रह्माजीने कहा**—बेटा ! श्रेष्ठ ब्राह्मणको चाहिये कि वह प्रतिदिन कुछ रात रहते ही बिस्तरसे उठ जाय और गोविन्द, माधव, कृष्ण, हरि, दामोदर, नारायण, जगन्नाथ, वासुदेव, वेदमाता सावित्री, अजन्मा, विभु, सरस्वती, महालक्ष्मी, ब्रह्मा, शङ्कर, शिव, शम्भु, ईश्वर, महेश्वर, सूर्य, गणेश, स्कन्द, गौरी, भागीरथी और शिवा आदि नामोंका कीर्तन करे। जो मनुष्य सबेरे उठकर इन सबका स्मरण करता है, वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे निःसन्देह मुक्त हो जाता है। तात ! एक बार भी इन नामोंका उच्चारण करनेपर सम्पूर्ण यज्ञोंका तथा लाखों गोदानका फल मिलता है।

इस प्रकार उपर्युक्त नामोंका उच्चारण करके गाँवसे बाहर दूर जाकर साफ-सुथरे स्थानमें मल-मूत्रका परित्याग करे। यदि रातका समय हो तो दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके और दिनमें उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके शौच होना चाहिये। इसके बाद [हाथ-मुँह धो, कुल्ला करके] गूलर आदिकी लकड़ीसे दाँत साफ करना चाहिये। तत्पश्चात् द्विजको स्नान आदि करके संयमपूर्वक बैठकर सन्ध्योपासन करना चाहिये। पूर्वाह्णकालमें रक्तवर्णा गायत्री, मध्याह्नकालमें शुक्लवर्णा सावित्री और सायंकालमें श्यामवर्णा सरस्वतीका विधिपूर्वक ध्यान करना उचित है।

प्रतिदिनके स्नानकी विधि इस प्रकार है। अपने ज्ञानके अनुसार यत्नपूर्वक स्नान-विधिका पालन करना चाहिये। पहले शरीरको जलसे भिगोकर फिर उसमें मिट्टी लगाये। मस्तक, ललाट, नासिका, हृदय, भौंह, बाहु, पसली, नाभि, घुटने और दोनों पैरोंमें मृत्तिका लगाना उचित है। मनुष्यको शुद्धिकी इच्छासे [शौच होकर] एक बार लिङ्गमें, तीन बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें तथा पुनः सात बार दोनों हाथोंमें मिट्टी लगानी चाहिये। 'घोड़े, रथ और भगवान् श्रीविष्णुद्वारा आक्रान्त होनेवाली मृत्तिकामयी वसुन्धरे ! मेरे द्वारा जो दुष्कर्म या पाप हुए हों, उन्हें तुम हर लो।'*—इस मन्त्रसे जो अपने शरीरमें मिट्टीका लेप करता है, उसके सब पापोंका क्षय होता है तथा वह मनुष्य सर्वथा शुद्ध हो जाता है। तदनन्तर विद्वान् पुरुष नद, नदी, पोखरा, सरोवर या कुएँपर जाकर वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक स्नान करे। उसे नदी आदिकी जल-राशिमें प्रवेश करके स्नान करना चाहिये और कुएँपर नहाना हो तो किनारे रहकर घड़ेसे स्नान करना उचित है। मनुष्यको अपने समस्त पापोंका नाश करनेके लिये विधिवत् स्नान करना चाहिये। सबेरेका स्नान महान् पुण्यदायक और सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो ब्राह्मण सदा प्रातःकाल स्नान करता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। प्रातः-सन्ध्याके समय चार दण्डतक जल अमृतके समान रहता है, वह पितरोंको सुधाके समान तृप्तिदायी होता है। उसके बाद दो घड़ीतक अर्थात् कुल एक पहरतक जल मधुके समान रहता है; वह भी पितरोंकी प्रसन्नता बढ़ानेवाला होता है। तत्पश्चात् डेढ़ पहरतकका जल दूधके समान माना गया है। उसके बाद चार दण्डतकका जल दुग्ध-मिश्रित-सा रहता है।

**नारदजीने कहा**—देवेश्वर ! अब मुझे यह बताइये कि जलके देवता कौन हैं तथा जिस प्रकार मैं तर्पणकी विधि ठीक-ठीक जान सकूँ, ऐसा उपदेश कीजिये।

**ब्रह्माजीने कहा**—बेटा ! सम्पूर्ण लोकोंमें भगवान् श्रीविष्णु ही जलके देवता माने गये हैं; अतः जो जलसे स्नान करके पवित्र होता है, उसका भगवान् श्रीविष्णु कल्याण करते हैं। एक घूँट जल पीकर भी मनुष्य पवित्र हो जाता है। विशेष बात यह है कि

---

* अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

कुशके संसर्गसे जल अमृतसे भी बढ़कर होता है। कुश सम्पूर्ण देवताओंका निवासस्थान है; पूर्वकालमें मैंने ही उसे उत्पन्न किया था। कुशके मूलमें स्वयं मैं (ब्रह्मा) उसके मध्यभागमें श्रीविष्णु और अग्रभागमें भगवान् श्रीशङ्कर विराजमान हैं; इन तीनोंके द्वारा कुशकी प्रतिष्ठा है। अपने हाथोंमें कुश धारण करनेवाला द्विज सदा पवित्र माना गया है; वह यदि किसी स्तोत्र या मन्त्रका पाठ करे तो उसका सौगुना महत्त्व बतलाया गया है। वही यदि तीर्थमें किया जाय तो उसका फल हजारगुना अधिक होता है। कुश, काश, दूर्वा, जौका पत्ता, धानका पत्ता, बल्वज और कमल—ये सात प्रकारके कुश बताये गये हैं।* इनमें पूर्व-पूर्व कुश अधिक पवित्र माने गये हैं। ये सभी कुश लोकमें प्रतिष्ठित हैं।

तिलके सम्पर्कसे जल अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। जो प्रतिदिन स्नान करके तिलमिश्रित जलसे पितरोंका तर्पण करता है, वह अपने दोनों कुलोंका (पितृकुल एवं मातृकुलका) उद्धार करके ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वर्षाके चार महीनोंमें दीपदान करनेसे पितरोंके ऋणसे छुटकारा मिलता है। जो एक वर्षतक प्रति अमावास्याको तिलोंके द्वारा पितरोंका तर्पण करता है, वह विनायक-पदवीको प्राप्त होता है और सम्पूर्ण देवता उसकी पूजा करते हैं। जो समस्त युगादि तिथियोंको तिलोंद्वारा पितरोंका तर्पण करता है, उसे अमावास्याकी अपेक्षा सौगुना अधिक फल प्राप्त होता है। अयन आरम्भ होनेके दिन, विषुव योगमें, पूर्णिमा तथा अमावास्याको पितरोंका तर्पण करके मनुष्य स्वर्ग-लोकमें प्रतिष्ठित होता है। मन्वन्तरसंज्ञक तिथियोंमें तथा अन्यान्य पुण्यपर्वोंके अवसरपर भी तर्पण करनेसे यही फल होता है। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें गया आदि पुण्य तीर्थोंके भीतर पितरोंका तर्पण करके मनुष्य वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। इसलिये कोई पुण्यदिवस प्राप्त होनेपर पितृसमुदायका तर्पण करना चाहिये। एकाग्रचित्त होकर पहले देवताओंका तर्पण करनेके पश्चात् विद्वान् पुरुष पितरोंका तर्पण करनेका अधिकारी होता है। श्राद्धमें भोजनके समय एक ही हाथसे अन्न परोसे, किन्तु तर्पणके समय दोनों हाथोंसे जल दे; यही सनातन विधि है। दक्षिणाभिमुख होकर पवित्र भावसे **'तृप्यताम्'** इस वाक्यके साथ नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए पितरोंका तर्पण करना चाहिये।

जो मोहवश सफेद तिलोंके द्वारा पितृवर्गका तर्पण करता है, उसका किया हुआ तर्पण व्यर्थ होता है। यदि दाता स्वयं जलमें स्थित होकर पृथ्वीपर तर्पणका जल गिराये तो उसका वह जलदान व्यर्थ हो जाता है, किसीके पास नहीं पहुँचता। इसी प्रकार जो स्थलमें खड़ा होकर जलमें तर्पणका जल गिराता है, उसका दिया हुआ जल भी निरर्थक होता है; वह पितरोंको नहीं प्राप्त होता। जो जलमें नहाकर भीगे वस्त्र पहने हुए ही तर्पण करता है, उसके पितर देवताओंसहित सदा तृप्त रहते हैं। विद्वान् पुरुष धोबीके धोये हुए वस्त्रको अशुद्ध मानते हैं। अपने हाथसे पुनः धोनेपर ही वह वस्त्र शुद्ध होता है।† जो सूखे वस्त्र पहने हुए किसी पवित्र स्थानपर बैठकर पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितर दसगुनी तृप्ति लाभ करते हैं। जो अपनी तर्जनी अँगुलीमें चाँदीकी अँगूठी धारण करके पितरोंका तर्पण करता है, उसका सब तर्पण लाखगुना अधिक फल देनेवाला होता है। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष यदि अनामिका अँगुलीमें सोनेकी अँगूठी पहनकर पितृवर्गका तर्पण करे तो वह करोड़ोंगुना अधिक फल देनेवाला होता है।

जो स्नान करनेके लिये जाता है, उसके पीछे प्याससे पीड़ित देवता और पितर भी वायुरूप होकर

---

*कुशाः काशास्तथा दूर्वा यवपत्राणि व्रीहयः। बल्वजाः पुण्डरीकाश्च कुशाः सप्त प्रकीर्त्तिताः॥ (४६। ३४-३५)

†रजकैः क्षालितं वस्त्रमशुद्धं कवयो विदुः। हस्तप्रक्षालनेनैव पुनर्वस्त्रं च शुद्ध्यति॥ (४६। ५३)

जलकी आशासे जाया करते हैं; किन्तु जब वह नहाकर धोती निचोड़ने लगता है, तब वे निराश लौट जाते हैं; अतः पितृतर्पण किये बिना धोती नहीं निचोड़नी चाहिये। मनुष्यके शरीरमें जो साढ़े तीन करोड़ रोएँ हैं, वे सम्पूर्ण तीर्थोंके प्रतीक हैं। उनका स्पर्श करके जो जल धोतीपर गिरता है, वह मानो सम्पूर्ण तीर्थोंका ही जल गिरता है; इसलिये तर्पणके पहले धोये हुए वस्त्रको निचोड़ना नहीं चाहिये। देवता स्नान करनेवाले व्यक्तिके मस्तकसे गिरनेवाले जलको पीते हैं, पितर मूँछ-दाढ़ीके जलसे तृप्त होते हैं, गन्धर्व नेत्रोंका जल और सम्पूर्ण प्राणी अधोभागका जल ग्रहण करते हैं। इस प्रकार देवता, पितर, गन्धर्व तथा सम्पूर्ण प्राणी स्नानमात्रसे संतुष्ट होते हैं। स्नानसे शरीरमें पाप नहीं रह जाता। जो मनुष्य प्रतिदिन स्नान करता है, वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। देवता और महर्षि तर्पणतक स्नानका ही अङ्ग मानते हैं। तर्पणके बाद विद्वान् पुरुषको देवताओंका पूजन करना चाहिये।

जो गणेशकी पूजा करता है, उसके पास कोई विघ्न नहीं आता। लोग धर्म और मोक्षके लिये लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुकी, आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये शङ्करकी, आरोग्यके लिये सूर्यकी तथा सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये भवानीकी पूजा करते हैं। देवताओंकी पूजा करनेके पश्चात् बलिवैश्वदेव करना चाहिये। पहले अग्निकार्य करके फिर ब्राह्मणोंको तृप्त करनेवाला अतिथियज्ञ करे। देवताओं और सम्पूर्ण प्राणियोंका भाग देकर मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है। इसलिये प्रतिदिन पूरा प्रयत्न करके नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। जो स्नान नहीं करता, वह मल भोजन करता है। जो जप नहीं करता, वह पीब और रक्तपान करता है। जो प्रतिदिन तर्पण नहीं करता, वह पितृघाती होता है। देवताओंकी पूजा न करनेपर ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है। सन्ध्योपासन न करके पापी मनुष्य सूर्यकी हत्या करता है।

**नारदजीने पूछा**—पिताजी! ब्राह्मणादि वर्णोंके सदाचार और उनके कर्तव्योंका क्रम बतलाइये, साथ ही समस्त प्रवृत्तिप्रधान कर्मोंका वर्णन कीजिये।

**ब्रह्माजीने कहा**—वत्स! मनुष्य आचारसे आयु, धन तथा स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करता है। आचार अशुभ लक्षणोंका निवारण करता है। आचारहीन पुरुष संसारमें निन्दित, सदा दुःखका भागी, रोगी और अल्पायु होता है। अनाचारी मनुष्यको निश्चय ही नरकमें निवास करना पड़ता है तथा आचारसे श्रेष्ठ लोककी प्राप्ति होती है; इसलिये तुम आचारका यथार्थरूपमें वर्णन सुनो।

प्रतिदिन अपने घरको गोबरसे लीपना चाहिये। उसके बाद काठका पीढ़ा, बर्तन और पत्थर धोने चाहिये। काँसेका बर्तन राखसे और ताँबा खटाईसे शुद्ध होता है। सोने और चाँदी आदिके बर्तन जलमात्रसे धोनेपर शुद्ध हो जाते हैं। लोहेका पात्र आगके द्वारा तपाने और धोनेसे शुद्ध होता है। अपवित्र भूमि खोदने, जलाने, लीपने तथा धोनेसे एवं वर्षासे शुद्ध होती है। धातुनिर्मित पात्र, मणिपात्र तथा सब प्रकारके पत्थरसे बने हुए पात्रकी भस्म और मृत्तिकासे शुद्धि बतायी गयी है। शय्या, स्त्री, बालक, वस्त्र, यज्ञोपवीत और कमण्डलु—ये अपने हों तो सदा शुद्ध हैं और दूसरेके हों तो कभी शुद्ध नहीं माने जाते। एक वस्त्र धारण करके भोजन और स्नान न करे। दूसरेका उतारा हुआ वस्त्र कभी न धारण करे। केशों और दाँतोंकी सफाई सबेरे ही करनी चाहिये। गुरुजनोंको नित्यप्रति नमस्कार करना नित्यका कर्तव्य होना चाहिये। दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख—इन पाँचों अङ्गोंको धोकर विद्वान् पुरुष भोजन आरम्भ करे। जो इन पाँचोंको धोकर भोजन करता है, वह सौ वर्ष जीता है। देवता, गुरु, स्नातक, आचार्य और यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मणकी छायापर जान-बूझकर पैर नहीं रखना चाहिये। गौओंके समुदाय, देवता, ब्राह्मण, घी, मधु, चौराहे तथा प्रसिद्ध वनस्पतियोंको अपने दाहिने करके चलना चाहिये। गौ-ब्राह्मण, अग्नि-ब्राह्मण, दो ब्राह्मण तथा पति-पत्नीके बीचसे होकर नहीं निकलना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह स्वर्गमें रहता हो तो भी नीचे गिर जाता है। जूठे हाथसे अग्नि, ब्राह्मण, देवता,

गुरु, अपने मस्तक, पुष्पवाले वृक्ष तथा यज्ञोपयोगी पेड़का स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र—इन तीन प्रकारके तेजोंकी ओर जूठे मुँह कभी दृष्टि न डाले। इसी प्रकार ब्राह्मण, गुरु, देवता, राजा, श्रेष्ठ संन्यासी, योगी, देवकार्य करनेवाले तथा धर्मका उपदेश करनेवाले द्विजकी ओर भी जूठे मुँह दृष्टिपात न करे।

नदियों और समुद्रके किनारे, यज्ञ-सम्बन्धी वृक्षकी जड़के पास, बगीचेमें, फुलवारीमें, ब्राह्मणके निवास-स्थानपर, गोशालामें तथा साफ-सुथरी सुन्दर सड़कोंपर तथा जलमें कभी मल-त्याग न करे। धीर पुरुष अपने हाथ, पैर, मुख और केशोंको रूखे न रखे। दाँतोंपर मैल न जमने दे। नखको मुँहमें न डाले। रविवार और मंगलको तेल न लगाये। अपने शरीर और आसनपर ताल न दे। गुरुके साथ एक आसनपर न बैठे। श्रोत्रियके धनका अपहरण न करे। देवता और गुरुका भी धन न ले। राजा, तपस्वी, पङ्गु, अंधे तथा स्त्रीका धन भी न ले। ब्राह्मण, गौ, राजा, रोगी भारसे दबा हुआ मनुष्य, गर्भिणी स्त्री तथा अत्यन्त दुर्बल पुरुष सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे होकर उन्हें जानेके लिये रास्ता दे। राजा, ब्राह्मण तथा वैद्यसे झगड़ा न करे। ब्राह्मण और गुरु-पत्नीसे दूर ही रहना चाहिये। पतित, कोढ़ी, चाण्डाल, गोमांस-भक्षी और समाजबहिष्कृतको दूरसे ही त्याग दे। जो स्त्री दुष्टा, दुराचारिणी, कलङ्क लगानेवाली, सदा ही कलहसे प्रेम करनेवाली, प्रमादिनी, निडर, निर्लज्ज, बाहर घूमने-फिरनेवाली, अधिक खर्च करनेवाली और सदाचारसे हीन हो, उसको भी दूरसे ही त्याग देना चाहिये।

बुद्धिमान् शिष्यको उचित है कि वह रजस्वला अवस्थामें गुरुपत्नीको प्रणाम न करे, उसका चरण-स्पर्श न करे; यदि उस अवस्थामें भी वह उसे छू ले तो पुनः स्नान करनेसे ही उसकी शुद्धि होती है। शिष्य गुरु-पत्नीके साथ खेल-कूदमें भी भाग न ले। उसकी बात अवश्य सुने; किन्तु उसकी ओर आँख उठाकर देखे नहीं। पुत्रवधू, भाईकी स्त्री, अपनी पुत्री, गुरुपत्नी तथा अन्य किसी युवती स्त्रीकी ओर न तो देखे और न उसका स्पर्श करे। उपर्युक्त स्त्रियोंकी ओर भौंहें मटकाकर देखना, उनसे विवाद करना और अश्लील वचन बोलना सदा ही त्याज्य है। भूसी, अँगारे, हड्डी, राख, रूई, निर्माल्य (देवताको अर्पण की हुई वस्तु), चिताकी लकड़ी, चिता तथा गुरुजनोंके शरीरपर कभी पैर न रखे। अपवित्र, दूसरेका उच्छिष्ट तथा दूसरेकी रसोई बनानेके लिये रखा हुआ अन्न भोजन न करे। धीर पुरुष किसी दुष्टके साथ एक क्षण भी न तो ठहरे और न यात्रा ही करे। इसी प्रकार उसे दीपककी छायामें तथा बहेड़ेके वृक्षके नीचे भी खड़ा नहीं होना चाहिये।

अपनेसे छोटेको प्रणाम न करे। चाचा और मामा आदिके आनेपर उठकर आसन दे और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहे। जो तेल लगाये हो [किन्तु स्नान न किये हो], जिसके मुँह और हाथ जूठे हों, जो भीगे वस्त्र पहने हो, रोगी हो, समुद्रमें घुसा हो, उद्विग्न हो, भार ढो रहा हो, यज्ञ-कार्यमें लिप्त हो, स्त्रियोंके साथ क्रीड़ामें आसक्त हो, बालकके साथ खेल कर रहा हो तथा जिसके हाथोंमें फूल और कुश हों, ऐसे व्यक्तिको प्रणाम न करे। मस्तक अथवा कानोंको ढककर, जलमें खड़ा होकर, शिखा खोलकर, पैरोंको बिना धोये अथवा दक्षिणाभिमुख होकर आचमन नहीं करना चाहिये। यज्ञोपवीतसे रहित या नग्न होकर, कच्छ खोलकर अथवा एक वस्त्र धारण करके आचमन करनेवाला पुरुष शुद्ध नहीं होता। पहले तर्जनी, मध्यमा और अनामिका—तीन अँगुलियोंसे मुखका स्पर्श करे, फिर अँगूठे और तर्जनीके द्वारा नासिकाका, अँगूठे और अनामिकाके द्वारा दोनों नेत्रोंका, कनिष्ठिका और अँगूठेके द्वारा दोनों कानोंका, केवल अँगूठेसे नाभिका, करतलसे हृदयका, सम्पूर्ण अँगुलियोंसे मस्तकका तथा अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों बाहुओंका स्पर्श करके मनुष्य शुद्ध होता है। इस विधिसे आचमन करके मनुष्यको संयमपूर्वक रहना चाहिये। ऐसा करनेसे वह सब पापोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है। भीगे पैर सोना, सूखे पैर भोजन करना और अँधेरेमें शयन तथा भोजन करना

निषिद्ध है। पश्चिम और दक्षिणकी ओर मुँह करके दन्तधावन न करे। उत्तर और पश्चिम दिशाकी ओर सिरहाना करके कभी न सोये; क्योंकि इस प्रकार शयन करनेसे आयु क्षीण होती है। पूर्व और दक्षिण दिशाकी ओर सिरहाना करके सोना उत्तम है। मनुष्यके एक बारका भोजन देवताओंका भाग, दूसरी बारका भोजन मनुष्योंका, तीसरी बारका भोजन प्रेतों और दैत्योंका तथा चौथी बारका भोजन राक्षसोंका भाग होता है।*

जो स्वर्गमें निवास करके इस लोकमें पुनः उत्पन्न हुए हैं, उनके हृदयमें नीचे लिखे चार सद्गुण सदा मौजूद रहते हैं—उत्तम दान देना, मीठे वचन बोलना, देवताओंका पूजन करना तथा ब्राह्मणोंको संतुष्ट रखना। इनके विपरीत कंजूसी, स्वजनोंकी निन्दा, मैले-कुचैले वस्त्र पहनना, नीच जनोंके प्रति भक्ति रखना, अत्यन्त क्रोध करना और कटुवचन बोलना—ये नरकसे लौटे हुए मनुष्योंके चिह्न हैं।† नवनीतके समान कोमल वाणी और करुणासे भरा कोमल हृदय—ये धर्मबीजसे उत्पन्न मनुष्योंकी पहचानके चिह्न हैं। दयाशून्य हृदय और आरीके समान मर्मस्थानोंको विदीर्ण करनेवाला तीखा वचन—ये पापबीजसे पैदा हुए पुरुषोंको पहचाननेके लक्षण हैं। जो मनुष्य इस आचार आदिसे युक्त प्रसङ्गको सुनता या सुनाता है, वह आचार आदिका फल पाकर पापसे शुद्ध हो स्वर्गमें जाता है और वहाँसे भ्रष्ट नहीं होता।

## पितृभक्ति, पातिव्रत्य, समता, अद्रोह और विष्णुभक्तिरूप पाँच महायज्ञोंके विषयमें ब्राह्मण नरोत्तमकी कथा

**भीष्मजीने कहा**—ब्रह्मन्! जो कर्म सबसे अधिक पुण्यजनक हो, जो संसारमें सदा और सबको प्रिय जान पड़ता हो तथा पूर्व पुरुषोंने जिसका अनुष्ठान किया हो, ऐसा कर्म आप अपनी इच्छाके अनुसार सोचकर बताइये।

**पुलस्त्यजी बोले**—राजन्! एक समयकी बात है, व्यासजीकी शिष्यमण्डलीके समस्त द्विज आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके धर्मकी बात पूछने लगे—ठीक इसी तरह, जैसे तुम मुझसे पूछते हो।

**द्विजोंने पूछा**—गुरुदेव! संसारमें पुण्यसे भी पुण्यतम और सब धर्मोंमें उत्तम कर्म क्या है? किसका अनुष्ठान करके मनुष्य अक्षय पदको प्राप्त करते हैं? मर्त्यलोकमें निवास करनेवाले छोटे-बड़े सभी वर्णोंके लोग जिसका अनुष्ठान कर सकें।

**व्यासजी बोले**—शिष्यगण! मैं तुमलोगोंको पाँच धर्मोंके आख्यान सुनाऊँगा। उन पाँचोंमेंसे एकका भी अनुष्ठान करके मनुष्य सुयश, स्वर्ग तथा मोक्ष भी पा सकता है। माता-पिताकी पूजा, पतिकी सेवा, सबके प्रति समान भाव, मित्रोंसे द्रोह न करना और भगवान् श्रीविष्णुका भजन करना—ये पाँच महायज्ञ हैं। ब्राह्मणो! पहले माता-पिताकी पूजा करके मनुष्य जिस धर्मका साधन करता है, वह इस पृथ्वीपर सैकड़ों यज्ञों तथा तीर्थयात्रा आदिके द्वारा भी दुर्लभ है। पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है और पिता ही सर्वोत्कृष्ट तपस्या है। पिताके प्रसन्न हो जानेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जिसकी सेवा और सद्गुणोंसे पिता-माता सन्तुष्ट रहते हैं, उस पुत्रको प्रतिदिन गङ्गास्नानका फल मिलता है। माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है; इसलिये सब प्रकारसे यत्नपूर्वक माता-पिताका पूजन करना चाहिये। जो माता-पिताकी प्रदक्षिणा करता है,

---

* देवात्रमेकभुक्तं तु द्विभुक्तं स्यान्नरस्य च। त्रिभुक्तं प्रेतदैत्यस्य चतुर्थं कौणपस्य तु॥

† स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि तेषां हृदये वसन्ति। दानं प्रशस्तं मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च॥
कार्पण्यवृत्तिः स्वजनेषु निन्दा कुचैलता नीचजनेषु भक्तिः। अतीव रोषः कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतस्य॥
(४६। १३१-१३२)

उसके द्वारा सातों द्वीपोंसे युक्त समूची पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। माता-पिताको प्रणाम करते समय जिसके हाथ, घुटने और मस्तक पृथ्वीपर टिकते हैं, वह अक्षय स्वर्गको प्राप्त होता है।* जबतक माता-पिताके चरणोंकी रज पुत्रके मस्तक और शरीरमें लगती रहती है, तभीतक वह शुद्ध रहता है। जो पुत्र माता-पिताके चरणकमलोंका जल पीता है, उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। वह मनुष्य संसारमें धन्य है। जो नीच पुरुष माता-पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है, वह महाप्रलयपर्यन्त नरकमें निवास करता है। जो रोगी, वृद्ध, जीविकासे रहित, अंधे और बहरे पिताको त्यागकर चला जाता है वह रौरव नरकमें पड़ता है।† इतना ही नहीं, उसे अन्त्यजों, म्लेच्छों और चाण्डालोंकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। माता-पिताका पालन-पोषण न करनेसे समस्त पुण्योंका नाश हो जाता है। माता-पिताकी आराधना न करके पुत्र यदि तीर्थ और देवताओंका सेवन भी करे तो उसे उसका फल नहीं मिलता।

ब्राह्मणो! इस विषयमें मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ, यत्नपूर्वक उसका श्रवण करो। इसका श्रवण करके भूतलपर फिर कभी तुम्हें मोह नहीं व्यापेगा।

पूर्वकालकी बात है—नरोत्तम नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण था। वह अपने माता-पिताका अनादर करके तीर्थसेवनके लिये चल दिया। सब तीर्थोंमें घूमते हुए उस ब्राह्मणके वस्त्र प्रतिदिन आकाशमें ही सूखते थे। इससे उसके मनमें बड़ा भारी अहङ्कार हो गया। वह समझने लगा, मेरे समान पुण्यात्मा और महायशस्वी दूसरा कोई नहीं है। एक दिन वह मुख ऊपरकी ओर करके यही बात कह रहा था, इतनेमें ही एक बगलेने उसके मुँहपर बीट कर दी। तब ब्राह्मणने क्रोधमें आकर

उसे शाप दे दिया। बेचारा बगला राखकी ढेरी होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बगलेकी मृत्यु होते ही नरोत्तमके भीतर महामोहने प्रवेश किया। उसी पापसे ब्राह्मणका वस्त्र अब आकाशमें नहीं ठहरता था। यह जानकर उसे बड़ा खेद हुआ। तदनन्तर आकाशवाणीने कहा—

---

* पित्रोरर्चाथ पत्युश्च साम्यं सर्वजनेषु च। मित्राद्रोहो विष्णुभक्तिरेते पञ्च महामखाः॥
प्राक् पित्रोरर्चया विप्रा यद्धर्मं साधयेन्नरः। न तत्क्रतुशतैरेव तीर्थयात्रादिभिर्भुवि॥
पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च। तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते॥
सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता। मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥
मातरं पितरंश्चैव यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥
जानुनी च करौ यस्य पित्रोः प्रणमतः शिरः। निपतन्ति पृथिव्यां च सोऽक्षयं लभते दिवम्॥
(४७। ७—१३)

† रोगिणं चापि वृद्धं च पितरं वृत्तिकर्शितम्। विकलं नेत्रकर्णाभ्यां त्यक्त्वा गच्छेच्च रौरवम्॥
(४७। १९)

'ब्राह्मण! तुम परम धर्मात्मा मूक चाण्डालके पास जाओ। वहाँ जानेसे तुम्हें धर्मका ज्ञान होगा। उसका वचन तुम्हारे लिये कल्याणकारी होगा।'

यह आकाशवाणी सुनकर ब्राह्मण मूक चाण्डालके घर गया। वहाँ जाकर उसने देखा, वह चाण्डाल सब प्रकारसे अपने माता-पिताकी सेवामें लगा है। जाड़ेके

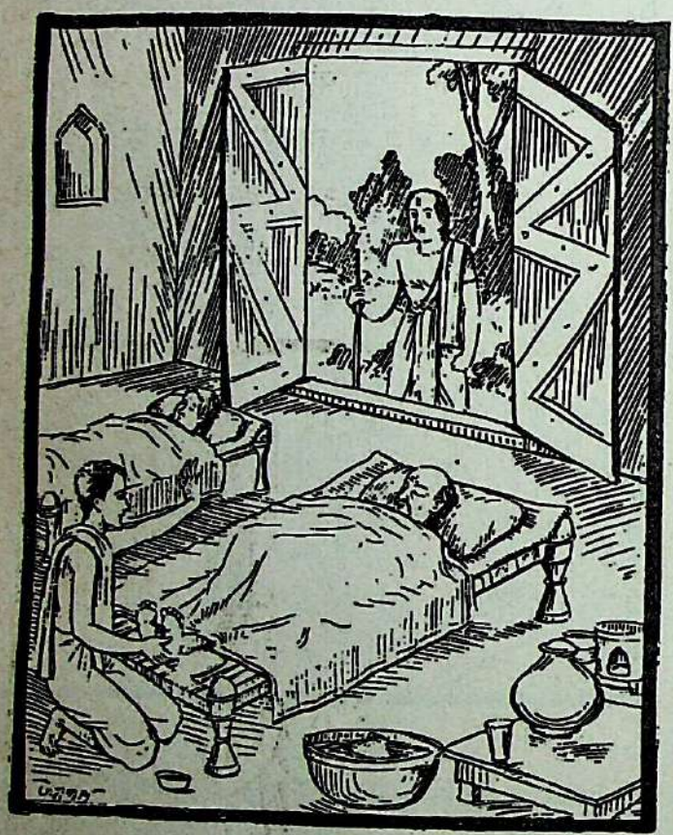

दिनोंमें वह अपने माँ-बापको स्नानके लिये गरम जल देता, उनके शरीरमें तेल मलता, तापनेके लिये अँगीठी जलाता, भोजनके पश्चात् पान खिलाता और रूईदार कपड़े पहननेको देता था। प्रतिदिन मिष्टान्न भोजनके लिये परोसता और वसन्त ऋतुमें महुएकी सुगन्धित माला पहनाता था। इनके सिवा और भी जो भोग-सामग्रियाँ प्राप्त होतीं, उन्हें देता और भाँति-भाँतिकी आवश्यकताएँ पूर्ण किया करता था। गर्मीकी मौसिममें प्रतिदिन माता-पिताको पंखा झलता था। इस प्रकार नित्यप्रति उनकी परिचर्या करके ही वह भोजन करता था। माता-पिताकी थकावट और कष्टका निवारण करना उसका सदाका नियम था। इन पुण्यकर्मोंके कारण चाण्डालका घर बिना किसी आधार और खंभेके ही आकाशमें स्थित था। उसके अंदर त्रिभुवनके स्वामी भगवान् श्रीहरि मनोहर ब्राह्मणका रूप धारण किये नित्य क्रीड़ा करते थे। वे सत्यस्वरूप परमात्मा अपने महान् सत्त्वमय तेजस्वी विग्रहसे उस चाण्डाल-मन्दिरकी शोभा बढ़ाते थे। यह सब देखकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। उसने मूक चाण्डालसे कहा—'तुम मेरे पास आओ, मैं तुमसे सम्पूर्ण लोकोंके सनातन हितकी बात पूछता हूँ; उसे ठीक-ठीक बताओ।'

**मूक चाण्डाल बोला**—विप्र! इस समय मैं माता-पिताकी सेवा कर रहा हूँ, आपके पास कैसे आऊँ? इनकी पूजा करके आपकी आवश्यकता पूर्ण करूँगा; तबतक मेरे दरवाजेपर ठहरिये, मैं आपका अतिथि-सत्कार करूँगा।

चाण्डालके इतना कहते ही ब्राह्मण-देवता आगबबूला हो गये और बोले—'मुझ ब्राह्मणकी सेवा छोड़कर तुम्हारे लिये कौन-सा कार्य बड़ा हो सकता है।'

**चाण्डाल बोला**—बाबा! क्यों व्यर्थ कोप करते हैं, मैं बगला नहीं हूँ। इस समय आपका क्रोध बगलेपर ही सफल हो सकता है, दूसरे किसीपर नहीं। अब आपकी धोती न तो आकाशमें सूखती है और न ठहर ही पाती है। अतः आकाशवाणी सुनकर आप मेरे घरपर आये हैं। थोड़ी देर ठहरिये तो मैं आपके प्रश्नका उत्तर दूँगा; अन्यथा पतिव्रता स्त्रीके पास जाइये। द्विजश्रेष्ठ! पतिव्रता स्त्रीका दर्शन करनेपर आपका अभीष्ट सिद्ध होगा।

**व्यासजी कहते हैं**—तदनन्तर, चाण्डालके घरसे ब्राह्मणरूपधारी भगवान् श्रीविष्णुने निकलकर उस द्विजसे कहा—'चलो, मैं पतिव्रता देवीके घर चलता हूँ।' द्विजश्रेष्ठ नरोत्तम कुछ सोचकर उनके साथ चल दिया। उसके मनमें बड़ा विस्मय हो रहा था। उसने रास्तेमें भगवान्से पूछा—'विप्रवर! आप इस चाण्डालके घरमें जहाँ स्त्रियाँ रहती हैं, किसलिये निवास करते हैं?'

**ब्राह्मणरूपधारी भगवान्ने कहा**—विप्रवर! इस समय तुम्हारा हृदय शुद्ध नहीं है; पहले पतिव्रता

आदिका दर्शन करो, उसके बाद मुझे ठीक-ठीक जान सकोगे।

**ब्राह्मणने पूछा**—तात! पतिव्रता कौन है? उसका शास्त्र-ज्ञान कितना बड़ा है? जिस कारण मैं उसके पास जा रहा हूँ, वह भी मुझे बतलाइये।

**श्रीभगवान् बोले**—ब्रह्मन्! नदियोंमें गङ्गाजी, स्त्रियोंमें पतिव्रता और देवताओंमें भगवान् श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं। जो पतिव्रता नारी प्रतिदिन अपने पतिके हितसाधनमें लगी रहती है, वह अपने पितृकुल और पतिकुल दोनों कुलोंकी सौ-सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है।*

**ब्राह्मणने पूछा**—द्विजश्रेष्ठ! कौन स्त्री पतिव्रता होती है? पतिव्रताका क्या लक्षण है? मैं जिस प्रकार इस बातको ठीक-ठीक समझ सकूँ, उस प्रकार उपदेश कीजिये।

**श्रीभगवान् बोले**—जो स्त्री पुत्रकी अपेक्षा सौ-गुने स्नेहसे पतिकी आराधना करती है, राजाके समान उसका भय मानती है और पतिको भगवान्का स्वरूप समझती है, वह पतिव्रता है। जो गृहकार्य करनेमें दासी, रमणकालमें वेश्या तथा भोजनके समय माताके समान आचरण करती है और जो विपत्तिमें स्वामीको नेक सलाह देकर मन्त्रीका काम करती है, वह स्त्री पतिव्रता मानी गयी है। जो मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा कभी पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करती तथा हमेशा पतिके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करती है, उस स्त्रीको पतिव्रता समझना चाहिये। जिस-जिस शय्यापर पति शयन करते हैं वहाँ-वहाँ जो प्रतिदिन यत्नपूर्वक उनकी पूजा करती है, पतिके प्रति कभी जिसके मनमें डाह नहीं पैदा होती, कृपणता नहीं आती और जो मान भी नहीं करती, पतिकी ओरसे आदर मिले या अनादर—दोनोंमें जिसकी समान बुद्धि रहती है, ऐसी स्त्रीको पतिव्रता कहते हैं। जो साध्वी स्त्री सुन्दर वेषधारी परपुरुषको देखकर उसे भ्राता, पिता अथवा पुत्र मानती है, वह भी पतिव्रता है।† द्विजश्रेष्ठ! तुम उस पतिव्रताके पास जाओ और उसे अपना मनोरथ कह सुनाओ। उसका नाम शुभा है। वह रूपवती युवती है, उसके हृदयमें दया भरी है। वह बड़ी यशस्विनी है। उसके पास जाकर तुम अपने हितकी बात पूछो।

**व्यासजी कहते हैं**—यों कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये। उन्हें अदृश्य होते देख ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पतिव्रताके घर जाकर उसके विषयमें पूछा। अतिथिकी बोली सुनकर पतिव्रता स्त्री वेगपूर्वक घरसे निकली और ब्राह्मणको आया देख दरवाजेपर खड़ी हो गयी। ब्राह्मणने उसे देखकर

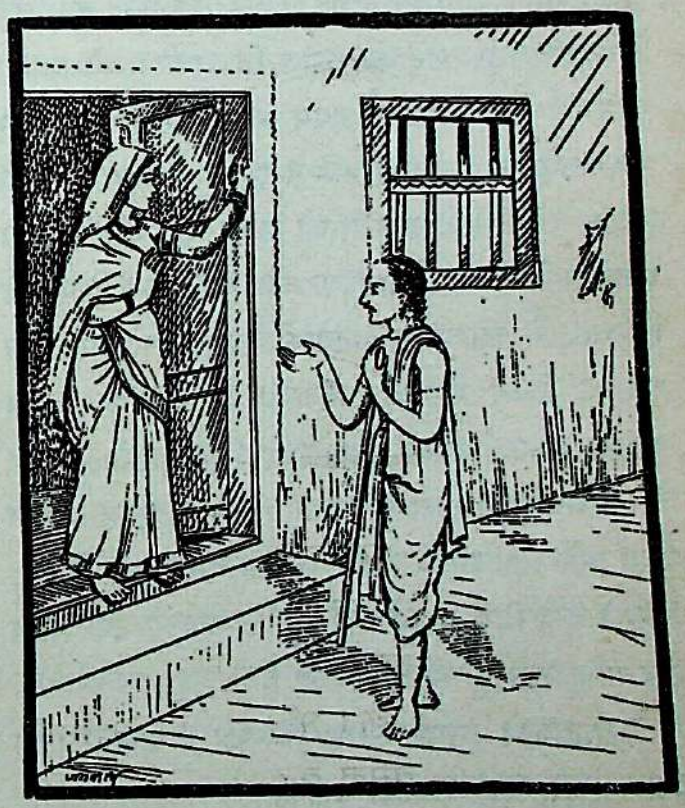

प्रसन्नतापूर्वक उससे कहा—'देवि! तुमने जैसा देखा और समझा है, उसके अनुसार स्वयं ही सोचकर मेरे लिये प्रिय और हितकी बात बताओ।'

---

*पतिव्रता च या नारी पत्युर्नित्यं हिते रता। कुलद्वयस्य पुरुषानुद्धरेत्सा शतं शतम्॥ (४७। ५१)

† पुत्राच्छतगुणं स्नेहाद्राजानं च भयादथ। आराधयेत् पतिं शौरिं या पश्येत् सा पतिव्रता॥
कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननीसमा। विपत्सु मन्त्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता॥

**पतिव्रता बोली**—ब्रह्मन्! इस समय मुझे पतिदेवकी पूजा करनी है, अतः अवकाश नहीं है; इसलिये आपका कार्य पीछे करूँगी। इस समय मेरा आतिथ्य ग्रहण कीजिये।

**ब्राह्मण बोला**—कल्याणी! मेरे शरीरमें इस समय भूख, प्यास और थकावट नहीं है। मुझे अभीष्ट बात बताओ, नहीं तो तुम्हें शाप दे दूँगा।

**तब उस पतिव्रताने भी कहा**—'द्विजश्रेष्ठ! मैं बगला नहीं हूँ, आप धर्म-तुलाधारके पास जाइये और उन्हींसे अपने हितकी बात पूछिये।' यों कहकर वह महाभागा पतिव्रता घरके भीतर चली गयी। तब ब्राह्मणने चाण्डालके घरकी भाँति वहाँ भी विप्ररूपधारी भगवान्‌को उपस्थित देखा। उन्हें देखकर वह बड़े विस्मयमें पड़ा और कुछ सोच-विचारकर उनके समीप गया। घरमें जानेपर उसे हर्षमें भरे हुए ब्राह्मण और उस पतिव्रताके भी दर्शन हुए। उन्हें देखकर नरोत्तम ब्राह्मणने कहा—'तात! देशान्तरमें जो घटना घटी थी, उसे इस पतिव्रता देवीने भी बता दिया और चाण्डालने तो बताया ही था। ये लोग उस घटनाको कैसे जानते हैं? इस बातको लेकर मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है। इससे बढ़कर महान् आश्चर्य और क्या हो सकता है।

**श्रीभगवान् बोले**—तात! महात्मा पुरुष अत्यन्त पुण्य और सदाचारके बलपर सबका कारण जान लेते हैं, जिससे तुम्हें विस्मय हुआ है। मुने! बताओ, इस समय उस पतिव्रताने तुमसे क्या कहा है?

**ब्राह्मणने कहा**—वह तो मुझे धर्म-तुलाधारसे प्रश्न करनेके लिये उपदेश देती है।

**श्रीभगवान् बोले**—'मुनिश्रेष्ठ! आओ, मैं उसके पास चलता हूँ।' यों कहकर भगवान् जब चलने लगे, तब ब्राह्मणने पूछा—'तुलाधार कहाँ रहता है?'

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—जहाँ मनुष्योंकी भीड़ एकत्रित है और नाना प्रकारके द्रव्योंकी बिक्री हो रही है, उस बाजारमें तुलाधार वैश्य इधर-उधर क्रय-विक्रय करता है। उसने कभी मन, वाणी या क्रियाद्वारा किसीका कुछ बिगाड़ नहीं किया, असत्य नहीं बोला और दुष्टता नहीं की। वह सब लोगोंके हितमें तत्पर रहता है। सब प्राणियोंमें समान भाव रखता तथा ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझता है। लोग जौ, नमक, तेल, घी, अनाजकी ढेरियाँ तथा अन्यान्य संगृहीत वस्तुएँ उसकी जबानपर ही लेते-देते हैं। वह प्राणान्त उपस्थित होनेपर भी सत्य छोड़कर कभी झूठ नहीं बोलता। इसीसे वह धर्म-तुलाधार कहलाता है।

श्रीभगवान्‌के यों कहनेपर ब्राह्मणने नाना प्रकारके रसोंको बेचते हुए तुलाधारको देखा। वह बिक्रीकी वस्तुओंके सम्बन्धमें बातें कर रहा था। बहुत-से पुरुष और स्त्रियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर खड़ी थीं। ब्राह्मणको उपस्थित देख तुलाधारने मधुर वाणीमें पूछा—

'ब्रह्मन्! यहाँ कैसे पधारना हुआ?'

**ब्राह्मणने कहा**—मुझे धर्मका उपदेश करो, मैं इसीलिये तुम्हारे पास आया हूँ।

**तुलाधार बोला**—विप्रवर! जबतक लोग मेरे पास रहेंगे, तबतक मैं निश्चिन्त नहीं हो सकूँगा। पहरभर राततक यही हालत रहेगी। अतः आप मेरा उपदेश मानकर धर्माकरके पास जाइये। बगलेकी मृत्युसे होनेवाला दोष और आकाशमें धोती सुखानेका रहस्य—ये सभी बातें आगे आपको मालूम हो जायँगी। धर्माकरका नाम अद्रोहक है। वे बड़े सज्जन हैं। उनके पास जाइये। वहाँ उनके उपदेशसे आपकी कामना सफल होगी।

---

भर्तुराज्ञां न लङ्घेद्या मनोवाक्कायकर्मभिः। भुक्ते पतौ सदा चात्ति सा च भार्या पतिव्रता॥
यस्यां यस्यां तु शय्यायां पतिस्स्वपिति यत्नतः। तत्र तत्र च सा भर्तुरर्चां करोति नित्यशः॥
नैव मत्सरतां याति न कार्पण्यं न मानिनी। मानेऽमाने समानत्वं या पश्येत् सा पतिव्रता॥
सुवेषं या नरं दृष्ट्वा भ्रातरं पितरं सुतम्। मन्यते च परं साध्वी सा च भार्या पतिव्रता॥

(४७। ५५—६०)

यों कहकर तुलाधार खरीद-बिक्रीमें लग गया। नरोत्तमने विप्ररूपधारी भगवान्‌से पूछा—'तात! अब मैं तुलाधारके कथनानुसार सज्जन अद्रोहकके पास जाऊँगा। परन्तु मैं उनका घर नहीं जानता।'

**श्रीभगवान् बोले**—चलो, मैं तुम्हारे साथ उनके घर चलूँगा।

तदनन्तर मार्गमें जाते हुए भगवान्‌से ब्राह्मणने पूछा—'तात! तुलाधार न तो देवताओं एवं ऋषियोंका और न पितरोंका ही तर्पण करता है। फिर देशान्तरमें संघटित हुए मेरे वृत्तान्तको वह कैसे जानता है? इससे मुझे बड़ा विस्मय होता है। आप इसका सब कारण बताइये।

**श्रीभगवान् बोले**—ब्रह्मन्! उसने सत्य और समतासे तीनों लोकोंको जीत लिया है; इसीसे उसके ऊपर पितर, देवता तथा मुनि भी सन्तुष्ट रहते हैं। धर्मात्मा तुलाधार उपर्युक्त गुणोंके कारण ही भूत और भविष्यकी सब बातें जानता है। सत्यसे बढ़कर कोई धर्म और झूठसे बड़ा दूसरा कोई पाप नहीं है।* जो पुरुष पापसे रहित और समभावमें स्थित है, जिसका चित्त शत्रु, मित्र और उदासीनके प्रति समान है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है और वह भगवान् श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। समता धर्म और समता ही उत्कृष्ट तपस्या है। जिसके हृदयमें सदा समता विराजती है, वही पुरुष सम्पूर्ण लोकोंमें श्रेष्ठ, योगियोंमें गणना करनेके योग्य और निर्लोभ होता है। जो सदा इसी प्रकार समतापूर्ण बर्ताव करता है, वह अपनी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। उस पुरुषमें सत्य, इन्द्रिय-संयम; मनोनिग्रह, धीरता, स्थिरता, निर्लोभता और आलस्यहीनता—ये सभी गुण प्रतिष्ठित होते हैं। समताके प्रभावसे धर्मज्ञ पुरुष देवलोक और मनुष्य-लोकके सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको जान लेता है। उसकी देहके भीतर भगवान् श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं। सत्य और सरलता आदि गुणोंमें उसकी समानता करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं होता। वह साक्षात् धर्मका स्वरूप होता है और वही इस जगत्‌को धारण करता है।

**ब्राह्मणने कहा**—विप्रवर! आपकी कृपासे मुझे तुलाधारके सर्वज्ञ होनेका कारण ज्ञात हो गया; अब अद्रोहकका जो वृत्तान्त हो, वह मुझे बताइये।

**श्रीभगवान् बोले**—विप्रवर! पूर्वकालकी बात है, एक राजपुत्रकी कुलवती स्त्री बड़ी सुन्दरी और नयी अवस्थाकी थी। वह कामदेवकी पत्नी रति और इन्द्रकी पत्नी शचीके समान मनको हरनेवाली थी। राजकुमार उसे अपने प्राणोंके समान प्यार करते थे। उस सुन्दरी भार्याका नाम भी सुन्दरी ही था। एक दिन राजकुमारको राजकार्यके लिये ही अकस्मात् बाहर जानेके लिये उद्यत होना पड़ा। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'मैं प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी अपनी इस भार्याको किस स्थानपर रखूँ, जिससे इसके सतीत्वकी रक्षा निश्चितरूपसे हो सके।' इस बातपर खूब विचार करके राजकुमार सहसा अद्रोहकके घरपर आये और उनसे अपनी पत्नीकी रक्षाका प्रस्ताव करने लगे। उनकी बात सुनकर अद्रोहकको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'तात! न तो मैं आपका पिता हूँ, न भाई हूँ, न बान्धव हूँ, न आपकी पत्नीके पिता-माताके कुलका ही; तथा सुहृदोंमेंसे भी कोई नहीं हूँ, फिर मेरे घरमें इसको रखनेसे आप किस प्रकार निश्चिन्त हो सकेंगे?'

**राजकुमार बोले**—महात्मन्! इस संसारमें आपके समान धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय पुरुष दूसरा कोई नहीं है।

यह सुनकर अद्रोहकने उस विज्ञ राजकुमारसे कहा—'भैया! मुझे दोष न देना। इस त्रिभुवन-मोहिनी भार्याकी रक्षा करनेमें कौन पुरुष समर्थ हो सकता है।'

---

*सत्येन समभावेन जितं तेन जगत्त्रयम्। तेनातृप्यन्त पितरो देवा मुनिगणैः सह॥
भूतभव्यप्रवृत्तं च तेन जानाति धार्मिकः। नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्॥
(४७। ९२-९३)

**राजपुत्रने कहा**—मैं सब बातोंका भलीभाँति विचार करके ही आपके पास आया हूँ। यह आपके घरमें रहे, अब मैं जाता हूँ।

राजकुमारके यों कहनेपर वे फिर बोले—'भैया ! इस शोभासम्पन्न नगरमें बहुतेरे कामी पुरुष भरे पड़े हैं। यहाँ किसी स्त्रीके सतीत्वकी रक्षा कैसे हो सकती है।' राजकुमार पुनः बोले—'जैसे भी हो, रक्षा कीजिये। मैं तो अब जाता हूँ।' गृहस्थ अद्रोहकने धर्मसंकटमें पड़कर कहा—'तात ! मैं उचित और हितकारी समझकर इसके साथ सदा अनुचित बर्ताव करूँगा और उसी अवस्थामें ऐसी स्त्री सदा मेरे घरमें सुरक्षित रह सकती है। अन्यथा इस अरक्ष्य वस्तुकी रक्षाके लिये आप ही कोई अनुकूल और प्रिय उपाय बतलाइये। इसे मेरी शय्यापर मेरे एक ओर मेरी स्त्रीके साथ शयन करना होगा। फिर भी यदि आप इसे अपनी वल्लभा समझें, तब तो यह रह सकती है; नहीं तो यहाँसे चली जाय।'

यह सुनकर राजकुमारने एक क्षणतक कुछ विचार किया; फिर बोले—'तात ! मुझे आपकी बात स्वीकार है। आपको जो अनुकूल जान पड़े, वही कीजिये।' ऐसा कहकर राजकुमार अपनी पत्नीसे बोले—'सुन्दरी ! तुम इनके कथनानुसार सब कार्य करना, तुमपर कोई दोष नहीं आयेगा। इसके लिये मेरी आज्ञा है।' यों कहकर वे अपने पिता महाराजके आदेशसे गन्तव्य स्थानको चले गये। तदनन्तर रातमें अद्रोहकने जैसा कहा था, वैसा ही किया। वे धर्मात्मा नित्यप्रति दोनों स्त्रियोंके बीचमें शयन करते थे। फिर भी वे अपनी और परायी स्त्रीके विषयमें कभी धर्मसे विचलित नहीं होते थे। अपनी स्त्रीके स्पर्शसे ही उनके मनमें कामोपभोगकी इच्छा होती थी। इधर राजकुमारकी स्त्रीके स्तन भी बार-बार उनकी पीठमें लग जाते थे; किन्तु उसका उनके प्रति वैसा ही भाव होता था, जैसा बालक पुत्रका माताके स्तनोंके प्रति होता है। वे प्रतिदिन उसके प्रति मातृभावको ही दृढ़ रखते थे। क्रमशः उनके हृदयसे स्त्री-संभोगकी इच्छा ही जाती रही। इस प्रकार छः मास व्यतीत होनेपर राजकुमारीके पति अद्रोहकके नगरमें आये। उन्होंने लोगोंसे अद्रोहक तथा अपनी स्त्रीके बर्तावके सम्बन्धमें पूछा। लोगोंने भी अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उत्तर दिया। कोई राजकुमारके प्रबन्धको उत्तम बताते थे। कुछ नौजवान उनकी बात सुनकर आश्चर्यमें पड़ जाते थे और कुछ लोग इस प्रकार उत्तर देते थे—'भाई ! तुमने अपनी स्त्री उसे सौंप दी है और वह उसीके साथ शयन करता है। स्त्री और पुरुषमें एकत्र संसर्ग होनेपर दोनोंके मन शान्त कैसे रह सकते हैं।' अद्रोहकने अपने धर्माचरणके बलसे लोगोंकी कुत्सित चर्चा सुन ली। तब उनके मनमें लोकनिन्दासे मुक्त होनेका शुभ संकल्प प्रकट हुआ। उन्होंने स्वयं लकड़ी एकत्रित करके एक बहुत बड़ी चिता बनायी और उसमें आग लगा दी। चिता प्रज्वलित हो उठी। इसी समय प्रतापी राजकुमार अद्रोहकके घर आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने अद्रोहक तथा अपनी पत्नीको भी देखा। पत्नीका मुख प्रसन्नतासे खिला हुआ था और अद्रोहक अत्यन्त विषादयुक्त थे। उन दोनोंकी मानसिक स्थिति जानकर राजकुमारने कहा—'भाई ! मैं आपका मित्र हूँ और बहुत दिनोंके बाद यहाँ लौटा हूँ। आप मुझसे बातचीत क्यों नहीं करते ?'

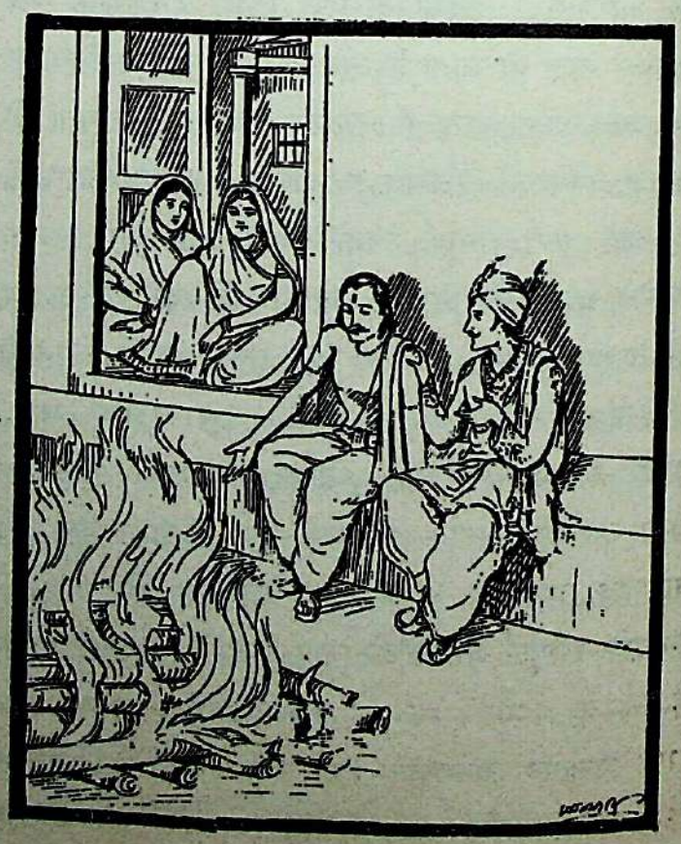

**अद्रोहकने कहा**—मित्र ! मैंने आपके हितके लिये जो दुष्कर कर्म किया है, वह लोक-निन्दाके कारण व्यर्थ-सा हो गया है। अतः अब मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा। सम्पूर्ण देवता और मनुष्य मेरे इस कार्यको देखें।

**श्रीभगवान् कहते हैं**—ऐसा कहकर महाभाग अद्रोहक अग्निमें प्रवेश कर गये। किन्तु अग्नि उनके शरीर, वस्त्र और केशोंको जला नहीं सका। आकाशमें खड़े समस्त देवता प्रसन्न होकर उन्हें साधुवाद देने लगे। सबने चारों ओरसे उनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा की। जिन-जिन लोगोंने राजकुमारकी पत्नी और अद्रोहकके सम्बन्धमें कलङ्कपूर्ण बात कही थी, उनके मुँहपर नाना प्रकारकी कोढ़ हो गयी। देवताओंने वहाँ उपस्थित हो अद्रोहकको आगसे खींचकर बाहर निकाला और प्रसन्नतापूर्वक दिव्य पुष्पोंसे उनका पूजन किया। उनका चरित्र सुनकर मुनियोंको भी बड़ा विस्मय हुआ। समस्त मुनिवरो तथा विभिन्न वर्णोंके मनुष्योंने उन महातेजस्वी महात्माका पूजन किया और उन्होंने भी सबका विशेष आदर किया। उस समय देवताओं, असुरों और मनुष्योंने मिलकर उनका नाम सज्जनाद्रोहक रखा। उनके चरणोंकी धूलिसे पवित्र हुई भूमिके ऊपर खेतीकी उपज अधिक होने लगी। देवताओंने राजकुमारसे कहा—'तुम अपनी इस स्त्रीको स्वीकार करो। इन अद्रोहकके समान कोई मनुष्य इस संसारमें नहीं हुआ है। इस समय इस पृथ्वीपर दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जिसे काम और लोभने परास्त न किया हो। देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, मृग, पक्षी और कीट आदि सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये यह काम दुर्जय है। काम, लोभ और क्रोधके कारण ही प्राणियोंको सदा जन्म लेना पड़ता है। काम ही संसार-बन्धनमें डालनेवाला है। प्रायः कहीं भी कामरहित पुरुषका मिलना कठिन है। इन अद्रोहकने सबको जीत लिया है; चौदहों भुवनोंपर विजय प्राप्त की है। इनके हृदयमें भगवान् श्रीवासुदेव बड़ी प्रसन्नताके साथ नित्य विराजमान रहते हैं। इनका स्पर्श और दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और निष्पाप होकर अक्षय स्वर्ग प्राप्त करते हैं।'

यों कहकर देवता विमानोंपर बैठ आनन्दपूर्वक स्वर्गलोकको पधारे। मनुष्य भी सन्तुष्ट होकर अपने-अपने स्थानको चल दिये तथा वे दोनों स्त्री-पुरुष भी अपने राजमहलको चले गये। तबसे अद्रोहकको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है। वे देवताओंको भी देखते हैं और तीनों लोकोंकी बातें अनायास ही जान लेते हैं।

**व्यासजी कहते हैं**—तदनन्तर अद्रोहककी गलीमें जाकर द्विजने उनका दर्शन किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उनसे धर्ममय उपदेश तथा हितकी बातें पूछीं।

**सज्जनाद्रोहकने कहा**—धर्मज्ञ ब्राह्मण ! आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ वैष्णवके पास जाइये। उनका दर्शन करनेसे इस समय आपका मनोरथ सफल होगा। बगलेकी मृत्यु तथा आकाशमें वस्त्रके न सूखने आदिका कारण आपको विदित हो जायगा। इसके सिवा आपके हृदयमें और भी जो-जो कामनाएँ हैं, उनकी भी पूर्ति हो जायगी।

यह सुनकर वह ब्राह्मण द्विजरूपधारी भगवान्‌के साथ प्रसन्नतापूर्वक वैष्णवके यहाँ आया। वहाँ पहुँचकर उसने सामने बैठे हुए शुद्ध हृदयवाले एक तेजस्वी पुरुषको देखा, जो समस्त शुद्ध लक्षणोंसे सम्पन्न एवं अपने तेजसे देदीप्यमान थे। धर्मात्मा द्विजने ध्यानमग्न हरिभक्तसे कहा—'महात्मन् ! मैं बहुत दूरसे आपके पास आया हूँ। मेरे लिये जो-जो कर्तव्य उचित हो, उसका उपदेश कीजिये।'

**वैष्णवने कहा**—देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णु तुमपर प्रसन्न हैं। इस समय तुम्हें देखकर मेरा हृदय उल्लसित-सा हो रहा है। अतः तुम्हें अनुपम कल्याणकी प्राप्ति होगी। आज तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। मेरे घरमें भगवान् श्रीविष्णु विराजमान हैं।

वैष्णवके यों कहनेपर ब्राह्मणने पुनः उनसे कहा—'भगवान् श्रीविष्णु कहाँ हैं, आज कृपा करके मुझे उनका दर्शन कराइये।'

**वैष्णवने कहा**—इस सुन्दर देवालयमें प्रवेश करके तुम परमेश्वरका दर्शन करो। ऐसा करनेसे तुम्हें जन्म और मृत्युके बन्धनमें डालनेवाले घोर पापसे

छुटकारा मिल जायगा।

उनकी बात सुनकर जब ब्राह्मणने देवमन्दिरमें प्रवेश किया तो देखा—वे ही विप्ररूपधारी भगवान् कमलके आसनपर विराजमान हैं। ब्राह्मणने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके दोनों चरण पकड़कर कहा—'देवेश्वर! अब मुझपर प्रसन्न होइये। मैंने पहले आपको नहीं पहचाना था। प्रभो! इस लोक और परलोकमें भी मैं आपका किङ्कर बना रहूँ। मधुसूदन! मुझे अपने ऊपर आपका प्रत्यक्ष अनुग्रह दिखायी दिया है। यदि मुझपर कृपा हो तो मैं आपका साक्षात् स्वरूप देखना चाहता हूँ।'

**भगवान् श्रीविष्णु बोले**—भूदेव! तुम्हारे ऊपर मेरा प्रेम सदा ही बना रहता है। मैंने स्नेहवश ही तुम्हें पुण्यात्मा महापुरुषोंका दर्शन कराया है। पुण्यवान् महात्माओंके एक बार भी दर्शन, स्पर्श, ध्यान एवं नामोच्चारण करनेसे तथा उनके साथ वार्तालाप करनेसे मनुष्य अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। महापुरुषोंका नित्य सङ्ग करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है तथा मनुष्य अनन्त सुख भोगकर मेरे स्वरूपमें लीन होता है।* जो मनुष्य पुण्य-तीर्थोंमें स्नान करके शङ्करजी तथा पुण्यात्मा पुरुषोंके आश्रमका दर्शन करता है, वह भी मेरे शरीरमें लीन हो जाता है। एकादशी तिथिको—जो मेरा ही दिन (हरिवासर) है—उपवास करके जो लोगोंके सामने पुण्यमयी कथा कहता है, वह भी मेरे स्वरूपमें लीन हो जाता है। मेरे चरित्रका श्रवण करते हुए जो रात्रिमें जागता है, उसका भी मेरे शरीरमें लय होता है। विप्रवर! जो प्रतिदिन ऊँचे स्वरसे गीत गाते और बाजा बजाते हुए मेरे नामोंका स्मरण करता है, उसका भी मेरी देहमें लय होता है। जिसका मन तपस्वी, राजा और गुरुजनोंसे कभी द्रोह नहीं करता, वह भी मेरे स्वरूपमें लीन होता है। तुम मेरे भक्त और तीर्थस्वरूप हो; किन्तु तुमने बगलेकी मृत्युके लिये जो शाप दिया था, उसके दोषसे छुटकारा दिलानेके लिये मैंने ही वहाँ उपस्थित होकर कहा कि 'तुम पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ और तीर्थस्वरूप महात्मा मूक चाण्डालके पास जाओ।' तात! उस महात्माका दर्शन करके तुमने देखा ही था कि वह किस प्रकार अपने माता-पिताका पूजन करता था। उन सभी महात्माओंके दर्शनसे, उनके साथ वार्तालाप करनेसे और मेरा सम्पर्क होनेसे आज तुम मेरे मन्दिरमें आये हो। करोड़ों जन्मोंके बाद जिसके पापोंका क्षय होता है, वह धर्मज्ञ पुरुष मेरा दर्शन करता है, जिससे उसे प्रसन्नता प्राप्त होती है। वत्स! मेरे ही अनुग्रहसे तुमको मेरा दर्शन हुआ है। इसलिये तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार मुझसे वरदान माँग लो।

**ब्राह्मण बोला**—नाथ! मेरा मन सर्वथा आपके ही ध्यानमें स्थित रहे, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी माधव! आपके सिवा कोई भी दूसरी वस्तु मुझे कभी प्रिय न लगे।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—निष्पाप ब्राह्मण! तुम्हारी बुद्धिमें सदा ऐसा उत्तम विचार जाग्रत् रहता है; इसलिये तुम मेरे धाममें आकर मेरे ही समान दिव्य भोगोंका उपभोग करोगे। किन्तु तुम्हारे माता-पिता तुमसे आदर नहीं पा रहे हैं; अतः पहले माता-पिताकी पूजा करो, इसके बाद मेरे स्वरूपको प्राप्त हो सकोगे! उनके दुःखपूर्ण उच्छ्वास और क्रोधसे तुम्हारी तपस्या प्रतिदिन नष्ट हो रही है। जिस पुत्रके ऊपर सदा ही माता-पिताका कोप रहता है, उसको नरकमें पड़नेसे मैं, ब्रह्मा तथा महादेवजी भी नहीं रोक सकते†। इसलिये तुम माता-पिताके पास जाओ और यत्नपूर्वक उनकी पूजा करो। फिर उन्हींकी कृपासे तुम मेरे पदको प्राप्त होगे।

---

* दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्कीर्तनाद्भाषणात्तथा। सकृत्पुण्यवतामेव स्वर्गं चाक्षयमश्नुते॥
नित्यमेव तु संसर्गात् सर्वपापक्षयो भवेत्। भुक्त्वा सुखमनन्तं च मद्देहे प्रविलीयते॥
(४७। १६२-६३)

† मन्युर्निपतिते यस्मिन् पुत्रे पित्रोश्च नित्यशः। तन्निरयं न बाधेऽहं न धाता न च शङ्करः॥
(४७। १७८)

**व्यासजी कहते हैं**—जगद्गुरु भगवान्‌के ऐसा कहनेपर द्विजश्रेष्ठ नरोत्तमने फिर इस प्रकार कहा—'नाथ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अपने स्वरूपका दर्शन कराइये।' तब सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कर्ता एवं ब्राह्मण-हितैषी भगवान्‌ने नरोत्तमके प्रेमसे प्रसन्न होकर उस पुण्यकर्मा ब्राह्मणको शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये अपने पुरुषोत्तम रूपका दर्शन कराया। उनके तेजसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा था। ब्राह्मणने

दण्डकी भाँति धरतीपर गिरकर भगवान्‌को प्रणाम किया और कहा—'जगदीश्वर! आज मेरा जन्म सफल हुआ; आज मेरे नेत्र कल्याणमय हो गये। इस समय मेरे दोनों हाथ प्रशस्त हो गये। आज मैं भी धन्य हो गया। मेरे पूर्वज सनातन ब्रह्मलोकको जा रहे हैं। जनार्दन! आज आपकी कृपासे मेरे बन्धु-बान्धव आनन्दित हो रहे हैं! इस समय मेरे सभी मनोरथ सिद्ध हो गये। किन्तु नाथ! मूक चाण्डाल आदि ज्ञानी महात्माओंकी बात सोचकर मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है। भला, वे लोग देशान्तरमें होनेवाले मेरे वृत्तान्तको कैसे जानते हैं? मूक चाण्डालके घरमें आप अत्यन्त सुन्दर ब्राह्मणका रूप धारण किये विराजमान थे; इसी प्रकार पतिव्रताके घरमें, तुलाधारके यहाँ, मित्राद्रोहकके भवनमें तथा इन वैष्णव महात्माके मन्दिरमें भी आपका दर्शन हुआ है। इन सब बातोंका यथार्थ रहस्य क्या है? मुझपर अनुग्रह करके बताइये।'

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—विप्रवर! मूक चाण्डाल सदा अपने माता-पितामें भक्ति रखता है। शुभा देवी पतिव्रता है। तुलाधार सत्यवादी है और सब लोगोंके प्रति समान भाव रखता है। अद्रोहकने लोभ और कामपर विजय पायी है तथा वैष्णव मेरा अनन्य भक्त है। इन्हीं सद्गुणोंके कारण प्रसन्न होकर मैं इन सबके घरमें सानन्द निवास करता हूँ। मेरे साथ सरस्वती और लक्ष्मी भी इन लोगोंके यहाँ मौजूद रहती हैं। मूक चाण्डाल त्रिभुवनमें सबका कल्याण करनेवाला है। चाण्डाल होनेपर भी वह सदाचारमें स्थित है; इसलिये देवता उसे ब्राह्मण मानते हैं। पुण्य-कर्मद्वारा मूक चाण्डालकी समानता करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है। वह सदा माता-पिताकी भक्तिमें संलग्न रहता है। उसने [अपनी इस भक्तिके बलसे] तीनों लोकोंको जीत लिया है। उसकी माता-पिताके प्रति भक्ति देखकर मैं बहुत सन्तुष्ट रहता हूँ और इसीलिये उसके घरके भीतर आकाशमें सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्राह्मणरूपसे निवास करता हूँ। इसी प्रकार मैं उस पतिव्रताके, तुलाधारके, अद्रोहकके और इस वैष्णवके घरमें भी सदा निवास करता हूँ। धर्मज्ञ! एक मुहूर्तके लिये भी मैं इन लोगोंका घर नहीं छोड़ता। जो पुण्यात्मा हैं, वे ही मेरा प्रतिदिन दर्शन पाते हैं; दूसरे पापी मनुष्य नहीं। तुमने अपने पुण्यके प्रभावसे और मेरे अनुग्रहके कारण मेरा दर्शन किया है; अब मैं क्रमशः उन महात्माओंके सदाचारका वर्णन करूँगा, तुम ध्यान देकर सुनो। ऐसे वर्णनोंको सुनकर मनुष्य जन्म और मृत्युके बन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। देवताओंमें भी, पिता और मातासे बढ़कर तीर्थ नहीं है। जिसने माता-पिताकी आराधना की है, वही पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। वह मेरे हृदयमें रहता है और मैं उसके हृदयमें। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। इहलोक और परलोकमें भी वह मेरे ही समान पूज्य है। वह

अपने समस्त बन्धु-बान्धवोंके साथ मेरे रमणीय धाममें पहुँचकर मुझमें ही लीन हो जाता है। माता-पिताकी आराधनाके बलसे ही वह नरश्रेष्ठ मूक चाण्डाल तीनों लोकोंकी बातें जानता है। फिर इस विषयमें तुम्हें विस्मय क्यों हो रहा है ?

**ब्राह्मणने पूछा**—जगदीश्वर ! मोह और अज्ञानवश पहले माता-पिताकी आराधना न करके फिर भले-बुरेका ज्ञान होनेपर यदि मनुष्य पुनः माता-पिताकी सेवा करना चाहे तो उसके लिये क्या कर्तव्य है ?

**श्रीभगवान् बोले**—विप्रवर ! एक वर्ष, एक मास, एक पक्ष, एक सप्ताह अथवा एक दिन भी जिसने माता-पिताकी भक्ति की है, वह मेरे धामको प्राप्त होता है।* तथा जो उनके मनको कष्ट पहुँचाता है, वह अवश्य नरकमें पड़ता है। जिसने पहले अपने माता-पिताकी पूजा की हो या न की हो, यदि उनकी मृत्युके पश्चात् वह साँड़ छोड़ता है, तो उसे पितृभक्तिका फल मिल जाता है। जो बुद्धिमान् पुत्र अपना सर्वस्व लगाकर माता-पिताका श्राद्ध करता है, वह जातिस्मर (पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेवाला) होता है और उसे पितृ-भक्तिका पूरा फल मिल जाता है। श्राद्धसे बढ़कर महान् यज्ञ तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है। इसमें जो कुछ दान दिया जाता है, वह सब अक्षय होता है। दूसरोंको जो दान दिया जाता है; उसका फल दस हजारगुना होता है। अपनी जातिवालोंको देनेसे लाख-गुना, पिण्डदानमें लगाया हुआ धन करोड़गुना और ब्राह्मणको देनेपर वह अनन्त गुना फल देनेवाला बताया गया हैं। जो गङ्गाजीके जलमें और गया, प्रयाग, पुष्कर, काशी, सिद्धकुण्ड तथा गङ्गा-सागर-सङ्गम तीर्थमें पितरोंके लिये अन्नदान करता है, उसकी मुक्ति निश्चित है तथा उसके पितर अक्षय स्वर्ग प्राप्त करते हैं। उनका जन्म सफल हो जाता है। जो विशेषतः गङ्गाजीमें तिलमिश्रित जलके द्वारा तर्पण करता है, उसे भी मोक्षका मार्ग मिल जाता है। फिर जो पिण्डदान करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। अमावास्या और युगादि तिथियोंको तथा चन्द्रमा और सूर्य-ग्रहणके दिन जो पार्वण श्राद्ध करता है, वह अक्षय लोकका भागी होता है। उसके पितर उसे प्रिय आशीर्वाद और अनन्त भोग प्रदान करके दस हजार वर्षोंतक तृप्त रहते हैं। इसलिये प्रत्येक पर्वपर पुत्रोंको प्रसन्नतापूर्वक पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। माता-पिताके इस श्राद्ध-यज्ञका अनुष्ठान करके मनुष्य सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।

जो श्राद्ध प्रतिदिन किया जाता है, उसे नित्य श्राद्ध माना गया है। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक नित्य श्राद्ध करता है, वह अक्षय लोकका उपभोग करता है। इसी प्रकार कृष्णपक्षमें विधिपूर्वक काम्य श्राद्धका अनुष्ठान करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। आषाढ़की पूर्णिमाके बाद जो पाँचवाँ पक्ष आता है, [जिसे महालय या पितृपक्ष कहते हैं] उसमें पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये। उस समय सूर्य कन्याराशिपर गये हैं या नहीं—इसका विचार नहीं करना चाहिये। जब सूर्य कन्याराशिपर स्थित होते हैं, उस समयसे लेकर सोलह दिन उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न यज्ञोंके समान महत्त्व रखते हैं। उन दिनोंमें इस परम पवित्र काम्य श्राद्धका अनुष्ठान करना उचित है। इससे श्राद्धकर्ताका मङ्गल होता है। यदि उस समय श्राद्ध न हो सके तो जब सूर्य तुलाराशिपर स्थित हों, उसी समय कृष्णपक्ष आदिमें उक्त श्राद्ध करना उचित है।

चन्द्रग्रहणके समय सभी दान भूमिदानके समान होते हैं, सभी ब्राह्मण व्यासके समान माने जाते हैं और समस्त जल गङ्गाजलके तुल्य हो जाता है। चन्द्रग्रहणमें दिया हुआ दान और समयकी अपेक्षा लाखगुना तथा सूर्य-ग्रहण दस लाखगुना अधिक फल देनेवाला बताया गया है। और यदि गङ्गाजीका जल प्राप्त हो जाय, तब तो चन्द्रग्रहणका दान करोड़गुना और सूर्यग्रहणमें दिया हुआ दान दस करोड़गुना अधिक फल देनेवाला होता है। विधिपूर्वक एक लाख गोदान करनेसे जो फल प्राप्त

*दिनैकं मासपक्षं वा पक्षार्द्धं वापि वत्सरम्। पित्रोर्भक्तिः कृता येन स च गच्छेन्ममालयम्॥ (४७। २०८)

होता है, वह चन्द्रग्रहणके समय गङ्गाजीमें स्नान करनेसे मिल जाता है। जो चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें गङ्गाजीके जलमें डुबकी लगाता है, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। यदि रविवारको सूर्यग्रहण और सोमवारको चन्द्रग्रहण हो तो वह चूड़ामणि नामक योग कहलाता है; उसमें स्नान और दानका अनन्त फल माना गया है। उस समय पुण्य तीर्थमें पहले उपवास करके जो पुरुष पिण्डदान, तर्पण तथा धन-दान करता है, वह सत्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

**ब्राह्मणने पूछा**—देव! आपने पिताके लिये किये जानेवाले श्राद्ध नामक महायज्ञका वर्णन किया। अब यह बताइये कि पुत्रको पिताके जीते-जी क्या करना चाहिये; कौन-सा कर्म करके बुद्धिमान् पुत्रको जन्म-जन्मान्तरोंमें परम कल्याणकी प्राप्ति हो सकती है। ये सब बातें यत्नपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये।

**श्रीभगवान् बोले**—विप्रवर! पिताको देवताके समान समझकर उनकी पूजा करनी चाहिये और पुत्रकी भाँति उनपर स्नेह रखना चाहिये। कभी मनसे भी उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। जो पुत्र रोगी पिताकी भलीभाँति परिचर्या करता है, उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है और वह सदा देवताओंद्वारा पूजित होता है। पिता जब मरणासन्न होकर मृत्युके लक्षण देख रहे हों, उस समय भी उनका पूजन करके पुत्र देवताओंके समान हो जाता है। [पिताकी सद्गतिके निमित्त] विधिपूर्वक उपवास करनेसे जो लाभ होता है, अब उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ करनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य [पिताके निमित्त] उपवास करनेसे प्राप्त होता है। वही उपवास यदि तीर्थमें किया जाय तो उन दोनों यज्ञोंसे करोड़गुना अधिक फल होता है। जिस श्रेष्ठ पुरुषके प्राण गङ्गाजीके जलमें छूटते हैं, वह पुनः माताके दूधका पान नहीं करता, वरं मुक्त हो जाता है। जो अपने इच्छानुसार काशीमें रहकर प्राण-त्याग करता है, वह मनोवाञ्छित फल भोगकर मेरे स्वरूपमें लीन हो जाता है।* योगयुक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी मुनियोंको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, वही गति ब्रह्मपुत्र नदीकी सात धाराओंमें प्राणत्याग करनेवालेको मिलती है। विशेषतः [अन्तकालमें] जो सोन नदीके उत्तर तटका आश्रय लेकर विधिपूर्वक प्राण-त्याग करता है, वह मेरी समानताको प्राप्त होता है। जिस मनुष्यकी मृत्यु घरके भीतर होती है, उस घरके छप्परमें जितनी गाँठें बँधी रहती हैं, उतने ही बन्धन उसके शरीरमें भी बँध जाते हैं। एक-एक वर्षके बाद उसका एक-एक बन्धन खुलता है। पुत्र और भाई-बन्धु देखते रह जाते हैं; किसीके द्वारा उसे उस बन्धनसे छुटकारा नहीं मिलता। पर्वत, जंगल, दुर्गम भूमि या जलरहित स्थानमें प्राणत्याग करनेवाला मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त होता है। उसे कीड़े आदिकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जिस मरे हुए व्यक्तिके शवका दाह-संस्कार मृत्युके दूसरे दिन होता है, वह साठ हजार वर्षोंतक कुम्भीपाक नरकमें पड़ा रहता है। जो मनुष्य अस्पृश्यका स्पर्श करके या पतितावस्थामें प्राण-त्याग करता है, वह चिरकालतक नरकमें निवास करके म्लेच्छयोनिमें जन्म लेता है। पुण्यसे अथवा पुण्य-कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे मर्त्यलोकनिवासी सब मनुष्योंकी मृत्युके समय जैसी बुद्धि होती है, वैसी ही गति उन्हें प्राप्त होती है।

पिताके मरनेपर जो बलवान् पुत्र उनके शरीरको कंधेपर ढोता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। पुत्रको चाहिये कि वह पिताके शवको चितापर रखकर विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण करते हुए पहले उसके मुखमें आग दे, उसके बाद सम्पूर्ण शरीरका दाह करे। [उस समय इस प्रकार कहे—] 'जो लोभ-मोहसे युक्त तथा पाप-पुण्यसे आच्छादित थे, उन पिताजीके इस शवका, इसके सम्पूर्ण अङ्गोंका मैं दाह करता हूँ; वे दिव्य लोकोंमें जायँ।† इस प्रकार दाह

---

*वाराणस्यां त्यजेद्यस्तु प्राणांश्चैव यदृच्छया। अभीष्टं च फलं भुक्त्वा मद्देहे प्रविलीयते॥ (४७। २५२)

† लोभमोहसमायुक्तं पापपुण्यसमावृतम्। दहेयं सर्वगात्राणि दिव्याँल्लोकान् स गच्छतु॥ (४७। २६६)

करके पुत्र अस्थि-सञ्चयके लिये कुछ दिन प्रतीक्षामें व्यतीत करे। फिर यथासमय अस्थि-सञ्चय करके दशाह (दसवाँ दिन) आनेपर स्नान कर गीले वस्त्रका परित्याग कर दे। फिर विद्वान् पुरुष ग्यारहवें दिन एकादशाह-श्राद्ध करे और प्रेतके शरीरकी पुष्टिके लिये एक ब्राह्मणको भोजन कराये। उस समय वस्त्र, पीढ़ा और चरणपादुका आदि वस्तुओंका विधिपूर्वक दान करे। दशाहके चौथे दिन किया जानेवाला श्राद्ध (चतुर्थाह), तीन पक्षके बाद किया जानेवाला (त्रैपाक्षिक अथवा सार्धमासिक), छः मासके भीतर होनेवाला (ऊनषाण्मासिक) तथा वर्षके भीतर किया जानेवाला (ऊनाब्दिक) श्राद्ध और इनके अतिरिक्त बारह महीनोंके बारह श्राद्ध—कुल सोलह श्राद्ध माने गये हैं। जिसके लिये ये सोलह श्राद्ध यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक नहीं किये जाते, उसका पिशाचत्व स्थिर हो जाता है। अन्यान्य सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी प्रेतयोनिसे उसका उद्धार नहीं होता। एक वर्ष व्यतीत होनेपर विद्वान् पुरुष पार्वण श्राद्धकी विधिसे सपिण्डीकरण नामक श्राद्ध करे।

**ब्राह्मणने पूछा**—केशव! तपस्वी, वनवासी और गृहस्थ ब्राह्मण यदि धनसे हीन हो तो उसका पितृ-कार्य कैसे हो सकता है?

**श्रीभगवान् बोले**—जो तृण और काष्ठका उपार्जन करके अथवा कौड़ी-कौड़ी माँगकर पितृ-कार्य करता है, उसके कर्मका लाखगुना अधिक फल होता है। कुछ भी न हो तो पिताकी तिथि आनेपर जो मनुष्य केवल गौओंको घास खिला देता है, उसे पिण्डदानसे भी अधिक फल प्राप्त होता है। पूर्वकालकी बात है, विराट-देशमें एक अत्यन्त दीन मनुष्य रहता था। एक दिन पिताकी तिथि आनेपर वह बहुत रोया। रोनेका कारण यह था कि उसके पास [श्राद्धोपयोगी] सभी वस्तुओंका अभाव था। बहुत देरतक रोनेके पश्चात् उसने किसी विद्वान् ब्राह्मणसे पूछा—'ब्रह्मन्! आज मेरे पिताजीकी तिथि है, किन्तु मेरे पास धनके नामपर कौड़ी भी नहीं है; ऐसी दशामें क्या करनेसे मेरा हित होगा? आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मैं धर्ममें स्थित रह सकूँ।'

**विद्वान् ब्राह्मणने कहा**—तात! इस समय 'कुतप' नामक मुहूर्त बीत रहा है, तुम शीघ्र ही वनमें जाओ और पितरोंके उद्देश्यसे घास लाकर गौको खिला दो।

तदनन्तर, ब्राह्मणके उपदेशसे वह वनमें गया और घासका बोझा लेकर बड़े हर्षके साथ पिताकी तृप्तिके लिये उसे गौको खिला दिया। इस पुण्यके प्रभावसे वह देवलोकको चला गया। पितृयज्ञसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है; इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके अपनी शक्तिके अनुसार मात्सर्यभावका त्याग करके श्राद्ध करना चाहिये। जो मनुष्य लोगोंके सामने इस धर्मसन्तान (धर्मका विस्तार करनेवाले) अध्यायका पाठ करता है, उसे प्रत्येक लोकमें गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। जिसने प्रत्येक जन्ममें महापातकोंका संग्रह किया हो, उसका वह सारा संग्रह इस अध्यायका एक बार पाठ या श्रवण करनेपर नष्ट हो जाता हैं।

★

## पतिव्रता ब्राह्मणीका उपाख्यान, कुलटा स्त्रियोंके सम्बन्धमें उमा-नारद-संवाद, पतिव्रताकी महिमा और कन्यादानका फल

**नरोत्तमने पूछा**—नाथ! पतिव्रता स्त्री मेरे बीते हुए वृत्तान्तको कैसे जानती है? उसका प्रभाव कैसा है? यह सब बतानेकी कृपा करें।

**श्रीभगवान् बोले**—वत्स! मैं यह बात तुम्हें पहले बता चुका हूँ। किन्तु फिर यदि सुननेका कौतूहल हो रहा है तो सुनो; तुम्हारे मनमें जो कुछ प्रश्न है, सबका उत्तर दे रहा हूँ। जो स्त्री पतिव्रता होती है, पतिको प्राणोंके समान समझती है और सदा पतिके हित-साधनमें संलग्न रहती है, वह देवताओं और ब्रह्मवादी मुनियोंकी भी पूज्य होती है। जो नारी एक ही पुरुषकी सेवा स्वीकार करती है—दूसरेकी ओर दृष्टि भी नहीं डालती, वह संसारमें परम पूजनीय मानी जाती है।

तात ! प्राचीन कालकी बात है, मध्यदेशमें एक अत्यन्त शोभायमान नगरी थी। उसमें एक पतिव्रता ब्राह्मणी रहती थी, उसका नाम था शैब्या। उसका पति पूर्वजन्मके पापसे कोढ़ी हो गया था। उसके शरीरमें अनेकों घाव हो गये थे, जो बराबर बहते रहते थे। शैब्या अपने ऐसे पतिकी सेवामें सदा संलग्न रहती थी। पतिके मनमें जो-जो इच्छा होती, उसे वह अपनी शक्तिके अनुसार अवश्य पूर्ण करती थी। प्रतिदिन देवताकी भाँति स्वामीकी पूजा करती और दोषबुद्धि त्यागकर उसके प्रति विशेष स्नेह रखती थी। एक दिन उसके पतिने सड़कसे जाती हुई एक परम सुन्दरी वेश्याको देखा। उसपर दृष्टि पड़ते ही वह अत्यन्त मोहके वशीभूत हो गया। उसकी चेतनापर कामदेवने पूरा अधिकार कर लिया। वह दीर्घ कालतक लम्बी साँस खींचता रहा और अन्तमें बहुत उदास हो गया। उसका उच्छ्वास सुनकर पतिव्रता घरसे बाहर आयी और अपने पतिसे पूछने लगी—'नाथ ! आप उदास क्यों हो गये ? आपने लम्बी साँस कैसे खींची ? प्रभो ! आपको जो प्रिय हो वह कार्य मुझे बताइये। वह करनेयोग्य हो या न हो, मैं आपके प्रियकार्यको अवश्य पूर्ण करूँगी। एकमात्र आप ही मेरे गुरु हैं, प्रियतम हैं।'

पत्नीके इस प्रकार पूछनेपर उसके पतिने कहा—'प्रिये ! उस कार्यको न तुम्हीं पूर्ण कर सकती हो और न मैं ही; अतः व्यर्थ बात करनी उचित नहीं है।'

**पतिव्रता बोली**—नाथ ! [मुझे विश्वास है] मैं आपका मनोरथ जानकर उस कार्यको सिद्ध कर सकूँगी, आप मुझे आज्ञा दीजिये। जिस किसी उपायसे हो सके मुझे आपका कार्य सिद्ध करना है। यदि आपके दुष्कर कार्यको मैं यत्न करके पूर्ण कर सकूँ तो इस लोक और परलोकमें भी मेरा परम कल्याण होगा।

**कोढ़ीने कहा**—साध्वि ! अभी-अभी इस मार्गसे एक परम सुन्दरी वेश्या जा रही थी। उसका शरीर सब ओरसे मनोरम था। उसे देखकर मेरा हृदय कामाग्निसे दग्ध हो रहा है। यदि तुम्हारी कृपासे मैं उस नवयौवनाको प्राप्त कर सकूँ तो मेरा जन्म सफल हो जायगा। देवि ! तुम उसे मिलाकर मेरा हितसाधन करो।

पतिकी कही हुई बात सुनकर पतिव्रता बोली—'प्रभो ! इस समय धैर्य रखिये। मैं यथाशक्ति आपका कार्य सिद्ध करूँगी।'

यह कहकर पतिव्रताने मन-ही-मन कुछ विचार किया और रात्रिके अन्तिम भाग—उषःकालमें उठकर वह गोबर और झाड़ू ले तुरंत ही चल दी। जाते समय उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी। वेश्याके घर पहुँचकर उसने उसके आँगन और गली-कूचेमें झाड़ू लगायी तथा गोबरसे लीप-पोतकर लोगोंकी दृष्टि पड़नेके भयसे वह शीघ्रतापूर्वक अपने घर लौट आयी। इस प्रकार लगातार तीन दिनोंतक पतिव्रताने वेश्याके घरमें झाड़ू देने और लीपनेका काम किया। उधर वह वेश्या अपने दास-दासियोंसे पूछने लगी—आज आँगनकी इतनी बढ़िया सफाई किसने की है ? सेवकोंने परस्पर विचार करके वेश्यासे कहा—'भद्रे ! घरकी सफाईका यह काम हमलोगोंने तो नहीं किया है।' यह सुनकर वेश्याको बड़ा विस्मय हुआ। उसने बहुत देरतक इसके विषयमें विचार किया और रात्रि बीतनेपर ज्यों ही वह उठी तो उसकी दृष्टि उस पतिव्रता ब्राह्मणीपर पड़ी। वह पुनः टहल बजानेके लिये आयी थी। उस परम साध्वी पतिव्रता ब्राह्मणीको देखकर 'हाय ! हाय ! आप यह क्या करती हैं। क्षमा कीजिये, रहने दीजिये।' यह कहती हुई वेश्याने उसके पैर पकड़ लिये और पुनः कहा—'पतिव्रते ! आप मेरी आयु, शरीर, सम्पत्ति, यश तथा कीर्ति—इन सबका विनाश करनेके लिये ऐसी चेष्टा कर रही हैं। साध्वि ! आप जो-जो वस्तु माँगें, उसे निश्चय दूँगी—यह बात मैं दृढ़ निश्चयके साथ कह रही हूँ। सुवर्ण, रत्न, मणि, वस्त्र तथा और भी जिस किसी वस्तुकी आपके मनमें अभिलाषा हो, उसे माँगिये।'

तब पतिव्रताने उस वेश्यासे कहा—'मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है, तुम्हींसे कुछ काम है; यदि करो तो उसे बताऊँ। उस कार्यकी सिद्धि होनेपर ही मेरे हृदयमें सन्तोष होगा और तभी मैं यह समझूँगी कि तुमने इस समय मेरा सारा मनोरथ पूर्ण कर दिया।'

**वेश्या बोली**—पतिव्रते ! आप जल्दी बताइये। मैं सच-सच कहती हूँ आपका अभीष्ट कार्य अवश्य करूँगी। माताजी ! आप तुरंत ही अपनी आवश्यकता बतायें और मेरी रक्षा करें।

पतिव्रताने लजाते-लजाते वह कार्य, जो उसके पतिको श्रेष्ठ एवं प्रिय जान पड़ता था, कह सुनाया। उसे सुनकर वेश्या एक क्षणतक अपने कर्तव्य और उसके पतिकी पीड़ापर कुछ विचार करती रही। दुर्गन्धयुक्त कोढ़ी मनुष्यके साथ संसर्ग करनेकी बात सोचकर उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वह पतिव्रतासे इस प्रकार बोली—'देवि ! यदि आपके पति मेरे घरपर आयें तो मैं एक दिन उनकी इच्छा पूर्ण करूँगी।'

**पतिव्रताने कहा**—सुन्दरी ! मैं आज ही रातमें अपने पतिको लेकर तुम्हारे घरमें आऊँगी और जब वे अपनी अभीष्ट वस्तुका उपभोग करके सन्तुष्ट हो जायँगे, तब पुनः उनको अपने घर ले जाऊँगी।

**वेश्या बोली**—महाभागे ! अब शीघ्र ही अपने घरको पधारो। तुम्हारे पति आज आधी रातके समय मेरे महलमें आयें।

यह सुनकर वह पतिव्रता स्त्री अपने घर चली आयी। वहाँ पहुँचकर उसने पतिसे निवेदन किया—'प्रभो ! आपका कार्य सफल हो गया। आज ही रातमें आपको उसके घर जाना है।'

**कोढ़ी ब्राह्मण बोला**—देवि ! मैं कैसे उसके घर जाऊँगा, मुझसे तो चला नहीं जाता। फिर किस प्रकार वह कार्य सिद्ध होगा ?

**पतिव्रता बोली**—प्राणनाथ ! मैं आपको अपनी पीठपर बैठाकर उसके घर पहुँचाऊँगी और आपका मनोरथ सिद्ध हो जानेपर फिर उसी मार्गसे लौटा ले आऊँगी।

**ब्राह्मणने कहा**—कल्याणी ! तुम्हारे करनेसे ही मेरा सब कार्य सिद्ध होगा। इस समय तुमने जो काम किया है, वह दूसरी स्त्रियोंके लिये दुष्कर है।

**श्रीभगवान् कहते हैं**—उस नगरमें किसी धनीके घरसे चोरोंने बहुत-सा धन चुरा लिया। यह बात जब राजाके कानोंमें पड़ी, तब उन्होंने रातमें घूमनेवाले समस्त गुप्तचरोंको बुलाया और कुपित होकर कहा—'यदि तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा है तो आज चोरको पकड़कर मेरे हवाले करो।' राजाकी यह आज्ञा पाकर सभी गुप्तचर व्याकुल हो उठे और चोरको पकड़नेकी इच्छासे चल दिये। उस नगरके पास ही एक घना जंगल था, जहाँ एक वृक्षके नीचे महातेजस्वी मुनिवर माण्डव्य समाधि लगाये बैठे थे। वे योगियोंमें प्रधान महर्षि अग्निके समान देदीप्यमान हो रहे थे। ब्रह्माजीके समान तेजस्वी उन महामुनिको देखकर दुष्ट गुप्तचरोंने आपसमें कहा—'यही चोर है। यह धूर्त अद्भुत रूप बनाये इस जंगलमें निवास करता है।' यों कहकर उन पापियोंने मुनिश्रेष्ठ माण्डव्यको बाँध लिया। किन्तु उन कठोर स्वभाववाले मनुष्योंसे न तो उन्होंने कुछ कहा और न उनकी ओर दृष्टिपात ही किया। जब गुप्तचर उन्हें बाँधकर राजाके पास ले गये तो राजाने कहा—'आज मुझे चोर मिला है। तुमलोग इसे नगरके निकटवर्ती प्रवेशद्वारके मार्गपर ले जाओ और चोरके लिये जो नियत दण्ड है, वह इसे दो।' उन्होंने माण्डव्य मुनिको वहाँ ले जाकर मार्गमें

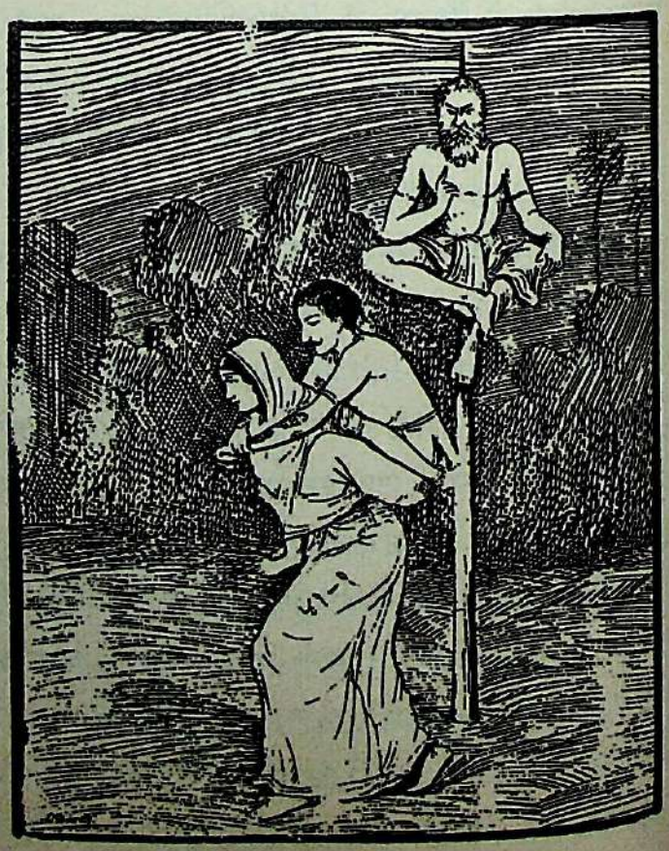

गड़े हुए शूलपर रख दिया। वह शूल मुनिके गुदाद्वारसे प्रविष्ट होकर मस्तकके पार हो गया। उनका सारा शरीर शूलसे बिंध गया, इसी बीचमें आधी रातके घोर अन्धकारमें, जब कि आकाशमें घटाएँ घिरी हुई थीं, वह पतिव्रता ब्राह्मणी अपने पतिको पीठपर बिठाकर वेश्याके घर जा रही थी। वह मुनिके निकटसे होकर निकली, अतः उस कोढ़ीका शरीर माण्डव्य मुनिके शरीरसे छू गया। कोढ़ीके संसर्गसे उनकी समाधि भङ्ग हो गयी। वे कुपित होकर बोले—'जिसने इस समय मुझे गाढ़ वेदनाका अनुभव करानेवाली कष्टमय अवस्थामें पहुँचा दिया, वह सूर्योदय होते-होते भस्म हो जाय।'

माण्डव्यके इतना कहते ही वह कोढ़ी पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब पतिव्रताने कहा—'आजसे तीन दिनोंतक सूर्यका उदय ही न हो।' यों कहकर वह अपने पतिको घर ले गयी और एक सुन्दर शय्यापर सुला स्वयं उसे थामकर बैठी रही। उधर मुनिश्रेष्ठ माण्डव्य उस कोढ़ीको शाप दे अपने अभीष्ट स्थानको चले गये। संसारमें तीन दिनोंके समयतक सूर्यका उदय होना रुक गया। चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकी व्यथित हो उठी। यह देख समस्त देवता इन्द्रको आगे करके ब्रह्माजीके पास गये और सूर्योदय न होनेका समाचार निवेदन करते हुए बोले—'भगवन्! सूर्यके उदय न होनेका क्या कारण है, यह हमारी समझमें नहीं आता। इस समय आप जो उचित हो, करें।' उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने पतिव्रता ब्राह्मणी और माण्डव्य मुनिका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तदनन्तर देवता विमानोंपर आरूढ़ हो प्रजापतिको आगे करके शीघ्र ही पृथ्वीपर उस कोढ़ी ब्राह्मणके घरके पास गये। उनके विमानोंकी कान्ति तथा मुनियोंके तेजसे पतिव्रताके घरके भीतर सैकड़ों सूर्योंका-सा प्रकाश छा गया; उस समय हंसके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा आये हुए देवताओंको पतिव्रताने देखा। वह [अपने पतिके समीप] लेटी हुई थी। ब्रह्माजीने उसे सम्बोधित करके कहा—'माता! सम्पूर्ण देवताओं, ब्राह्मणों और गौ आदि प्राणियोंकी जिससे मृत्यु होनेकी सम्भावना है—ऐसा कार्य तुम्हें क्योंकर पसंद आया? सूर्योदयके विरुद्ध जो तुम्हारा क्रोध है, उसे त्याग दो।'

**पतिव्रता बोली**—भगवन्! एकमात्र पति ही

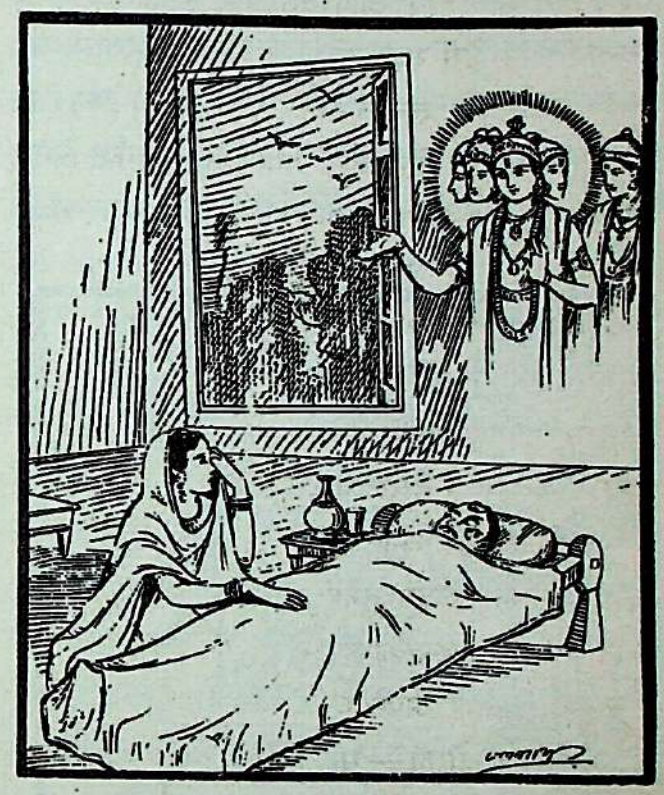

मेरे गुरु हैं। ये मेरे लिये सम्पूर्ण लोकोंसे बढ़कर हैं। सूर्योदय होते ही मुनिके शापसे उनकी मृत्यु हो जायगी। इसी हेतुसे मैंने सूर्यको शाप दिया है। क्रोध, मोह, लोभ, मात्सर्य अथवा कामके वशमें होकर मैंने ऐसा नहीं किया है।

**ब्रह्माजीने कहा**—माता! जब एककी मृत्युसे तीनों लोकोंका हित हो रहा है, ऐसी दशामें तुम्हें बहुत अधिक पुण्य होगा।

**पतिव्रता बोली**—पतिका त्याग करके मुझे आपका परम कल्याणमय सत्यलोक भी अच्छा नहीं लगता।

**ब्रह्माजीने कहा**—देवि! सूर्योदय होनेपर जब सारी त्रिलोकी स्वस्थ हो जायगी, तब तुम्हारे पतिके भस्म हो जानेपर भी मैं तुम्हारा कल्याण-साधन करूँगा। हमलोगोंके आशीर्वादसे यह कोढ़ी ब्राह्मण कामदेवके समान सुन्दर हो जायगा।

ब्रह्माजीके यों कहनेपर उस सतीने क्षणभर कुछ विचार किया; उसके बाद 'हाँ' कहकर उसने स्वीकृति

दे दी। फिर तो तत्काल सूर्योदय हुआ और मुनिके शापसे पीड़ित ब्राह्मण राखका ढेर हो गया। फिर उस राखसे कामदेवके समान सुन्दर रूप धारण किये वह ब्राह्मण प्रकट हुआ। यह देखकर समस्त पुरवासी बड़े विस्मयमें पड़े। देवता प्रसन्न हो गये। सब लोगोंका चित्त पूर्ण स्वस्थ हुआ। उस समय स्वर्गलोकसे सूर्यके समान तेजस्वी एक विमान आया और वह साध्वी अपने पतिके

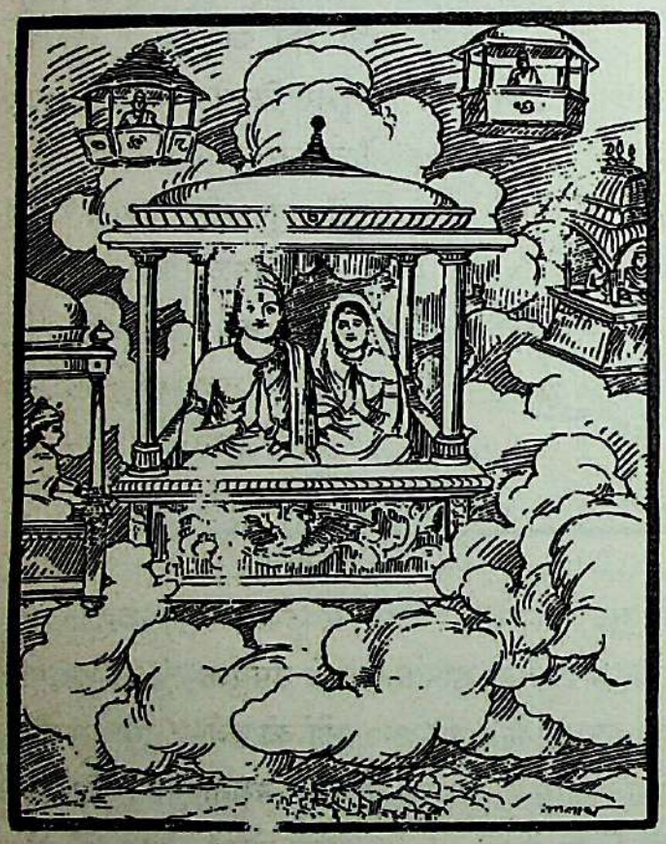

साथ उसपर बैठकर देवताओंके साथ स्वर्गको चली गयी।

शुभा भी ऐसी ही पतिव्रता है; इसलिये वह मेरे समान है। उस सतीत्वके प्रभावसे ही वह भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंकी बातें जानती है। जो मनुष्य इस परम उत्तम पुण्यमय उपाख्यानको लोकमें सुनायेगा, उसके जन्म-जन्मके किये हुए पाप नष्ट हो जायँगे।

**ब्राह्मणने पूछा**—भगवन्! माण्डव्य मुनिके शरीरमें शूलका आघात कैसे लगा? तथा पतिव्रता स्त्रीके पतिको कोढ़का रोग क्यों हुआ?

**भगवान् श्रीविष्णु बोले**—माण्डव्य मुनि जब बालक थे, तब उन्होंने अज्ञान और मोहवश एक झींगुरके गुदादेशमें तिनका डालकर छोड़ दिया था। यद्यपि उन्हें उस समय धर्मका ज्ञान नहीं था, तथापि उस दोषके कारण उन्हें एक दिन और रात वैसा कष्ट भोगना पड़ा। किन्तु माण्डव्य मुनिने समाधिस्थ होनेके कारण शूलाघातजनित वेदनाका पूरी तरह अनुभव नहीं किया। इसी प्रकार पतिव्रताके पतिने भी पूर्वजन्ममें एक कोढ़ी ब्राह्मणका वध किया था, इसीसे उसके शरीरमें दुर्गन्ध-युक्त कोढ़का रोग उत्पन्न हो गया था। किन्तु उसने ब्राह्मणको चार गौरीदान और तीन कन्यादान किये थे; इसीसे उसकी पत्नी पतिव्रता हुई। उस पत्नीके कारण ही वह मेरी समताको प्राप्त हुआ।

**ब्राह्मणने कहा**—नाथ! यदि पतिव्रताका ऐसा माहात्म्य है; तब तो जिस पुरुषकी भी स्त्री व्यभिचारिणी न हो उसे स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है। सती स्त्रीसे सबका कल्याण होना चाहिये।

**भगवान् श्रीविष्णु बोले**—ठीक है। संसारमें कुछ स्त्रियाँ ऐसी कुलटा होती हैं, जो सर्वस्व अर्पण करनेवाले पुरुषके प्रतिकूल आचरण करती हैं; उनमें जो सर्वथा अरक्षणीय हो—जिसकी दुराचारसे रक्षा करना असम्भव हो, ऐसी स्त्रीको तो मनसे भी स्वीकार नहीं करना चाहिये। जो नारी कामके वशीभूत हो जाती है, वह निर्धन, कुरूप, गुणहीन तथा नीच कुलके नौकर पुरुषको भी स्वीकार कर लेती है। मृत्युतकसे सम्बन्ध जोड़नेमें उसे हिचक नहीं होती। वह गुणवान्, कुलीन, अत्यन्त धनी, सुन्दर और रतिकार्यमें कुशल पतिका भी परित्याग करके नीच पुरुषका सेवन करती है। विप्रवर! इस विषयमें उमा-नारद-संवाद ही दृष्टान्त है; क्योंकि नारदजी स्त्रियोंकी बहुत-सी चेष्टाएँ जानते हैं। नारद मुनि स्वभावसे ही संसारकी प्रत्येक बात जाननेकी इच्छा रखते हैं। एक बार वे अपने मनमें कुछ सोच-विचारकर पर्वतोंमें उत्तम कैलासगिरिपर गये। वहाँ उन महात्मा मुनिने पार्वतीजीको प्रणाम करके पूछा—'देवि! मैं कामिनियोंकी कुचेष्टाएँ जानना चाहता हूँ। मैं इस विषयमें बिलकुल अनजान हूँ और विनीत भावसे प्रश्न कर रहा

हूँ; अतः आप मुझे यह बात बताइये।'

**पार्वती देवीने कहा**—नारद! युवती स्त्रियोंका चित्त सदा पुरुषोंमें ही लगा रहता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। नारी घीसे भरे हुए घड़ेके समान है और पुरुष दहकते हुए अँगारेके समान; इसलिये घी और अग्निको एक स्थानपर नहीं रखना चाहिये।* जैसे मतवाले हाथीको महावत अङ्कुश और मुगदरकी सहायतासे अपने वशमें करता है, उसी प्रकार स्त्रियोंका रक्षक उन्हें दण्डके बलसे ही काबूमें रख सकता है। बचपनमें पिता, जवानीमें पति और बुढ़ापेमें पुत्र नारीकी रक्षा करता है; उसे कभी स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिये।† सुन्दरी स्त्रीको यदि उसकी इच्छाके अनुसार स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो पर-पुरुषकी प्रार्थनासे अधीर होकर वह उसके आदेशके अनुसार व्यभिचारमें प्रवृत्त हो जाती है। जैसे तैयार की हुई रसोईपर दृष्टि न रखनेसे उसपर कौए और कुत्ते अधिकार जमा लेते हैं, उसी प्रकार युवती नारी स्वच्छन्द होनेपर व्यभिचारिणी हो जाती है। फिर उस कुलटाके संसर्गसे सारा कुल दूषित हो जाता है। पराये बीजसे उत्पन्न होनेवाला मनुष्य वर्णसंकर कहलाता है।‡ सदाचारिणी स्त्री पितृकुल और पतिकुल—दोनों कुलोंका सम्मान बढ़ाती हुई उन्हें कायम रखती है। साध्वी नारी अपने कुलका उद्धार करती और दुराचारिणी उसे नरकमें गिराती है। कहते हैं—संसारमें स्त्रीके ही अधीन स्वर्ग, कुल, कलङ्क, यश, अपयश, पुत्र, पुत्री और मित्र आदिकी स्थिति है। इसलिये विद्वान् पुरुष सन्तानकी इच्छासे विवाह करे। जो पापी पुरुष मोहवश किसी साध्वी स्त्रीको दूषित करके छोड़ देता है, वह उस स्त्रीकी हत्याका पाप भोगता हुआ नरकमें गिरता है। जो परायी स्त्रीके साथ बलात्कार करता अथवा उसे धनका लालच देकर फँसाता है, वह इस संसारमें स्त्री-हत्यारा कहलाता है और मरनेके पश्चात् घोर नरकमें पड़ता है। परायी स्त्रीका अपहरण करके मनुष्य चाण्डाल-कुलमें जन्म लेता है। इसी प्रकार पतिके साथ वञ्चना करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्री चिरकालतक नरक भोगकर कौएकी योनिमें जन्म लेती है और उच्छिष्ट एवं दुर्गन्धयुक्त पदार्थ खा-खाकर जीवन बिताती है। तदनन्तर, मनुष्य-योनिमें जन्म लेकर विधवा होती है। जो माता, गुरुपत्नी, ब्राह्मणी, राजाकी रानी या दूसरी किसी प्रभु-पत्नीके साथ समागम करता है, वह अक्षय नरकमें गिरता है। बहिन, भानजेकी स्त्री, बेटी, बेटेकी बहू, चाची, मामी, बुआ तथा मौसी आदि अन्यान्य स्त्रियोंके साथ समागम करनेपर भी कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। यही नहीं, उसे ब्रह्महत्याका पाप भी लगता है तथा वह अंधा, गूँगा और बहरा होकर निरन्तर नीचे गिरता जाता है; उस अधःपतनसे उसका कभी बचाव नहीं हो पाता।

**ब्राह्मणने पूछा**—भगवन्! ऐसा पाप करके मनुष्यका उससे किस प्रकार उद्धार हो सकता है?

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—उपर्युक्त स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाला पुरुष लोहेकी स्त्री-प्रतिमा बनवाकर उसे आगमें खूब तपाये; फिर उसका गाढ़ आलिङ्गन करके प्राण त्याग दे और शुद्ध होकर परलोककी यात्रा करे। जो मनुष्य गृहस्थाश्रमका परित्याग करके मुझमें मन लगाता है और प्रतिदिन मेरे 'गोविन्द' नामका स्मरण करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है। उसके द्वारा की हुई हजारों ब्रह्महत्याएँ, सौ बार किया हुआ गुरुपत्नी-समागम, लाख बार किया हुआ पैष्टी मदिराका

---

* घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान्। तस्माद् घृतं च वह्निं च ह्येकस्थाने न धारयेत्॥ (४९। २१)

† पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥ (४९। २३)

‡ अरक्षणाद्यथा पाकः श्वकाकवशगो वसेत्। तथैव युवती नारी स्वच्छन्दाद्दुष्टतां व्रजेत्॥
पुनरेव कुलं दुष्टं तस्याः संसर्गतो भवेत्। परबीजे नरो जातः स च स्याद्वर्णसंकरः॥ (४९। २५-२६)

सेवन, सुवर्णकी चोरी, पापियोंके साथ चिरकालतक संसर्ग रखना—ये तथा और भी जितने बड़े-बड़े पाप एवं पातक हैं, वे सब मेरा नाम लेनेसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं; ठीक उसी तरह जैसे अग्निके पास पहुँचनेपर रूईके ढेर जल जाते हैं। अतः मनुष्यको उचित है कि वह मेरे 'गोविन्द' नामका स्मरण करके पवित्र हो जाय [परन्तु जो नामके भरोसे पाप करता है, नाम उसकी रक्षा कभी नहीं करता।] अथवा जो प्रतिदिन मुझ गोविन्दका कीर्तन और पूजन करते हुए गृहस्थाश्रममें निवास करता है, वह पापसे तर जाता है। तात! गङ्गाके रमणीय तटपर चन्द्रग्रहणकी मङ्गलमयी वेलामें करोड़ों गोदान करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, उससे हजारगुना अधिक फल 'गोविन्द' का कीर्तन करनेसे प्राप्त होता है। कीर्तन करनेवाला मनुष्य मेरे वैकुण्ठधाममें सदा निवास करता है।* पुराणमें मेरी कथा सुननेसे मानव मेरी समानता प्राप्त करता है। जो पुराणकी कथा सुनाता है, उसे मेरा सायुज्य प्राप्त होता है; अतः प्रतिदिन पुराणका श्रवण करना चाहिये। पुराण धर्मोंका संग्रह है।

विप्रवर! अब मैं सती स्त्रियोंमें जो अत्यन्त उत्कृष्ट गुण होते हैं, उनका वर्णन करता हूँ। सती स्त्रीका वंश शुद्ध होता है। वहाँ सदा लक्ष्मी निवास करती हैं। सतीके पितृकुल और पतिकुल—दोनों कुलोंको तथा उसके स्वामीको भी स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। जो स्त्रियाँ अपने जीवनका पूर्वकाल पुण्य-पापमिश्रित कर्मोंमें व्यतीत करके पीछे भी पतिव्रता होती हैं, उन्हें भी मेरे लोककी प्राप्ति हो जाती है। जो स्त्री अपने स्वामीका अनुगमन करती है, वह शराबी, ब्रह्महत्यारे तथा सब प्रकारके पापोंसे लदे हुए पतिको भी पापमुक्त करके अपने साथ स्वर्गमें ले जाती है। जो मरे हुए पतिके पीछे प्राण-त्याग करके जाती है, उसे स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है। जो नारी पतिका अनुगमन करती है, वह मनुष्यके शरीरमें जितने (साढ़े तीन करोड़) रोम होते हैं, इतने ही वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करती है। यदि पतिकी मृत्यु कहीं दूर हो जाय तो उसका कोई चिह्न पाकर जो स्त्री चिताकी अग्निमें प्राण-त्याग करती है, वह अपने पतिका पापसे उद्धार कर देती है। जो स्त्री पतिव्रता होती है, उसे चाहिये कि यदि पतिकी मृत्यु परदेशमें हो जाय तो उसका कोई चिह्न प्राप्त करे और उसे ही ले अग्निमें शयन करके स्वर्गलोककी यात्रा करे। यदि ब्राह्मण जातिकी स्त्री मरे हुए पतिके साथ चिताग्निमें प्रवेश करे तो उसे आत्मघातका दोष लगता है, जिससे न तो वह अपनेको और न अपने पतिको ही स्वर्गमें पहुँचा पाती है। इसलिये ब्राह्मण जातिकी स्त्री अपने मरे हुए पतिके साथ जलकर न मरे—यह ब्रह्माजीकी आज्ञा है। ब्राह्मणी विधवाको वैधव्य-व्रतका आचरण करना चाहिये। जो विधवा एकादशीका व्रत नहीं रखती, वह दूसरे जन्ममें भी विधवा ही होती है तथा प्रत्येक जन्ममें दुर्भाग्यसे पीड़ित रहती है। मछली-मांस खाने और व्रत न करनेसे वह चिरकालतक नरकमें रहकर फिर कुत्तेकी योनिमें जन्म लेती है। जो कुलनाशिनी विधवा दुराचारिणी होकर मैथुन कराती है, वह नरक-यातना भोगनेके पश्चात् दस जन्मोंतक गीधिनी होती है। फिर दो जन्मोंतक लोमड़ी होकर पीछे मनुष्य-योनिमें जन्म लेती है। उसमें भी बाल-विधवा होकर दासीभावको प्राप्त होती है।

---

*यो वै गृहाश्रमं त्यक्त्वा मच्चित्तो जायते नरः। नित्यं स्मरति गोविन्दं सर्वपापक्षयो भवेत्॥
ब्रह्महत्यायुतं तेन कृतं गुर्वङ्गनागमः। शतं शतसहस्रं च पैष्टीमद्यस्य भक्षणम्॥
स्वर्णदिर्हरणं चैव तेषां संसर्गकश्चिरम्। एतान्यन्यानि पापानि महान्ति पातकानि च॥
अग्निं प्राप्य यथा तूलं तृणमाशु प्रणश्यति। तस्मान्मन्नाम गोविन्दं स्मृत्वा पूतो भवेन्नरः॥
यो वा गृहाश्रमे तिष्ठेन्नित्यं गोविन्दघोषणम्। कृत्वा च पूजयित्वा च स पापात्संतरो भवेत्॥
भागीरथीतटे रम्ये खगस्य ग्रहणे शिवे। गवां कोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः॥
तत्फलं समवाप्नोति सहस्रं चाधिकं च यत्। गोविन्दकीर्तने तात मत्पुरे चाक्षयं वसत्॥
(४९। ५०—५६)

**ब्राह्मणने कहा**—भगवन्! यदि आपका मुझपर अनुग्रह है तो अब कन्यादानके फलका वर्णन कीजिये। साथ ही उसकी यथार्थ विधि भी बतलाइये।

**श्रीभगवान् बोले**—ब्रह्मन्! रूपवान्, गुणवान्, कुलीन, तरुण, समृद्धिशाली और धन-धान्यसे सम्पन्न वरको कन्यादान करनेका जो फल होता है, उसे श्रवण करो। जो मनुष्य आभूषणोंसे युक्त कन्याका दान करता है, उसके द्वारा पर्वत, वन और काननोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीका दान हो जाता है। जो पिता कन्याका शुल्क लेकर खाता है, वह नरकमें पड़ता है। जो मूर्ख अपनी पुत्रीको बेच देता है, उसका कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। जो लोभवश अयोग्य पुरुषको कन्यादान देता है, वह रौरव नरकमें पड़कर अन्तमें चाण्डाल होता है।* इसीसे विद्वान् पुरुष दामादसे शुल्क लेनेका कभी विचार भी मनमें नहीं लाते। अपनी ओरसे दामादको जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। पृथ्वी, गौ, सोना, धन-धान्य और वस्त्र आदि जो कुछ दामादको दहेजके रूपमें दिया जाता है, सब अक्षय फलका देनेवाला होता है। जैसे कटी हुई डोर घड़ेके साथ स्वयं भी कुएँमें डूब जाती है, उसी प्रकार यदि दाता संकल्प किये हुए दानको भूल जाता है और दान लेनेवाला पुरुष फिर उसे याद दिलाकर माँगता नहीं तो वे दोनों नरकमें पड़ते हैं। सात्त्विक पुरुषको उचित है कि वह जामाताको दहेजमें देनेके लिये निश्चित की हुई सभी वस्तुएँ अवश्य दे डाले। न देनेपर पहले तो वह नरकमें पड़ता है; फिर प्रतिग्रह लेनेवालेके दासके रूपमें जन्म ग्रहण करता है।

जो बहुत खाता हो, अधिक दूर रहता हो, अत्यधिक धनवान् हो, जिसमें अधिक दुष्टता हो, जिसका कुल उत्तम न हो तथा जो मूर्ख हो—इन छः मनुष्योंको कन्या नहीं देनी चाहिये। इसी प्रकार अतिवृद्ध, अत्यन्त दीन, रोगी, अति निकट रहनेवाले, अत्यन्त क्रोधी और असन्तुष्ट—इन छः व्यक्तियोंको भी कन्यादान नहीं करना चाहिये। इन्हें कन्या देकर मनुष्य नरकमें पड़ता है। धनके लोभसे या सम्मान मिलनेकी आशासे जो कन्या देता या एक कन्या दिखाकर दूसरीका विवाह कर देता है, वह भी नरकगामी होता है। जो प्रतिदिन इस परम उत्तम पुण्यमय उपाख्यानका श्रवण करता है, उसके जन्म-जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं।

## तुलाधारके सत्य और समताकी प्रशंसा, सत्यभाषणकी महिमा, लोभ-त्यागके विषयमें एक शूद्रकी कथा और मूक चाण्डाल आदिका परमधामगमन

**ब्राह्मणने कहा**—प्रभो! यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो अब तुलाधारके चरित्र और अनुपम प्रभावका पूरा-पूरा वर्णन कीजिये।

**श्रीभगवान् बोले**—जो सत्यका पालन करते हुए लोभ और दोषबुद्धिका त्याग करके प्रतिदिन कुछ दान करता है, उसके द्वारा मानो नित्यप्रति उत्तम दक्षिणासे युक्त सौ यज्ञोंका अनुष्ठान होता रहता है। सत्यसे सूर्यका उदय होता है, सत्यसे ही वायु चलती रहती है, सत्यके ही प्रभावसे समुद्र अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता और भगवान् कच्छप इस पृथ्वीको अपनी पीठपर धारण किये रहते हैं। सत्यसे ही तीनों लोक और समस्त पर्वत टिके हुए हैं। जो सत्यसे भ्रष्ट हो जाता है, उस प्राणीको निश्चय ही नरकमें निवास करना पड़ता है। जो सत्य वाणी और सत्य कार्यमें सदा संलग्न रहता है, वह इसी शरीरसे भगवान्के धाममें जाकर भगवत्स्वरूप हो जाता है। सत्यसे ही समस्त ऋषि-मुनि मुझे प्राप्त होकर

---

*यः पुनः शुल्कमश्नाति स याति नरकं नरः। विक्रीत्वा चात्मजां मूढो नरकान्न निवर्तते॥
लोभादसदृशे पुंसि कन्यां यस्तु प्रयच्छति। रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डालत्वं च गच्छति॥

(४९। ९०-९१)

शाश्वत गतिमें स्थित हुए हैं। सत्यसे ही राजा युधिष्ठिर सशरीर स्वर्गमें चले गये।* उन्होंने समस्त शत्रुओंको जीतकर धर्मके अनुसार लोकका पालन किया। अत्यन्त दुर्लभ एवं विशुद्ध राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया। वे प्रतिदिन चौरासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराते और उनकी इच्छाके अनुसार पर्याप्त धन दान करते थे। जब यह जान लेते कि इनमेंसे प्रत्येक ब्राह्मणकी दरिद्रता दूर हो चुकी है, तभी उस ब्राह्मण-समुदायको विदा करते थे। यह सब उनके सत्यका ही प्रभाव था। राजा हरिश्चन्द्र सत्यका आश्रय लेनेसे ही वाहन, परिवार तथा अपने विशुद्ध शरीरके साथ सत्यलोकमें प्रतिष्ठित हैं। इनके सिवा और भी बहुत-से राजा, सिद्ध, महर्षि, ज्ञानी और यज्ञकर्ता हो चुके हैं, जो कभी सत्यसे विचलित नहीं हुए। अतः लोकमें जो सत्यपरायण है, वही संसारका उद्धार करनेमें समर्थ होता है। महात्मा तुलाधार सत्यभाषणमें स्थित हैं। सत्य बोलनेके कारण ही इस जगत्में उनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। ये तुलाधार कभी झूठ नहीं बोलते। महँगी और सस्ती सब प्रकारकी वस्तुओंके खरीदने-बेचनेमें ये बड़े बुद्धिमान् हैं।

विशेषतः साक्षीका सत्य वचन ही उत्तम माना गया है। कितने ही साक्षी सत्यभाषण करके अक्षय स्वर्गको प्राप्त कर चुके हैं। जो वक्ता विद्वान् सभामें पहुँचकर सत्य बोलता है, वह ब्रह्माजीके धामको, जो अन्यान्य यज्ञोंद्वारा दुर्लभ है, प्राप्त होता है। जो सभामें सत्यभाषण करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। लोभ और द्वेषवश झूठ बोलनेसे मनुष्य रौरव नरकमें पड़ता है। तुलाधार सबके साक्षी हैं, वे मनुष्योंमें साक्षात् सूर्य ही हैं। विशेष बात यह है कि लोभका परित्याग कर देनेके कारण मनुष्य स्वर्गमें देवता होता है।

एक महान् भाग्यशाली शूद्र था, जो कभी लोभमें नहीं पड़ता था। वह साग खाकर, बाजारसे अन्नके दाने चुनकर तथा खेतोंसे धानकी बालें बीनकर बड़े दुःखसे जीवन-निर्वाह करता था। उसके पास दो फटे-पुराने वस्त्र थे तथा वह अपने हाथोंसे ही सदा पात्रका काम लेता था। उसे कभी किसी वस्तुका लाभ नहीं हुआ, तथापि वह पराया धन नहीं लेता था। एक दिन मैं उसकी परीक्षा करनेके लिये दो नवीन वस्त्र लेकर गया और नदीके तीरपर एक कोनेमें उन्हें आदरपूर्वक रखकर अन्यत्र जा खड़ा हुआ। शूद्रने उन दोनों वस्त्रोंको देखकर भी मनमें लोभ नहीं किया और यह समझकर कि ये किसी औरके पड़े होंगे चुपचाप घर चला गया। तब यह सोचकर कि बहुत थोड़ा लाभ होनेके कारण ही उसने इन वस्त्रोंको नहीं लिया होगा, मैंने गूलरके फलमें सोनेका टुकड़ा डालकर उसे वहीं रख दिया। मगध प्रदेश, नदीका तट और कोनेका निर्जन स्थान—ऐसी जगह पहुँचकर उसने उस अद्भुत फलको देखा। उसपर दृष्टि पड़ते ही वह बोल उठा—'बस, बस; यह तो कोई कृत्रिम विधान दिखायी देता है। इस समय इस फलको ग्रहण कर लेनेपर मेरी अलोभवृत्ति नष्ट हो जायगी। इस धनकी रक्षा करनेमें बड़ा कष्ट होता है। यह अहंकारका स्थान है। जितना ही लाभ होता है, उतना ही लोभ बढ़ता जाता है। लाभसे ही लोभकी उत्पत्ति होती है। लोभसे ग्रस्त मनुष्यको सदा ही नरकमें रहना पड़ता है। यदि यह गुणहीन द्रव्य मेरे घरमें रहेगा तो मेरी स्त्री और पुत्रोंको उन्माद हो जायगा। उन्माद कामजनित विकार है। उससे बुद्धिमें भ्रम हो जाता है, भ्रमसे मोह और अहंकारकी उत्पत्ति होती है। उनसे क्रोध और लोभका प्रादुर्भाव होता है। इन सबकी अधिकता होनेपर तपस्याका नाश हो जायगा। तपस्याका क्षय हो जानेपर चित्तको मोहमें

---

*सत्येनोदयते सूरो वाति वातस्तथैव च। न लङ्घयेत् समुद्रस्तु कूर्मो वा धरणीं यथा॥
सत्येन लोकास्तिष्ठन्ति सर्वे च वसुधाधराः। सत्याद्भ्रष्टोऽथ यः सत्त्वोऽप्यधोवासी भवेद्ध्रुवम्॥
सत्यवाचि रतो यस्तु सत्यकार्यरतः सदा। सशरीरेण स्वर्लोकमागत्याच्युततां व्रजेत्॥
सत्येन मुनयः सर्वे मां च गत्वा स्थिराः स्थिताः। सत्याद् युधिष्ठिरो राजा सशरीरो दिवं गतः॥
(५०। ३—६)

डालनेवाला मालिन्य पैदा होगा। उस मलिनता-रूप साँकलमें बँध जानेपर मनुष्य फिर ऊपर नहीं उठ सकता।'

यह विचारकर वह शूद्र उस फलको वहीं छोड़ घर चला गया। उस समय स्वर्गस्थ देवता प्रसन्नताके साथ 'साधु-साधु' कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे। तब मैं एक क्षपणकका रूप धारण करके उसके घरके पास गया और लोगोंको उनके भाग्यकी बातें बताने लगा। विशेषतः भूतकालकी बात बताया करता था। फिर लोगोंके बारम्बार आने-जानेसे यह समाचार सब ओर फैल गया। यह सुनकर उस शूद्रकी स्त्री भी मेरे पास आयी और अपने भाग्यका कारण पूछने लगी। तब मैंने तुरंत ही उसके मनकी बात बता दी और एकान्तमें स्थित होकर कहा—'महाभागे! विधाताने आज तेरे लिये बहुत धन दिया था, किन्तु तेरे पतिने मूर्खकी भाँति उसका परित्याग कर दिया है। तेरे घरमें धनका बिलकुल अभाव है। अतः जबतक तेरा पति जीवित रहेगा, तबतक उसे दरिद्रता ही भोगनी पड़ेगी—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। माता! तू शीघ्र ही अपने घर जा और पतिसे उस धनके विषयमें पूछ।' इस मङ्गलमय वचनको सुनकर वह अपने पतिके पास गयी और उस दुःखद वृत्तान्तकी चर्चा करने लगी। उसकी बातको सुनकर शूद्रको बड़ा विस्मय हुआ। वह कुछ सोचकर पत्नीको साथ लिये मेरे पास आया और एकान्तमें मुझसे बोला—'क्षपणक! बताओ, तुम क्या कहते थे?'

**क्षपणक बोला**—तात! तुम्हें प्रत्यक्ष धन प्राप्त हुआ था; फिर भी तुमने अवज्ञापूर्वक तिनकेकी भाँति उसका त्याग कर दिया। ऐसा क्यों किया? जान पड़ता है तुम्हारे भाग्यमें भोग नहीं बदा है। धनके अभावमें तुम्हें जन्मसे लेकर मृत्युतक अपने और बन्धु-बान्धवोंके दुःख देखने पड़ेंगे; प्रतिदिन मृतकोंकी-सी अवस्था भोगनी पड़ेगी। इसलिये शीघ्र ही उस धनको ग्रहण करो और निष्कण्टक भोग भोगो।

**शूद्रने कहा**—क्षपणक! मुझे धनकी इच्छा नहीं है। धन संसार-बन्धनमें डालनेवाला एक जाल है। उसमें फँसे हुए मनुष्यका फिर उद्धार नहीं होता। इस लोक और परलोकमें भी धनके जो दोष हैं, उन्हें सुनो। धन रहनेपर चोर, बन्धु-बान्धव तथा राजासे भी भय प्राप्त होता है। सब मनुष्य [उस धनको हड़प लेनेके लिये] धनी व्यक्तिको मार डालनेकी अभिलाषा रखते हैं; फिर धन कैसे सुखद हो सकता है? धन प्राणोंका घातक और पापका साधक है। धनीका घर काल एवं काम आदि दोषोंका निकेतन बन जाता है। अतः धन दुर्गतिका प्रधान कारण है।

**क्षपणक बोला**—जिसके पास धन होता है, उसीको मित्र मिलते हैं। जिसके पास धन है, उसके सभी भाई-बन्धु हैं। कुल, शील, पाण्डित्य, रूप, भोग, यश और सुख—ये सब धनवान्‌को ही प्राप्त होते हैं। धनहीन मनुष्यको तो उसके स्त्री-पुत्र भी त्याग देते हैं; फिर उसे मित्रोंकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। जो जन्मसे दरिद्र हैं, वे धर्मका अनुष्ठान कैसे कर सकते हैं। स्वर्गप्राप्तिमें उपकारक जो सात्त्विक यज्ञकार्य तथा पोखरे खुदवाना आदि कर्म हैं, वे भी धनके अभावमें नहीं हो सकते। दान संसारके लिये स्वर्गकी सीढ़ी है; किन्तु निर्धन व्यक्तिके द्वारा उसकी भी सिद्धि होनी असम्भव है। व्रत आदिका पालन, धर्मोपदेश आदिका श्रवण, पितृ-यज्ञ आदिका अनुष्ठान तथा तीर्थ-सेवन—ये शुभकर्म धनहीन मनुष्यके किये नहीं हो सकते। रोगोंका निवारण, पथ्यका सेवन, औषधोंका संग्रह, अपने शरीरकी रक्षा तथा शत्रुओंपर विजय आदि कार्य भी धनसे ही सिद्ध होते हैं, इसलिये जिसके पास बहुत धन हो, उसीको इच्छानुसार भोग प्राप्त हो सकते हैं। धन रहनेपर तुम दानसे ही शीघ्र स्वर्गकी प्राप्ति कर सकते हो।

**शूद्रने कहा**—कामनाओंका त्याग करनेसे ही समस्त व्रतोंका पालन हो जाता है। क्रोध छोड़ देनेसे तीर्थोंका सेवन हो जाता है। दया ही जपके समान है। सन्तोष ही शुद्ध धन है, अहिंसा ही सबसे बड़ी सिद्धि है, शिलोञ्छवृत्ति ही उत्तम जीविका है। सागका भोजन ही अमृतके समान है। उपवास ही उत्तम तपस्या है। सन्तोष ही मेरे लिये बहुत बड़ा भोग है। कौड़ीका दान

ही मुझ-जैसे व्यक्तिके लिये महादान है। परायी स्त्रियाँ माता और पराया धन मिट्टीके ढेलेके समान है। परस्त्री सर्पिणीके समान भयङ्कर है। यही सब मेरा यज्ञ है। गुणनिधे ! इसी कारण मैं उस धनको नहीं ग्रहण करता। यह मैं सच-सच बता रहा हूँ। कीचड़ लगाकर धोनेकी अपेक्षा दूरसे उसका स्पर्श न करना ही अच्छा है।

**श्रीभगवान् कहते हैं**—नरश्रेष्ठ ! उस शूद्रके इतना कहते ही सम्पूर्ण देवता उसके शरीर और मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। देवताओंके नगारे बज उठे। गन्धर्वोंका गान होने लगा। तुरंत ही

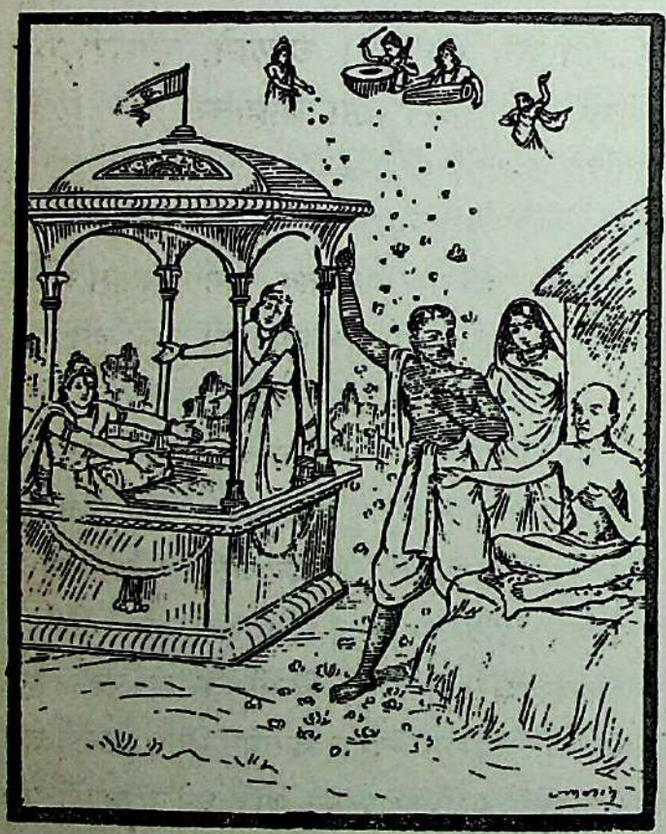

आकाशसे विमान उतर आया। देवताओंने कहा—'धर्मात्मन् ! इस विमानपर बैठो और सत्यलोकमें चलकर दिव्य भोगोंका उपभोग करो। तुम्हारे उपभोग-कालका कोई परिमाण नहीं है—अनन्त कालतक तुम्हें पुण्योंका फल भोगना है।' देवगणोंके यों कहनेपर शूद्र बोला—'इस क्षपणकको ऐसा ज्ञान, ऐसी चेष्टा और इस प्रकार भाषणकी शक्ति कैसे प्राप्त हुई है ? इसके रूपमें भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, शुक्र अथवा बृहस्पति—इनमेंसे तो कोई नहीं है ? अथवा मुझे छलनेके लिये साक्षात् धर्म ही तो यहाँ नहीं आये हैं ?' शूद्रके ऐसे वचन सुनकर क्षपणकके रूपमें उपस्थित हुआ मैं हँसकर बोला—'महामुने ! मैं साक्षात् विष्णु हूँ, तुम्हारे धर्मको जाननेके लिये यहाँ आया था। अब तुम अपने परिवार-सहित विमानपर बैठकर स्वर्गको जाओ।'

तदनन्तर वह शूद्र दिव्य आभूषण और दिव्य वस्त्रोंसे सुशोभित हो सहसा परिवारसहित स्वर्गलोकको चला गया। इस प्रकार उस शूद्रपरिवारके सब लोग लोभ त्याग देनेके कारण स्वर्ग सिधारे। बुद्धिमान् तुलाधार धर्मात्मा हैं। वे सत्यधर्ममें प्रतिष्ठित हैं। इसीलिये देशान्तरमें होनेवाली बातें भी उन्हें ज्ञात हो जाती हैं। तुलाधारके समान प्रतिष्ठित व्यक्ति देवलोकमें भी नहीं है। जो मनुष्य सब धर्मोंमें प्रतिष्ठित होकर इस पवित्र उपाख्यानका श्रवण करता है, उसके जन्म-जन्मके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। एक बारके पाठसे उसे सब यज्ञोंका फल मिल जाता है। वह लोकमें श्रेष्ठ और देवताओंका भी पूज्य होता है।

**व्यासजी कहते हैं**—तदनन्तर, मूक चाण्डाल आदि सभी धर्मात्मा परमधाम जानेकी इच्छासे भगवान्के पास आये। उनके साथ उनकी स्त्रियाँ तथा अन्यान्य परिकर भी थे। इतना ही नहीं, उनके घरके आस-पास जो छिपकलियाँ तथा नाना प्रकारके कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे देवस्वरूप होकर उनके पीछे-पीछे जानेको उपस्थित थे। उस समय देवता, सिद्ध और महर्षिगण 'धन्य-धन्य' के नारे लगाते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे। विमानों और वनोंमें देवताओंके नगारे बजने लगे। वे सब महात्मा अपने-अपने विमानपर आरूढ़ हो विष्णुधामको पधारे। ब्राह्मण नरोत्तमने यह अद्भुत दृश्य देखकर श्रीजनार्दनसे कहा—'देवेश ! मधुसूदन !! मुझे कोई उपदेश दीजिये।'

**श्रीभगवान् बोले**—तात ! तुम्हारे माता-पिताका चित्त शोकसे व्याकुल हो रहा है; उनके पास जाओ। उनकी यत्नपूर्वक आराधना करके तुम शीघ्र ही मेरे धाममें जाओगे। माता-पिताके समान देवता देवलोकमें भी नहीं हैं। उन्होंने शैशवकालमें तुम्हारे

घिनौने शरीरका सदा पालन किया है। उसका पोषण करके बढ़ाया है। तुम अज्ञान-दोषसे युक्त थे, माता-पिताने तुम्हें सज्ञान बनाया है। चराचर प्राणियों-सहित समस्त त्रिलोकीमें भी उनके समान पूज्य कोई नहीं है।

**व्यासजी कहते हैं**—तदनन्तर देवगण मूक चाण्डाल, पतिव्रता शुभा, तुलाधार वैश्य, सज्जनाद्रोहक और वैष्णव संत—इन पाँचों महात्माओंको साथ ले प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌की स्तुति करते हुए वैकुण्ठधाममें पधारे। वे सभी अच्युत-स्वरूप होकर सम्पूर्ण लोकोंके ऊपर स्थित हुए। नरोत्तम ब्राह्मणने भी यत्नपूर्वक माता-पिताकी आराधना करके थोड़े कालमें ही कुटुम्ब-सहित भगवद्धामको प्राप्त किया। शिष्यगण ! यह पाँच महात्माओंका पवित्र उपाख्यान मैंने तुम्हें सुनाया है। जो इसका पाठ अथवा श्रवण करेगा, उसकी कभी दुर्गति नहीं होगी। वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे कभी लिप्त नहीं हो सकता। मनुष्य करोड़ों गोदान करनेसे जिस फलको प्राप्त करता है, पुष्कर तीर्थ और गङ्गानदीमें स्नान करनेसे उसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल एक बार इस उपाख्यानके सुनने मात्रसे मिल जाता है।

## पोखरे खुदाने, वृक्ष लगाने, पीपलकी पूजा करने, पौंसले (प्याऊ) चलाने, गोचरभूमि छोड़ने, देवालय बनवाने और देवताओंकी पूजा करनेका माहात्म्य

**ब्राह्मणोंने कहा**—मुनिश्रेष्ठ ! यदि हमलोगोंपर आपका अनुग्रह हो तो उन श्रेष्ठ कर्मोंका वर्णन कीजिये, जिनसे संसारमें कीर्ति और धर्मकी प्राप्ति होती है।

**व्यासजीने कहा**—जिसके खुदवाये हुए पोखरेमें अथवा वनमें गौएँ एक मास या सात दिनोंतक तृप्त रहती हैं, वह पवित्र होकर सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित होता है। विशेषतः प्रतिष्ठाके द्वारा पवित्र हुई पोखरीके जलका दान करनेसे जो फल होता है, वह सब सुनो। पोखरेमें जब मेघ वर्षा करता है, उस समय जलके जितने छींटे उछलते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक पोखरा बनवानेवाला मनुष्य स्वर्गलोकका सुख भोगता है। जलसे खेती पकती है, जिससे मनुष्यको प्रसन्नता होती है। जलके बिना प्राणोंका धारण करना असम्भव है। पितरोंका तर्पण, शौच, सुन्दर रूप और दुर्गन्धका नाश—ये सब जलपर ही निर्भर हैं। इस जगत्‌में संग्रह किये हुए सम्पूर्ण बीजोंका आधार जल ही है। कपड़े धोना और बर्तनोंको माँज-धोकर चमकीला बनाना भी जलके ही अधीन है। इसीसे प्रत्येक कार्यमें जलको पवित्र माना गया है। अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके सारा बल और सारा धन लगाकर बावली, कुआँ तथा पोखरा बनवाने चाहिये। जो निर्जल प्रदेशमें जलाशय बनवाता है, उसे प्रतिदिन इतना पुण्य प्राप्त होता है, जिससे वह एक-एक दिनके पुण्यके बदले एक-एक कल्पतक स्वर्गमें निवास करता है। जो पुरुष प्रतिदिन दूसरोंके उपकारके लिये चार हाथ कुआँ खोदता है, वह एक-एक वर्षके पुण्यका एक-एक कल्पतक स्वर्गमें रहकर उपभोग करता है। जलाशय बनानेका उपदेश देनेवालेको एक करोड़ वर्षोंतक स्वर्गका निवास प्राप्त होता है तथा जो स्वयं जलाशय बनवाता है, उसका पुण्य अक्षय होता है।

पूर्वकालकी बात है, किसी धनीके पुत्रने एक विख्यात जलाशयका निर्माण कराया, जिसमें उसने दस हजार सोनेकी मुहरें व्यय की थीं। धनीने अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्राणपणसे चेष्टा करके बड़ी श्रद्धाके साथ सम्पूर्ण प्राणियोंके उपकारके लिये वह कल्याणमय जलाशय तैयार कराया था। कुछ कालके पश्चात् वह निर्धन हो गया। उसके बाद एक दूसरा धनी उसके बनवाये हुए जलाशयका मूल्य देनेको उद्यत हुआ और कहा—'मैं इस जलाशयके लिये दस हजार स्वर्ण-मुद्राएँ दूँगा। इसे खुदवानेका पुण्य तो तुम्हें मिल ही चुका है। मैं केवल मूल्य देकर इसके ऊपर अपना अधिकार करना चाहता हूँ। यदि तुम्हें लाभ जान पड़े तो मेरा प्रस्ताव स्वीकार करो।' धनीके ऐसा कहनेपर जलाशय-

निर्माण करानेवालेने उसे इस प्रकार उत्तर दिया— 'भाई ! दस हजारका पुण्यफल तो इस जलाशयसे मुझे रोज ही प्राप्त होता है। पुण्यवेत्ताओंने जलाशय-निर्माणका ऐसा ही पुण्य माना है। इस निर्जल प्रदेशमें मैंने यह कल्याणमय सरोवर निर्माण कराया है, इसमें सब लोग अपनी इच्छाके अनुसार स्नान और जलपान आदि कार्य करते हैं।'

उसकी यह बात सुनकर लोगोंने खूब हँसी उड़ायी। तब वह लज्जासे पीड़ित होकर बोला—'हमारी यह बात सच है; विश्वास न हो तो धर्मानुसार इसकी परीक्षा कर लो।' धनीने ईर्ष्यापूर्वक कहा— 'बाबू ! मेरी बात सुनो। मैं पहले तुम्हें दस हजार स्वर्णमुद्राएँ देता हूँ। इसके बाद मैं पत्थर लाकर तुम्हारे जलाशयमें डालूँगा। पत्थर स्वाभाविक ही पानीमें डूब जायगा। फिर यदि वह समयानुसार पानीके ऊपर आकर तैरने लगेगा तो मेरा रुपया मारा जायगा। नहीं तो इस जलाशयपर धर्मतः मेरा अधिकार हो जायगा।' जलाशय बनवानेवालेने 'बहुत अच्छा' कहकर उससे दस हजार मुद्राएँ ले लीं और अपने घरको चल दिया। धनीने कई गवाह बुलाकर उनके सामने उस महान् जलाशयमें पत्थर गिराया। उसके इस कार्यको मनुष्यों, देवताओं और असुरोंने भी देखा। तब धर्मके साक्षीने धर्मतुलापर दस हजार स्वर्ण-मुद्राएँ और जलाशयके जलको तोला; किन्तु वे मुद्राएँ जलाशयसे होनेवाले एक दिनके जल-दानकी भी तुलना न कर सकीं। अपने धनको व्यर्थ जाते देख धनीके हृदयको बड़ा दुःख हुआ। दूसरे दिन वह पत्थर भी द्वीपकी भाँति जलके ऊपर तैरने लगा। यह देख लोगोंमें बड़ा कोलाहल मचा। इस अद्भुत घटनाकी बात सुनकर धनी और जलाशयका स्वामी दोनों ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये। पत्थरको उस अवस्थामें देख धनीने अपनी दस हजार मुद्राएँ उसीकी मान लीं। तत्पश्चात् जलाशयके स्वामीने ही वह पत्थर उठाकर दूर फेंक दिया।

नष्ट होते हुए जलाशयको पुनः खुदवाकर उसका उद्धार करनेसे जो पुण्य होता है, उसके द्वारा मनुष्य स्वर्गमें निवास करता है तथा प्रत्येक जन्ममें वह शान्त और सुखी होता है। अपने गोत्रके मनुष्य, माताके कुटुम्बी, राजा, सगे-सम्बन्धी, मित्र और उपकारी पुरुषोंके खुदवाये हुए जलाशयका जीर्णोद्धार करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। तपस्वियों, अनाथों और विशेषतः ब्राह्मणोंके लिये जलाशय खुदवानेसे भी मनुष्य अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। इसलिये ब्राह्मणो ! जो अपनी शक्तिके अनुसार जलाशय आदिका निर्माण कराता है, वह सब पापोंके क्षय हो जानेसे [अक्षय] पुण्य तथा मोक्षको प्राप्त होता है। जो धार्मिक पुरुष लोकमें इस महान् धर्ममय उपाख्यानको सुनाता है, उसे सब प्रकारके जलाशय-दान करनेका फल होता है। सूर्यग्रहणके समय गङ्गाजीके उत्तम तटपर एक करोड़ गोदान करनेका जो फल होता है; वही इस प्रसङ्गको सुननेसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है।

अब मैं सम्पूर्ण वृक्षोंके लगानेका अलग-अलग फल कहूँगा। जो जलाशयके तटपर चारों ओर पवित्र वृक्षोंको लगाता है, उसके पुण्यफलका वर्णन नहीं किया जा सकता। अन्य स्थानोंमें वृक्ष लगानेसे जो फल प्राप्त होता है, जलके समीप लगानेपर उसकी अपेक्षा करोड़ों-गुना अधिक फल होता है। अपने बनवाये हुए पोखरेके किनारे वृक्ष लगानेवाला मनुष्य अनन्त फलका भागी होता है।

जलाशयके समीप पीपलका वृक्ष लगाकर मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वह सैकड़ों यज्ञोंसे भी नहीं मिल सकता। प्रत्येक पर्वके दिन जो उसके पत्ते जलमें गिरते हैं, वे पिण्डके समान होकर पितरोंको अक्षय तृप्ति प्रदान करते हैं तथा उस वृक्षपर रहनेवाले पक्षी अपनी इच्छाके अनुसार जो फल खाते हैं, उसका ब्राह्मण-भोजनके समान अक्षय फल होता है। गर्मीके समयमें गौ, देवता और ब्राह्मण जिस पीपलकी छायामें बैठते हैं, उसे लगानेवाले मनुष्यके पितरोंको अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके पीपलका वृक्ष लगाना चाहिये। एक वृक्ष लगा देनेपर भी मनुष्य स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। रसोंके क्रय-विक्रयके लिये नियत रमणीय स्थानपर, मार्गमें और जलाशयके किनारे जो

वृक्ष लगाता है, वह मनोरम स्वर्गको प्राप्त होता है।

ब्राह्मणो ! पीपलके वृक्षकी पूजा करनेसे जो पुण्य होता है, उसे बतलाता हूँ; सुनो। जो मनुष्य स्नान करके पीपलके वृक्षका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो बिना नहाये पीपलका स्पर्श करता है, उसे स्नानजन्य फलकी प्राप्ति होती है। अश्वत्थके दर्शनसे पापका नाश और स्पर्शसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, उसकी प्रदक्षिणा करनेसे आयु बढ़ती है। अश्वत्थ वृक्षको हविष्य, दूध, नैवेद्य, फूल, धूप और दीपक अर्पण करके मनुष्य स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। पीपलकी जड़के पास बैठकर जो जप, होम, स्तोत्र-पाठ और यन्त्र-मन्त्रादिके अनुष्ठान किये जाते हैं, उन सबका फल करोड़गुना होता है। जिसकी जड़में श्रीविष्णु, तनेमें भगवान् शङ्कर तथा अग्रभागमें साक्षात् ब्रह्माजी स्थित हैं, उसे संसारमें कौन नहीं पूजेगा। सोमवती अमावास्याको मौन होकर स्नान और एक हजार गौओंका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल अश्वत्थ वृक्षको प्रणाम करनेसे मिल जाता है। अश्वत्थकी सात बार प्रदक्षिणा करनेसे दस हजार गौओंके और इससे अधिक अनेकों बार परिक्रमा करनेपर करोड़ों गौओंके दानका फल प्राप्त होता है। अतः पीपल वृक्षकी परिक्रमा सदा ही करनी चाहिये।

विप्रगण ! पीपलके वृक्षके नीचे जो फल, मूल और जल आदिका दान किया जाता है, वह सब अक्षय होकर जन्म-जन्मान्तरोंमें प्राप्त होता रहता है। पीपलके समान दूसरा कोई वृक्ष नहीं है। अश्वत्थ वृक्षके रूपमें साक्षात् श्रीहरि ही इस भूतलपर विराजमान हैं। जैसे संसारमें ब्राह्मण, गौ तथा देवता पूजनीय होते हैं, उसी प्रकार पीपलका वृक्ष भी अत्यन्त पूजनीय माना गया है। पीपलको रोपने, रक्षा करने, छूने तथा पूजनेसे वह क्रमशः धन, पुत्र, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करता है। जो मनुष्य अश्वत्थ वृक्षके शरीरमें कहीं कुछ चोट पहुँचाता है—उसकी डाली या टहनी काट लेता है, वह एक कल्पतक नरक भोगकर चाण्डाल आदिकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है। और जो कोई पीपलको जड़से काट देता है, उसका कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। यही नहीं, उसकी पहली कई पीढ़ियाँ भयंकर रौरव नरकमें पड़ती हैं। बेलके आठ, बरगदके सात और नीमके दस वृक्ष लगानेका जो फल होता है, पीपलका एक पेड़ लगानेसे भी वही फल होता है।

अब मैं पौंसले (प्याऊ) का लक्षण बताता हूँ। जहाँ जलका अभाव हो, ऐसे मार्गमें पवित्र स्थानपर एक मण्डप बनाये। वह मार्ग ऐसा होना चाहिये, जहाँ बहुत-से पथिकोंका आना-जाना लगा रहता हो। वहाँ मण्डपमें जलका प्रबन्ध रखे और गर्मी, बरसात तथा शरद्ऋतुमें बटोहियोंको जल पिलाता रहे। तीन वर्षोंतक इस प्रकार पौंसलेको चालू रखनेसे पोखरा खुदवानेका पुण्य प्राप्त होता है। जो जलहीन प्रदेशमें ग्रीष्मके समय एक मासतक पौंसला चलाता है, वह एक कल्पतक स्वर्गमें सम्मानपूर्वक निवास करता है। जो पोखरे आदिके फलको पढ़ता अथवा सुनाता है, वह पापसे मुक्त होता है और उसके प्रभावसे उसकी सद्गति हो जाती है। अब ब्रह्माजीने सेतु बाँधनेका जैसा फल बताया है, वह सुनो। जहाँका मार्ग दुर्गम हो, दुस्तर कीचड़से भरा हो तथा जो प्रचुर कण्टकोंसे आकीर्ण हो, वहाँ पुल बँधवाकर मनुष्य पवित्र हो जाता है तथा देवत्वको प्राप्त होता है। जो एक बित्तेका भी पुल बँधवा देता है, वह सौ दिव्य वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। अतः जिसने पहले कभी एक बित्तेका भी पुल बँधवाया है, वह राजवंशमें जन्म ग्रहण करता है और अन्तमें महान् स्वर्गको प्राप्त होता है।

इसी प्रकार जो गोचरभूमि छोड़ता है, वह कभी स्वर्गसे नीचे नहीं गिरता। गोदान करनेवालेकी जो गति होती है, वही उसकी भी होती है। जो मनुष्य यथाशक्ति गोचरभूमि छोड़ता है, उसे प्रतिदिन सौसे भी अधिक ब्राह्मणोंको भोजन करानेका पुण्य होता है। जो पवित्र वृक्ष और गोचरभूमिका उच्छेद करता है, उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ रौरव नरकमें पकायी जाती हैं। गाँवके गोपालकको चाहिये कि गोचरभूमिको नष्ट करनेवाले मनुष्यका पता लगाकर उसे दण्ड दे।

जो मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुकी प्रतिमाके लिये तीन

या पाँच खंभोंसे युक्त, शोभासम्पन्न और सुन्दर कलशसे विभूषित मन्दिर बनवाता है, अथवा इससे भी बढ़कर जो मिट्टी या पत्थरका देवालय निर्माण कराता है, उसके खर्चके लिये धन और वृत्ति लगाता है तथा मन्दिरमें अपने इष्टदेवकी, विशेषतः भगवान् श्रीविष्णुकी प्रतिमा स्थापित करके शास्त्रोक्त विधिसे उसकी प्रतिष्ठा कराता है, वह नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। श्रीविष्णु या श्रीशिवकी प्रतिमा बनवाकर उसके साथ अन्य देवताओंकी भी मनोहर मूर्ति निर्माण करानेसे मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वह इस पृथ्वीपर हजारों यज्ञ, दान और व्रत आदि करनेसे भी नहीं मिलता। अपनी शक्तिके अनुसार श्रीशिवलिङ्गके लिये मन्दिर बनवाकर धर्मात्मा पुरुष वही फल प्राप्त करता है, जो श्रीविष्णु-प्रतिमाके लिये मन्दिर बनवानेसे मिलता है। [वह शिव-सायुज्यको प्राप्त होता है।] जो मनुष्य अपने घरमें भगवान् श्रीशङ्करकी सुन्दर प्रतिमा स्थापित करता है, वह एक करोड़ कल्पोंतक देवलोकमें निवास करता है। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक श्रीगणेशजीका मन्दिर बनवाता है, वह देवलोकमें पूजित होता है। इसी प्रकार जो नरश्रेष्ठ भगवान् सूर्यका मन्दिर बनवाता है, उसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। सूर्य-प्रतिमाके लिये पत्थरका मन्दिर बनवाकर मनुष्य सौ करोड़ कल्पोंतक स्वर्ग भोगता है।

जो इष्टदेवके मन्दिरमें एक मासतक अहर्निश घीका दीपक जलाता है, वह उत्तम देवताओंसे पूजित होकर दस हजार दिव्य वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। तिलके अथवा दूसरे किसी तेलसे दीपक जलानेका फल घीकी अपेक्षा आधा होता है। एक मासतक जल चढ़ानेसे जो फल मिलता है, उससे मनुष्य ईश्वर-भावको प्राप्त होता है। शीत-कालमें देवताको रूईदार कपड़ा चढ़ाकर मनुष्य सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। देव-विग्रहको ढकनेके लिये चार हाथका सुन्दर वस्त्र अर्पण करके मनुष्य कभी स्वर्गसे नहीं गिरता। उन्नतिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको स्वयम्भू शिव-लिङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये। जो विद्वान् एक बार भी शिवलिङ्गकी परिक्रमा करता है, वह सौ दिव्य वर्षोंतक स्वर्गलोकका सुख भोगता है। इसी प्रकार क्रमशः स्वयम्भू लिङ्गको नमस्कार करके मनुष्य विश्ववन्द्य होकर स्वर्गलोकको जाता है; इसलिये प्रतिदिन उन्हें प्रणाम करना चाहिये।

जो मनुष्य लिङ्गस्वरूप भगवान् श्रीशङ्करके धनका अपहरण करता है, वह रौरव नरककी यातना भोगकर अन्तमें कीड़ा होता है। जो शिवलिङ्ग अथवा भगवान् श्रीविष्णुकी पूजाके लिये मिले हुए दाताके द्रव्यको स्वयं ही हड़प लेता है, वह अपने कुलकी करोड़ों पीढ़ियोंके साथ नरकसे उद्धार नहीं पाता। जो जल, फूल और धूप-दीप आदिके लिये धन लेकर फिर लोभवश उसे उस कार्यमें नहीं लगाता, वह अक्षय नरकमें पड़ता है। भगवान् शिवके अन्न-पानका भक्षण करनेसे मनुष्यकी बड़ी दुर्गति होती है। अतः जो ब्राह्मण शिवमन्दिरमें पूजाकी वृत्तिसे जीविका चलाता है, उसका कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। अनाथ, दीन और विशेषतः श्रोत्रिय ब्राह्मणके लिये सुन्दर घर निर्माण कराकर मनुष्य कभी स्वर्गलोकसे नहीं गिरता। जो इस परम उत्तम पवित्र उपाख्यानका प्रतिदिन श्रवण करता है, उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है तथा मन्दिर-निर्माण आदिका फल भी प्राप्त हो जाता है।

★

## रुद्राक्षकी उत्पत्ति और महिमा तथा आँवलेके फलकी महिमामें प्रेतोंकी कथा और तुलसीदलका माहात्म्य

**ब्राह्मणोंने पूछा**—द्विजश्रेष्ठ! इस मर्त्यलोकमें कौन ऐसा मनुष्य है, जो पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ, परम पवित्र, सबके लिये सुलभ, मनुष्योंके द्वारा पूजन करने योग्य तथा मुनियों और तपस्वियोंका भी आदरपात्र हो?

**व्यासजी बोले**—विप्रगण! रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाला पुरुष सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ है। उसके

दर्शनमात्रसे लोगोंकी पाप-राशि विलीन हो जाती है। रुद्राक्षके स्पर्शसे मनुष्य स्वर्गका सुख भोगता है और उसे धारण करनेसे वह मोक्षको प्राप्त होता है। जो मस्तकपर तथा हृदय और बाँहमें भी रुद्राक्ष धारण करता है, वह इस संसारमें साक्षात् भगवान् शङ्करके समान है। रुद्राक्षधारी ब्राह्मण जहाँ रहता है, वह देश पुण्यवान् होता है। रुद्राक्षका फल तीर्थोंमें महान् तीर्थके समान है। ब्रह्म-ग्रन्थिसे युक्त मङ्गलमयी रुद्राक्षकी माला लेकर जो जप-दान-स्तोत्र, मन्त्र और देवताओंका पूजन तथा दूसरा कोई पुण्य कर्म करता है, वह सब अक्षय हो जाता है तथा उससे पापोंका क्षय होता है।

श्रेष्ठ द्विजगण ! अब मैं मालाका लक्षण बतलाता हूँ, सुनो। उसका लक्षण जानकर तुमलोग मोक्ष-मार्ग प्राप्त कर लोगे। जिस रुद्राक्षमें योनिका चिह्न न हो, जिसमें कीड़ोंने छेद कर दिया हो, जिसका लिङ्गचिह्न मिट गया हो तथा जिसमें दो बीज एक साथ सटे हुए हों, ऐसे रुद्राक्षके दानेको मालामें नहीं लेना चाहिये। जो माला अपने हाथसे गूँथी हुई और ढीली-ढाली हो, जिसके दाने एक-दूसरेसे सटे हुए हों अथवा शूद्र आदि नीच मनुष्योंने जिसे गूँथा हो—ऐसी माला अशुद्ध होती है। उसका दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जो सर्पके समान आकारवाली (एक ओरसे बड़ी और क्रमशः छोटी), नक्षत्रोंकी-सी शोभा धारण करनेवाली, सुमेरुसे युक्त तथा सटी हुई ग्रन्थिके कारण शुद्ध है, वही माला उत्तम मानी गयी है। विद्वान् पुरुषको वैसी ही मालापर जप करना चाहिये। उपर्युक्त लक्षणोंसे शुद्ध रुद्राक्षकी माला हाथमें लेकर मध्यमा अङ्गुलिसे लगे हुए दानोंको क्रमशः अँगूठेसे सरकाते हुए जप करना चाहिये। मेरुके पास पहुँचनेपर मालाको हाथसे बार-बार घुमा लेना चाहिये—मेरुका उल्लङ्घन करना उचित नहीं है। वैदिक, पौराणिक तथा आगमोक्त जितने भी मन्त्र हैं, सब रुद्राक्षमालापर जप करनेसे अभीष्ट फलके उत्पादक और मोक्षदायक होते हैं। जो रुद्राक्षमालासे चूते हुए जलको मस्तकपर धारण करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर अक्षय पुण्यका भागी होता है। रुद्राक्षमालाका एक-एक बीज एक-एक देवताके समान है। जो मनुष्य अपने शरीरमें रुद्राक्ष धारण करता है, वह देवताओंमें श्रेष्ठ होता है।

**ब्राह्मणोंने पूछा**—गुरुदेव ! रुद्राक्षकी उत्पत्ति कहाँसे हुई है ? तथा वह इतना पवित्र कैसे हुआ ?

**व्यासजी बोले**—ब्राह्मणो ! पहले किसी सत्ययुगमें एक त्रिपुर नामका दानव रहता था, वह देवताओंका वध करके अपने अन्तरिक्षचारी नगरमें छिप जाता था। ब्रह्माजीके वरदानसे प्रबल होकर वह सम्पूर्ण लोकोंके विनाशकी चेष्टा कर रहा था। एक समय देवताओंके निवेदन करनेपर भगवान् शङ्करने यह भयंकर समाचार सुना। सुनते ही उन्होंने अपने आजगव नामक धनुषपर विकराल बाण चढ़ाया और उस दानवको दिव्य दृष्टिसे देखकर मार डाला। दानव आकाशसे टूटकर गिरनेवाली बहुत बड़ी लूकाके समान इस पृथ्वीपर गिरा। इस कार्यमें अत्यन्त श्रम होनेके कारण रुद्रदेवके शरीरसे पसीनेकी बूँदें टपकने लगीं। उन बूँदोंसे तुरंत ही पृथ्वीपर रुद्राक्षका महान् वृक्ष प्रकट हुआ। इसका फल अत्यन्त गुप्त होनेके कारण साधारण जीव उसे नहीं जानते। तदनन्तर एक दिन कैलासके शिखरपर विराजमान हुए देवाधिदेव भगवान् शङ्करको प्रणाम करके कार्तिकेयजीने कहा—'तात ! मैं रुद्राक्षका यथार्थ फल जानना चाहता हूँ। उसपर जप करने तथा उसका धारण, दर्शन अथवा स्पर्श करनेसे क्या फल मिलता है ?'

**भगवान् शिवने कहा**—रुद्राक्षके धारण करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। यदि कोई हिंसक पशु भी कण्ठमें रुद्राक्ष धारण करके मर जाय तो रुद्रस्वरूप हो जाता है, फिर मनुष्य आदिके लिये तो कहना ही क्या है। जो मनुष्य मस्तक और हृदयमें रुद्राक्षकी माला धारण करके चलता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। [रुद्राक्षमें एकसे लेकर चौदहतक मुख होते हैं।] जो कितने भी मुखवाले रुद्राक्षोंको धारण करता है, वह मेरे समान होता है; इसलिये पुत्र ! तुम पूरा प्रयत्न करके रुद्राक्ष धारण करो।

जो रुद्राक्ष धारण करके इस भूतलपर प्राण-त्याग करता है; वह सब देवताओंसे पूजित होकर मेरे रमणीय धामको जाता है। जो मृत्युकालमें मस्तकपर एक रुद्राक्षकी माला धारण करता है, वह शैव, वैष्णव, शाक्त, गणेशोपासक और सूर्योपासक सब कुछ है। जो इस प्रसङ्गको पढ़ता-पढ़ाता, सुनता और सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर सुखपूर्वक मोक्ष-लाभ करता है।

**कार्तिकेयजीने कहा**—जगदीश्वर ! मैं अन्यान्य फलोंकी पवित्रताके विषयमें भी प्रश्न कर रहा हूँ। सब लोगोंके हितके लिये यह बतलाइये कि कौन-कौन-से फल उत्तम हैं।

**ईश्वरने कहा**—बेटा ! आँवलेका फल समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध और परम पवित्र है। उसे लगानेपर स्त्री और पुरुष सभी जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। यह पवित्र फल भगवान् श्रीविष्णुको प्रसन्न करनेवाला एवं शुभ माना गया है, इसके भक्षणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। आँवला खानेसे आयु बढ़ती है, उसका जल पीनेसे धर्म-सञ्चय होता है और उसके द्वारा स्नान करनेसे दरिद्रता दूर होती है तथा सब प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। कार्तिकेय ! जिस घरमें आँवला सदा मौजूद रहता है, वहाँ दैत्य और राक्षस नहीं जाते। एकादशीके दिन यदि एक ही आँवला मिल जाय तो उसके सामने गङ्गा, गया, काशी और पुष्कर आदि तीर्थ कोई विशेष महत्त्व नहीं रखते। जो दोनों पक्षोंकी एकादशीको आँवलेसे स्नान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह श्रीविष्णुलोकमें सम्मानित होता है। षडानन ! जो आँवलेके रससे सदा अपने केश साफ करता है, वह पुनः माताके स्तनका दूध नहीं पीता। आँवलेका दर्शन, स्पर्श तथा उसके नामका उच्चारण करनेसे सन्तुष्ट होकर वरदायक भगवान् श्रीविष्णु अनुकूल हो जाते हैं। जहाँ आँवलेका फल मौजूद होता है, वहाँ भगवान् श्रीविष्णु सदा विराजमान रहते हैं तथा उस घरमें ब्रह्मा एवं सुस्थिर लक्ष्मीका भी वास होता है। इसलिये अपने घरमें आँवला अवश्य रखना चाहिये। जो आँवलेका बना मुरब्बा एवं बहुमूल्य नैवेद्य अर्पण करता है, उसके ऊपर भगवान् श्रीविष्णु बहुत सन्तुष्ट होते हैं। उतना सन्तोष उन्हें सैकड़ों यज्ञ करनेपर भी नहीं हो सकता।

स्कन्द ! योगी, मुनियों तथा ज्ञानियोंको जो गति प्राप्त होती है, वही आँवलेका सेवन करनेवाले मनुष्यको भी मिलती है। तीर्थोंमें वास एवं तीर्थ-यात्रा करनेसे तथा नाना प्रकारके व्रतोंसे मनुष्यको जो गति प्राप्त होती है, वही आँवलेके फलका सेवन करनेसे भी मिल जाती है। तात ! प्रत्येक रविवार तथा विशेषतः सप्तमी तिथिको आँवलेका फल दूरसे ही त्याग देना चाहिये। संक्रान्तिके दिन, शुक्रवारको तथा षष्ठी, प्रतिपदा, नवमी और अमावास्याको आँवलेका दूरसे ही परित्याग करना उचित है। जिस मृतकके मुख, नाक, कान अथवा बालोंमें आँवलेका फल हो, वह विष्णुलोकको जाता है। आँवलेके सम्पर्कमात्रसे मृत व्यक्ति भगवद्धामको प्राप्त होता है। जो धार्मिक मनुष्य शरीरमें आँवलेका रस लगाकर स्नान करता है, उसे पद-पदपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। उसके दर्शन मात्रसे जितने भी पापी जन्तु हैं, वे भाग जाते हैं तथा कठोर एवं दुष्ट ग्रह पलायन कर जाते हैं।

स्कन्द ! पूर्वकालकी बात है—एक चाण्डाल शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। वहाँ अनेकों मृगों और पक्षियोंको मारकर जब वह भूख-प्याससे अत्यन्त पीड़ित हो गया, तब सामने ही उसे एक आँवलेका वृक्ष दिखायी दिया। उसमें खूब मोटे-मोटे फल लगे थे। चाण्डाल सहसा वृक्षके ऊपर चढ़ गया और उसके उत्तम-उत्तम फल खाने लगा। प्रारब्धवश वह वृक्षके शिखरसे पृथ्वीपर गिर पड़ा और वेदनासे व्यथित होकर इस लोकसे चल बसा। तदनन्तर सम्पूर्ण प्रेत, राक्षस, भूतगण तथा यमराजके सेवक बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये; किन्तु उसे ले न जा सके। यद्यपि वे महान् बलवान् थे, तथापि उस मृतक चाण्डालकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे। जब कोई भी उसे पकड़कर ले जा न सका, तब वे अपनी असमर्थता देख मुनियोंके पास जाकर बोले—'ज्ञानी महर्षियो !

चाण्डाल तो बड़ा पापी था; फिर क्या कारण है कि हमलोग तथा ये यमराजके सेवक उसकी ओर देख भी न सके ?' 'यह मेरा है, यह मेरा है' कहते हुए हमलोग झगड़ा कर रहे हैं, किन्तु उसे ले जानेकी शक्ति नहीं रखते। क्यों और किसके प्रभावसे वह सूर्यकी भाँति दुष्प्रेक्ष्य हो रहा है—उसकी ओर दृष्टिपात करना भी कठिन जान पड़ता है।'

**मुनियोंने कहा**—प्रेतगण! इस चाण्डालने आँवलेके पके हुए फल खाये थे। उसकी डाल टूट जानेसे उसके सम्पर्कमें ही इसकी मृत्यु हुई है। मृत्युकालमें भी इसके आस-पास बहुत-से फल बिखरे पड़े थे। इन्हीं सब कारणोंसे तुमलोगोंका इसकी ओर देखना कठिन हो रहा है। इस पापीका आँवलेसे सम्पर्क रविवारको या और किसी निषिद्ध वेलामें नहीं हुआ है; इसलिये यह दिव्य लोकको प्राप्त होगा।

**प्रेत बोले**—मुनीश्वरो! आपलोगोंका ज्ञान उत्तम है, इसलिये हम आपसे एक प्रश्न पूछते हैं। जबतक यहाँ श्रीविष्णुलोकसे विमान नहीं आता, तबतक आपलोग हमारे प्रश्नका उत्तर दे दें। जहाँ वेदों और नाना प्रकारके मन्त्रोंका गम्भीर घोष होता है, जहाँ पुराणों और स्मृतियोंका स्वाध्याय किया जाता है, वहाँ हम एक क्षणके लिये भी नहीं ठहर सकते। यज्ञ, होम, जप तथा देवपूजा आदि शुभ कार्योंके सामने हमारा ठहरना असम्भव है; इसलिये हमें यह बताइये कि कौन-सा कर्म करके मनुष्य प्रेतयोनियोंको प्राप्त होते हैं। हमें यह सुननेकी भी इच्छा है कि उनका शरीर विकृत क्योंकर हो जाता है।

**ब्रह्मर्षियोंने कहा**—जो झूठी गवाही देते तथा वध और बन्धनमें पड़कर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे नरकमें पड़े हुए जीव ही प्रेत होते हैं। जो ब्राह्मणोंके दोष ढूँढ़नेमें लगे रहते हैं और गुरुजनोंके शुभ कर्मोंमें बाधा पहुँचाते हैं तथा जो श्रेष्ठ ब्राह्मणको दिये जानेवाले दानमें रुकावट डाल देते हैं, वे चिरकालतक प्रेतयोनिमें पड़कर नरकसे कभी उद्धार नहीं पाते। जो मूर्ख अपने और दूसरेके बैलोंको कष्ट दे उनसे बोझ ढोनेका काम लेकर उनकी रक्षा नहीं करते, जो अपनी प्रतिज्ञाका त्याग करते, असत्य बोलते और व्रत भङ्ग करते हैं तथा जो कमलके पत्तेपर भोजन करते हैं, वे सब इस पृथ्वीपर कर्मानुसार प्रेत होते हैं। जो अपने चाचा और मामा आदिकी सदाचारिणी कन्या तथा साध्वी स्त्रीको बेच देते हैं, वे भूतलपर प्रेत होते हैं।

**प्रेतोंने पूछा**—ब्राह्मणो! किस प्रकार और किस कर्मके आचरणसे मनुष्य प्रेत नहीं होते ?

**ब्राह्मणोंने कहा**—जिस बुद्धिमान् पुरुषने तीर्थोंके जलमें स्नान तथा शिवको नमस्कार किया है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता। जो एकादशी अथवा द्वादशीको उपवास करके विशेषतः भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करते हैं तथा जो वेदोंके अक्षर, सूक्त, स्तोत्र और मन्त्र आदिके द्वारा देवताओंके पूजनमें संलग्न रहते हैं, उन्हें भी प्रेत नहीं होना पड़ता। पुराणोंके धर्मयुक्त दिव्य वचन सुनने, पढ़ने और पढ़ानेसे तथा नाना प्रकारके व्रतोंका अनुष्ठान करने और रुद्राक्ष धारण करनेसे जो पवित्र हो चुके हैं एवं जो रुद्राक्षकी मालापर जप करते हैं, वे प्रेतयोनिको नहीं प्राप्त होते। जो आँवलेके फलके रससे स्नान करके प्रतिदिन आँवला खाया करते हैं तथा आँवलेके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुका पूजन भी करते हैं, वे कभी पिशाचयोनिमें नहीं जाते।

**प्रेत बोले**—महर्षियो! संतोंके दर्शनसे पुण्य होता है—इस बातको पौराणिक विद्वान् जानते हैं। हमें भी आपका दर्शन हुआ है; इसलिये आपलोग हमारा कल्याण करें। धीर महात्माओ! जिस उपायसे हम सब लोगोंको प्रेतयोनिसे छुटकारा मिले, उसका उपदेश कीजिये। हम आपलोगोंकी शरणमें आये हैं।

**ब्राह्मण बोले**—हमारे वचनसे तुमलोग आँवलेका भक्षण कर सकते हो। वह तुम्हारे लिये कल्याणकारक होगा। उसके प्रभावसे तुम उत्तम लोकमें जानेके योग्य बन जाओगे।

**महादेवजी कहते हैं**—इस प्रकार ऋषियोंसे सुनकर पिशाच आँवलेके वृक्षपर चढ़ गये और उसका फल ले-लेकर उन्होंने बड़ी मौजके साथ खाया। तब

देवलोकसे तुरंत ही एक पीले रङ्गका सुवर्णमय विमान उतरा, जो परम शोभायमान था। पिशाचोंने उसपर आरूढ़ होकर स्वर्गलोककी यात्रा की। बेटा! अनेक व्रतों और यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी जो अत्यन्त दुर्लभ है, वही लोक उन्हें आँवलेका भक्षण करने मात्रसे मिल गया।

**कार्तिकेयजीने पूछा**—पिताजी! जब आँवलेके फलका भक्षण करने मात्रसे प्रेत पुण्यात्मा होकर स्वर्गको चले गये, तब मनुष्य आदि जितने प्राणी हैं, वे भी आँवला खानेसे क्यों नहीं तुरंत स्वर्गमें चले जाते?

**महादेवजीने कहा**—बेटा! [स्वर्गकी प्राप्ति तो उन्हें भी होती है; किन्तु] तुरंत ऐसा न होनेमें एक कारण है—उनका ज्ञान लुप्त रहता है, वे अपने हित और अहितकी बात नहीं जानते। [इसलिये आँवलेके महत्त्वमें उनकी श्रद्धा नहीं होती।]

जिस घरकी मालकिन सहज ही काबूमें न आनेवाली, पवित्रता और संयमसे रहित, गुरुजनोंद्वारा निकाली हुई तथा दुराचारिणी होती है, वहाँ प्रेत रहा करते हैं। जो कुल और जातिसे नीच, बल और उत्साहसे रहित, बहरे, दुर्बल और दीन हैं, वे कर्मजनित पिशाच हैं। जो माता, पिता, गुरु और देवताओंकी निन्दा करते हैं, पाखण्डी और वाममार्गी हैं, जो गलेमें फाँसी लगाकर, पानीमें डूबकर, तलवार या छुरा भोंककर अथवा जहर खाकर आत्मघात कर लेते हैं, वे प्रेत होनेके पश्चात् इस लोकमें चाण्डाल आदि योनियोंके भीतर जन्म ग्रहण करते हैं। जो माता-पिता आदिसे द्रोह करते, ध्यान और अध्ययनसे दूर रहते हैं, व्रत और देवपूजा नहीं करते, मन्त्र और स्नानसे हीन रहकर गुरुपत्नी-गमनमें प्रवृत्त होते हैं तथा जो दुर्गतिमें पड़ी हुई चाण्डाल आदिकी स्त्रियोंसे समागम करते हैं, वे भी प्रेत होते हैं। म्लेच्छोंके देशमें जिनकी मृत्यु होती है, जो म्लेच्छोंके समान आचरण करते और स्त्रीके धनसे जीविका चलाते हैं, जिनके द्वारा स्त्रियोंकी रक्षा नहीं होती, वे निःसन्देह प्रेत होते हैं। जो क्षुधासे पीड़ित, थके-माँदे, गुणवान् और पुण्यात्मा अतिथिके रूपमें घरपर आये हुए ब्राह्मणको लौटा देते हैं—उसका यथावत् सत्कार नहीं करते, जो गो-भक्षी म्लेच्छोंके हाथ गौएँ बेच देते हैं, जो जीवनभर स्नान, सन्ध्या, वेद-पाठ, यज्ञानुष्ठान और अक्षरज्ञानसे दूर रहते हैं, जो लोग जूठे शकोरे आदि और शरीरके मल-मूत्र तीर्थ-भूमिमें गिराते हैं, वे निस्सन्देह प्रेत होते हैं। जो स्त्रियाँ पतिका परित्याग करके दूसरे लोगोंके साथ रहती हैं, वे चिरकालतक प्रेतलोकमें निवास करनेके पश्चात् चाण्डालयोनिमें जन्म लेती हैं। जो विषय और इन्द्रियोंसे मोहित होकर पतिको धोखा देकर स्वयं मिठाइयाँ उड़ाती हैं, वे पापाचारिणी स्त्रियाँ चिरकालतक इस पृथ्वीपर प्रेत होती हैं। जो मनुष्य बलपूर्वक दूसरेकी वस्तुएँ लेकर उन्हें अपने अधिकारमें कर लेते हैं और अतिथियोंका अनादर करते हैं, वे प्रेत होकर नरकमें पड़े रहते हैं।

इसलिये जो आँवला खाकर उसके रससे स्नान करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं। अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके तुम आँवलेके कल्याणमय फलका सेवन करो। जो इस पवित्र और मङ्गलमय उपाख्यानका प्रतिदिन श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे शुद्ध होकर भगवान् श्रीविष्णुके लोकमें सम्मानित होता है। जो सदा ही लोगोंमें, विशेषतः वैष्णवोंमें आँवलेके माहात्म्यका श्रवण कराता है, वह भगवान् श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है—ऐसा पौराणिकोंका कथन है।

**कार्तिकेयजीने कहा**—प्रभो! रुद्राक्ष और आँवला—इन दोनों फलोंकी पवित्रताको तो मैं जान गया। अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि कौन-सा ऐसा वृक्ष है, जिसका पत्ता और फूल भी मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

**महादेवजी बोले**—बेटा! सब प्रकारके पत्तों और पुष्पोंकी अपेक्षा तुलसी ही श्रेष्ठ मानी गयी है। वह परम मङ्गलमयी, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, शुद्ध, श्रीविष्णुको अत्यन्त प्रिय तथा 'वैष्णवी' नाम धारण करनेवाली है। वह सम्पूर्ण लोकमें श्रेष्ठ, शुभ तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। भगवान् श्रीविष्णुने पूर्वकालमें सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये तुलसीका वृक्ष रोपा था। तुलसीके पत्ते और पुष्प सब धर्मोंमें

प्रतिष्ठित हैं। जैसे भगवान् श्रीविष्णुको लक्ष्मी और मैं दोनों प्रिय हैं, उसी प्रकार यह तुलसीदेवी भी परम प्रिय है। हम तीनके सिवा कोई चौथा ऐसा नहीं जान पड़ता, जो भगवान्‌को इतना प्रिय हो। तुलसीदलके बिना दूसरे-दूसरे फूलों, पत्तों तथा चन्दन आदिके लेपोंसे भगवान् श्रीविष्णुको उतना सन्तोष नहीं होता। जिसने तुलसीदलके द्वारा पूर्ण श्रद्धाके साथ प्रतिदिन भगवान् श्रीविष्णुका पूजन किया है, उसने दान, होम, यज्ञ और व्रत आदि सब पूर्ण कर लिये। तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा कर लेनेपर कान्ति, सुख, भोगसामग्री, यश, लक्ष्मी, श्रेष्ठ कुल, शील, पत्नी, पुत्र, कन्या, धन, राज्य, आरोग्य, ज्ञान, विज्ञान, वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र, पुराण, तन्त्र और संहिता—सब कुछ मैं करतलगत समझता हूँ। जैसे पुण्यसलिला गङ्गा मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं, उसी प्रकार यह तुलसी भी कल्याण करनेवाली है। स्कन्द! यदि मञ्जरीयुक्त तुलसीपत्रोंके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की जाय तो उसके पुण्यफलका वर्णन करना असम्भव है। जहाँ तुलसीका वन है, वहीं भगवान् श्रीकृष्णकी समीपता है। तथा वहीं ब्रह्मा और लक्ष्मीजी भी सम्पूर्ण देवताओंके साथ विराजमान हैं। इसलिये अपने निकटवर्ती स्थानमें तुलसीदेवीको रोपकर उनकी पूजा करनी चाहिये। तुलसीके निकट जो स्तोत्र-मन्त्र आदिका जप किया जाता है, वह सब अनन्तगुना फल देनेवाला होता है।

प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, भूत और दैत्य आदि सब तुलसीके वृक्षसे दूर भागते हैं। ब्रह्महत्या आदि पाप तथा पाप और खोटे विचारसे उत्पन्न होनेवाले रोग—ये सब तुलसीवृक्षके समीप नष्ट हो जाते हैं। जिसने श्रीभगवान्‌की पूजाके लिये पृथ्वीपर तुलसीका बगीचा लगा रखा है, उसने उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त सौ यज्ञोंका विधिवत् अनुष्ठान पूर्ण कर लिया है। जो श्रीभगवान्‌की प्रतिमाओं तथा शालग्राम-शिलाओंपर चढ़े हुए तुलसीदलको प्रसादके रूपमें ग्रहण करता है, वह श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। जो श्रीहरिकी पूजा करके उन्हें निवेदन किये हुए तुलसीदलको अपने मस्तकपर धारण करता है, वह पापसे शुद्ध होकर स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। कलियुगमें तुलसीका पूजन, कीर्तन, ध्यान, रोपण और धारण करनेसे वह पापको जलाती और स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करती है। जो तुलसीके पूजन आदिका दूसरोंको उपदेश देता और स्वयं भी आचरण करता है, वह भगवान् श्रीलक्ष्मीपतिके परम धामको प्राप्त होता है।* जो वस्तु भगवान् श्रीविष्णुको प्रिय जान पड़ती है, वह मुझे भी अत्यन्त प्रिय है। श्राद्ध और यज्ञ आदि कार्योंमें तुलसीका एक पत्ता भी महान् पुण्य प्रदान करनेवाला है। जिसने तुलसीकी सेवा की है, उसने गुरु, ब्राह्मण, देवता और तीर्थ—सबका भलीभाँति सेवन कर लिया। इसलिये षडानन! तुम तुलसीका सेवन करो। जो शिखामें तुलसी स्थापित करके प्राणोंका परित्याग करता है, वह पापराशिसे मुक्त हो जाता है। राजसूय आदि यज्ञ, भाँति-भाँतिके व्रत तथा संयमके द्वारा धीर पुरुष जिस गतिको प्राप्त करता है, वही उसे तुलसीकी सेवासे मिल जाती है। तुलसीके एक पत्रसे श्रीहरिकी पूजा करके मनुष्य वैष्णवत्वको प्राप्त होता है। उसके लिये अन्यान्य शास्त्रोंके विस्तारकी क्या आवश्यकता है। जिसने तुलसीकी शाखा तथा कोमल पत्तियोंसे भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की है, वह कभी माताका दूध नहीं पीता—उसका पुनर्जन्म नहीं होता। कोमल तुलसीदलोंके द्वारा प्रतिदिन श्रीहरिकी पूजा करके मनुष्य अपनी सैकड़ों और हजारों पीढ़ियोंको पवित्र कर सकता है। तात! ये मैंने तुमसे तुलसीके प्रधान-प्रधान गुण बतलाये हैं। सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन तो बहुत अधिक समय लगानेपर भी नहीं हो सकता। यह उपाख्यान

---

*पूजने कीर्तने ध्याने रोपणे धारणे कलौ। तुलसी दहते पापं स्वर्गं मोक्षं ददाति च॥
उपदेशं ददेदस्याः स्वयमाचरते पुनः। स याति परमं स्थानं माधवस्य निकेतनम्॥
(५८। १३१-१३२)

पुण्यराशिका सञ्चय करनेवाला है। जो प्रतिदिन इसका श्रवण करता है, वह पूर्वजन्मके किये हुए पाप तथा जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। बेटा! इस अध्यायके पाठ करनेवाले पुरुषको कभी रोग नहीं सताते, अज्ञान उसके निकट नहीं आता। उसकी सदा विजय होती है।

★

## तुलसी-स्तोत्रका वर्णन

**ब्राह्मणोंने कहा**—गुरुदेव! हमने आपके मुखसे तुलसीके पत्र और पुष्पका शुभ माहात्म्य सुना, जो भगवान् श्रीविष्णुको बहुत ही प्रिय है। अब हमलोग तुलसीके पुण्यमय स्तोत्रका श्रवण करना चाहते हैं।

**व्यासजी बोले**—ब्राह्मणो! पहले स्कन्दपुराणमें मैं जो कुछ बतला आया हूँ, वही यहाँ कहता हूँ। शतानन्द मुनिके शिष्य कठोर व्रतका पालन करनेवाले थे। उन सबोंने एक दिन अपने गुरुको प्रणाम करके परम पुण्य और हितकी बात पूछी।

**शिष्योंने कहा**—नाथ! ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आपने पूर्वकालमें ब्रह्माजीके मुखसे तुलसीजीके जिस स्तोत्रका श्रवण किया था, उसको हम आपसे सुनना चाहते हैं।

**शतानन्दजी बोले**—शिष्यगण! तुलसीका नामोच्चारण करनेपर असुरोंका दर्प दलन करनेवाले भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जिसके दर्शनमात्रसे करोड़ों गोदानका फल होता है, उस तुलसीका पूजन और वन्दन लोग क्यों न करें। कलियुगके संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जिनके घरमें शालग्राम-शिलाका पूजन सम्पन्न करनेके लिये प्रतिदिन तुलसीका वृक्ष भूतलपर लहलहाता रहता है। जो कलियुगमें भगवान् श्रीकेशवकी पूजाके लिये पृथ्वीपर तुलसीका वृक्ष लगाते हैं, उनपर यदि यमराज अपने किङ्करोंसहित रुष्ट हो जायँ तो भी वे उनका क्या कर सकते हैं। 'तुलसी! तुम अमृतसे उत्पन्न हो और केशवको सदा ही प्रिय हो। कल्याणी! मैं भगवान्‌की पूजाके लिये तुम्हारे पत्तोंको चुनता हूँ। तुम मेरे लिये वरदायिनी बनो। तुम्हारे श्रीअङ्गोंसे उत्पन्न होनेवाले पत्रों और मञ्जरियोंद्वारा मैं सदा ही जिस प्रकार श्रीहरिका पूजन कर सकूँ, वैसा उपाय करो। पवित्राङ्गी तुलसी! तुम कलि-मलका नाश करनेवाली हो।'* इस भावके मन्त्रोंसे जो तुलसीदलोंको चुनकर उनसे भगवान् वासुदेवका पूजन करता है, उसकी पूजाका करोड़ोंगुना फल होता है।

देवेश्वरी! बड़े-बड़े देवता भी तुम्हारे प्रभावका गायन करते हैं। मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, पाताल-निवासी साक्षात् नागराज शेष तथा सम्पूर्ण देवता भी तुम्हारे प्रभावको नहीं जानते; केवल भगवान् श्रीविष्णु ही तुम्हारी महिमाको पूर्णरूपसे जानते हैं। जिस समय क्षीर-समुद्रके मन्थनका उद्योग प्रारम्भ हुआ था, उस समय श्रीविष्णुके आनन्दांशसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ था। पूर्वकालमें श्रीहरिने तुम्हें अपने मस्तकपर धारण किया था। देवि! उस समय श्रीविष्णुके शरीरका सम्पर्क पाकर तुम परम पवित्र हो गयी थीं। तुलसी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम्हारे श्रीअङ्गसे उत्पन्न पत्रोंद्वारा जिस प्रकार श्रीहरिकी पूजा कर सकूँ, ऐसी कृपा करो, जिससे मैं निर्विघ्नतापूर्वक परम गतिको प्राप्त होऊँ। साक्षात् श्रीकृष्णने तुम्हें गोमतीतटपर लगाया और बढ़ाया था। वृन्दावनमें विचरते समय उन्होंने सम्पूर्ण जगत् और

---

* तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये। केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने॥
त्वदङ्गसम्भवैर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम्। तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि।

(५९। ११—१३)

गोपियोंके हितके लिये तुलसीका सेवन किया। जगत्प्रिया तुलसी ! पूर्वकालमें वसिष्ठजीके कथनानुसार श्रीरामचन्द्रजीने भी राक्षसोंका वध करनेके उद्देश्यसे सरयूके तटपर तुम्हें लगाया था। तुलसीदेवी ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। श्रीरामचन्द्रजीसे वियोग हो जानेपर अशोकवाटिकामें रहते हुए जनककिशोरी सीताने तुम्हारा ही ध्यान किया था, जिससे उन्हें पुनः अपने प्रियतमका समागम प्राप्त हुआ। पूर्वकालमें हिमालय पर्वतपर भगवान् शङ्करकी प्राप्तिके लिये पार्वतीदेवीने तुम्हें लगाया और अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये तुम्हारा सेवन किया था। तुलसीदेवी ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। सम्पूर्ण देवाङ्गनाओं और किन्नरोंने भी दुःस्वप्नका नाश करनेके लिये नन्दनवनमें तुम्हारा सेवन किया था। देवि ! तुम्हें मेरा नमस्कार है। धर्मारण्य गयामें साक्षात् पितरोंने तुलसीका सेवन किया था। दण्डकारण्यमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने हित-साधनकी इच्छासे परम पवित्र तुलसीका वृक्ष लगाया तथा लक्ष्मण और सीताने भी बड़ी भक्तिके साथ उसे पोसा था। जिस प्रकार शास्त्रोंमें गङ्गाजीको त्रिभुवनव्यापिनी कहा गया है, उसी प्रकार तुलसीदेवी भी सम्पूर्ण चराचर जगत्में दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसीका ग्रहण करके मनुष्य पातकोंसे मुक्त हो जाता है। और तो और, मुनीश्वरो ! तुलसीके सेवनसे ब्रह्महत्या भी दूर हो जाती है। तुलसीके पत्तेसे टपकता हुआ जल जो अपने सिरपर धारण करता है, उसे गङ्गा-स्नान और दस गोदानका फल प्राप्त होता है। देवि ! मुझपर प्रसन्न होओ। देवेश्वरि ! हरिप्रिये ! मुझपर प्रसन्न हो जाओ। क्षीरसागरके मन्थनसे प्रकट हुई तुलसीदेवि ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

द्वादशीकी रात्रिमें जागरण करके जो इस तुलसी-स्तोत्रका पाठ करता है, भगवान् श्रीविष्णु उसके बत्तीस अपराध क्षमा करते हैं। बाल्यावस्था, कुमारावस्था, जवानी और बुढ़ापेमें जितने पाप किये होते हैं, वे सब तुलसी-स्तोत्रके पाठसे नष्ट हो जाते हैं। तुलसीके स्तोत्रसे सन्तुष्ट होकर भगवान् सुख और अभ्युदय प्रदान करते हैं। जिस घरमें तुलसीका स्तोत्र लिखा हुआ विद्यमान रहता है, उसका कभी अशुभ नहीं होता, उसका सब कुछ मङ्गल-मय होता है, किञ्चित् भी अमङ्गल नहीं होता। उसके लिये सदा सुकाल रहता है। वह घर प्रचुर धन-धान्यसे भरा रहता है। तुलसी-स्तोत्रका पाठ करनेवाले मनुष्यके हृदयमें भगवान् श्रीविष्णुके प्रति अविचल भक्ति होती है। तथा उसका वैष्णवोंसे कभी वियोग नहीं होता। इतना ही नहीं, उसकी बुद्धि कभी अधर्ममें नहीं प्रवृत्त होती। जो द्वादशीकी रात्रिमें जागरण करके तुलसी-स्तोत्रका पाठ करता है, उसे करोड़ों तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त होता है।

## श्रीगङ्गाजीकी महिमा और उनकी उत्पत्ति

**ब्राह्मण बोले**—गुरुदेव ! अब आप हमें कोई ऐसा तीर्थ बतलाइये, जहाँ डुबकी लगानेसे निश्चय ही समस्त पाप तथा दूसरे-दूसरे महापातक भी नष्ट हो जाते हैं।

**व्यासजी बोले**—ब्राह्मणो ! अविलम्ब सद्गतिका उपाय सोचनेवाले सभी स्त्री-पुरुषोंके लिये गङ्गाजी ही एक ऐसा तीर्थ हैं, जिनके दर्शनमात्रसे सारा पाप नष्ट हो जाता है। गङ्गाजीके नामका स्मरण करनेमात्रसे पातक, कीर्तनसे अतिपातक और दर्शनसे भारी-भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हो जाते हैं। गङ्गाजीमें स्नान, जलपान और पितरोंका तर्पण करनेसे महापातकोंकी राशिका प्रतिदिन क्षय होता रहता है। जैसे अग्निका संसर्ग होनेसे रूई और सूखे तिनके क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजी अपने जलका स्पर्श होनेपर मनुष्योंके सारे पाप एक ही क्षणमें दग्ध कर देती हैं।*

जो विधिपूर्वक सङ्कल्पवाक्यका उच्चारण करते हुए

---

*गङ्गेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम्। कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद् गुरुकल्मषम्॥
स्नानात् पानाच्च जाह्नव्यां पितॄणां तर्पणात्तथा। महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने॥
अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद् यथा। तथा गङ्गाजलस्पर्शात् पुंसां पापं दहेत् क्षणात्॥ (६०। ५—७)

गङ्गाजीके जलमें पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डदान करता है, उसे प्रतिदिन सौ यज्ञोंका फल होता है। जो लोग गङ्गाजीके जलमें अथवा तटपर आवश्यक सामग्रियोंसे तर्पण और पिण्डदान करते हैं, उन्हें अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो अकेला भी गङ्गाजीकी यात्रा करता है, उसके पितरोंकी कई पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती हैं। एकमात्र इसी महापुण्यके बलपर वह स्वयं भी तरता है और पितरोंको भी तार देता है। ब्राह्मणो ! गङ्गाजीके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन करनेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं। इसलिये मैं भागीरथीके कुछ ही गुणोंका दिग्दर्शन कराता हूँ।

मुनि, सिद्ध, गन्धर्व तथा अन्यान्य श्रेष्ठ देवता गङ्गाजीके तीरपर तपस्या करके स्वर्गलोकमें स्थिर भावसे विराजमान हुए हैं। आजतक वे वहाँसे इस संसारमें नहीं लौटे। तपस्या, बहुत-से यज्ञ, नाना प्रकारके व्रत तथा पुष्कल दान करनेसे जो गति प्राप्त होती है, गङ्गाजीका सेवन करके मनुष्य उसी गतिको पा लेता है।*

पिता पुत्रको, पत्नी प्रियतमको, सम्बन्धी अपने सम्बन्धीको तथा अन्य सब भाई-बन्धु भी अपने प्रिय बन्धुको छोड़ देते हैं, किन्तु गङ्गाजी उनका परित्याग नहीं करतीं।† जिन श्रेष्ठ मनुष्योंने एक बार भी भक्तिपूर्वक गङ्गामें स्नान किया है, कल्याणमयी गङ्गा उनकी लाख पीढ़ियोंका भवसागरसे उद्धार कर देती हैं। संक्रान्ति, व्यतीपात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण और पुष्य नक्षत्रमें गङ्गाजीमें स्नान करके मनुष्य अपने कुलकी करोड़ पीढ़ियोंका उद्धार कर सकता है। जो मनुष्य [अन्तकालमें] अपने हृदयमें भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करते हुए उत्तरायणके शुक्लपक्षमें दिनको गङ्गाजीके जलमें देह-त्याग करते हैं, वे धन्य हैं। जो इस प्रकार भागीरथीके शुभ जलमें प्राण-त्याग करते हैं, उन्हें पुनरावृत्ति-रहित स्वर्गकी प्राप्ति होती है। गङ्गाजीमें पितरोंको पिण्डदान तथा तिलमिश्रित जलसे तर्पण करनेपर वे यदि नरकमें हों तो स्वर्गमें जाते हैं और स्वर्गमें हों तो मोक्षको प्राप्त होते हैं।

पर-स्त्री और पर-धनका हरण करने तथा सबसे द्रोह करनेवाले पापी मनुष्योंको उत्तम गति प्रदान करनेका साधन एकमात्र गङ्गाजी ही हैं। वेद-शास्त्रके ज्ञानसे रहित, गुरु-निन्दापरायण और सदाचार-शून्य मनुष्यके लिये गङ्गाके समान दूसरी कोई गति नहीं है। गङ्गाजीमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्योंके अनेक जन्मोंकी पापराशि नष्ट हो जाती है तथा वे तत्काल पुण्यभागी होते हैं।

प्रभासक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय एक सहस्र गोदान करनेपर जो फल मिलता है, वह गङ्गाजीमें स्नान करनेसे प्रतिदिन प्राप्त होता है। गङ्गाजीका दर्शन करके मनुष्य पापोंसे छूट जाता है और उसके जलका स्पर्श करके स्वर्ग पाता है। अन्य कार्यके प्रसङ्गसे भी गङ्गाजीमें गोता लगानेपर वे मोक्ष प्रदान करती हैं। गङ्गाजीके दर्शन-मात्रसे पर-धन और पर-स्त्रीकी अभिलाषा तथा पर-धर्म-विषयक रुचि नष्ट हो जाती है। अपने-आप जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तोष करना, अपने धर्ममें प्रवृत्त रहना तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति समान भाव रखना—ये सद्गुण गङ्गाजीमें स्नान करनेवाले मनुष्यके हृदयमें स्वभावतः उत्पन्न होते हैं। जो मनुष्य गङ्गाजीका आश्रय लेकर सुखपूर्वक निवास करता है, वही इस लोकमें जीवन्मुक्त और सर्वश्रेष्ठ है। उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। गङ्गाजीमें या उनके तटपर किया हुआ यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देवपूजन प्रतिदिन कोटि-कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है। अपने जन्म-नक्षत्रके दिन गङ्गाजीके सङ्गममें स्नान करके मनुष्य अपने कुलका उद्धार कर देता है। जो बिना श्रद्धाके भी पुण्यसलिला गङ्गाजीके नामका कीर्तन करता है, वह निश्चय ही स्वर्गका अधिकारी है। वे पृथ्वीपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको और स्वर्गमें देवताओंको तारती हैं। जानकर या अनजानमें, इच्छासे या

---

*तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा । पुरुदानैर्गतिर्या च गङ्गां संसेव्यतां लभेत्॥(६० । २४)

†त्यजन्ति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्गणाः । अन्ये च बान्धवाः सर्वे गङ्गा तान्न परित्यजेत्॥(६० । २६)

अनिच्छासे गङ्गामें मरनेवाला मनुष्य स्वर्ग और मोक्षको भी प्राप्त करता है। सत्त्वगुणमें स्थित योगयुक्त मनीषी पुरुषको जो गति मिलती है, वही गङ्गाजीमें प्राण त्यागनेवाले देहधारियोंको प्राप्त होती है। एक मनुष्य अपने शरीरका शोधन करनेके लिये हजारों चान्द्रायण-व्रत करता है और दूसरा मनचाहा गङ्गाजीका जल पीता है—उन दोनोंमें गङ्गाजलका पान करनेवाला पुरुष ही श्रेष्ठ है। मनुष्यके ऊपर तभीतक तीर्थों, देवताओं और वेदोंका प्रभाव रहता है, जबतक कि वह गङ्गाजीको नहीं प्राप्त कर लेता।

भगवती गङ्गे! वायु देवताने स्वर्ग, पृथ्वी और आकाशमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ बतलाये हैं; वे सब तुम्हारे जलमें विद्यमान हैं। गङ्गे! तुम श्रीविष्णुका चरणोदक होनेके कारण परम पवित्र हो। तीनों लोकोंमें गमन करनेसे त्रिपथगामिनी कहलाती हो। तुम्हारा जल धर्ममय है; इसलिये तुम धर्मद्रवीके नामसे विख्यात हो। जाह्नवी! मेरे पाप हर लो। भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। तुम श्रीविष्णुद्वारा सम्मानित तथा वैष्णवी हो। मुझे जन्मसे लेकर मृत्युतकके पापोंसे बचाओ। महादेवी! भागीरथी! तुम श्रद्धासे, शोभायमान रजःकणोंसे तथा अमृतमय जलसे मुझे पवित्र करो।* इस भावके तीन श्लोकोंका उच्चारण करते हुए जो गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, वह करोड़ जन्मोंके पापसे निःसन्देह मुक्त हो जाता है। अब मैं गङ्गाजीके मूल-मन्त्रका वर्णन करूँगा, जिसे साक्षात् श्रीहरिने बतलाया है। उसका एक बार भी जप करके मनुष्य पवित्र हो जाता तथा श्रीविष्णुके श्रीविग्रहमें प्रतिष्ठित होता है। वह मन्त्र इस प्रकार है—**'ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः।'** (भगवान् श्रीनारायणसे प्रकट हुई विश्वरूपिणी गङ्गाजीको बारंबार नमस्कार है।)

जो मनुष्य गङ्गातीरकी मिट्टी अपने मस्तकपर धारण करता है, वह गङ्गामें स्नान किये बिना ही सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गङ्गाजीकी लहरोंसे सटकर बहनेवाली वायु यदि किसीके शरीरका स्पर्श करती है, तो वह घोर पापसे शुद्ध होकर अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है। मनुष्यकी हड्डी जबतक गङ्गाजीके जलमें पड़ी रहती है, उतने ही हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। माता-पिता, बन्धु-बान्धव, अनाथ तथा गुरुजनोंकी हड्डी गङ्गाजीमें गिरानेसे मनुष्य कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। जो मानव अपने पितरोंकी हड्डियोंके टुकड़े बटोरकर उन्हें गङ्गाजीमें डालनेके लिये ले जाता है, वह पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। गङ्गा-तीरपर बसे हुए गाँव, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े तथा चर-अचर—सभी प्राणी धन्य हैं।

विप्रवरो! जो गङ्गाजीसे एक कोसके भीतर प्राण-त्याग करते हैं, वे मनुष्य देवता ही हैं; उससे बाहरके मनुष्य ही इस पृथ्वीपर मानव हैं। गङ्गास्नानके लिये यात्रा करता हुआ यदि कोई मार्गमें ही मर जाता है, तो वह भी स्वर्गको प्राप्त होता है। ब्राह्मणो! जो लोग गङ्गाजीकी यात्रा करनेवाले मनुष्योंको वहाँका मार्ग बता देते हैं, उन्हें भी परमपुण्यकी प्राप्ति होती है और वे भी गङ्गास्नानका फल पा लेते हैं। जो पाखण्डियोंके संसर्गसे विचारशक्ति खो बैठनेके कारण गङ्गाजीकी निन्दा करते है, वे घोर नरकमें पड़ते हैं तथा वहाँसे फिर कभी उनका उद्धार होना कठिन है। जो सैकड़ों योजन दूरसे भी 'गङ्गा-गङ्गा' कहता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकको प्राप्त होता है।† जो मनुष्य कभी गङ्गाजीमें स्नानके लिये

---

*विष्णुपादार्घसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि। धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि॥
विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता। त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥
श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते। अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम्॥
(६०। ६०—६२)

†गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥
(६०। ७८)

नहीं गये हैं, वे अंधे और पङ्गुके समान हैं। उनका इस संसारमें जन्म लेना व्यर्थ है। जो गङ्गाजीके नामका कीर्तन नहीं करते, वे नराधम जडके समान हैं। जो लोग श्रद्धाके साथ गङ्गाजीके माहात्म्यका पठन-पाठन करते हैं, वे धीर पुरुष स्वर्गको जाते और पितरों तथा गुरुओंका उद्धार कर देते हैं। जो पुरुष गङ्गाजीकी यात्रा करनेवाले लोगोंको राह-खर्चके लिये अपनी शक्तिके अनुसार धन देता है, उसे भी गङ्गाजीमें स्नान करनेका फल मिलता है। दूसरेके खर्चसे जानेवालेको स्नानका जितना फल मिलता है, उससे दूना फल खर्च देकर भेजनेवालोंको प्राप्त होता है। इच्छासे या अनिच्छासे, किसीके भेजनेसे या दूसरेकी सेवाके मिससे भी जो परम पवित्र गङ्गाजीकी यात्रा करता है, वह देवताओंके लोकमें जाता है।

**ब्राह्मणोंने पूछा**—व्यासजी ! हमने आपके मुँहसे गङ्गाजीके गुणोंका अत्यन्त पवित्र कीर्तन सुना। अब हम यह जानना चाहते हैं कि गङ्गाजी कैसे इस रूपमें प्रकट हुईं, उनका स्वरूप क्या है तथा वे क्यों अत्यन्त पावन मानी जाती हैं।

**व्यासजी बोले**—द्विजवरो ! सुनो, मैं एक परम पवित्र प्राचीन कथा सुनाता हूँ। प्राचीन कालकी बात है, मुनिश्रेष्ठ नारदजीने ब्रह्मलोकमें जाकर त्रिलोकपावन ब्रह्माजीको नमस्कार किया और पूछा—'तात ! आपने ऐसी कौन-सी वस्तु उत्पन्न की है, जो भगवान् शङ्कर और श्रीविष्णुको भी अत्यन्त प्रिय हो तथा जो भूतलपर सब लोगोंका हित करनेके लिये अभीष्ट मानी गयी हो ?'

**ब्रह्माजीने कहा**—बेटा ! पूर्वकालमें सृष्टि आरम्भ करते समय मैंने मूर्तिमती प्रकृतिसे कहा—'देवि ! तुम सम्पूर्ण लोकोंका आदि कारण बनो। मैं तुमसे ही संसारकी सृष्टि आरम्भ करूँगा।' यह सुनकर परा प्रकृति सात स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुई; गायत्री, वाग्देवी (सरस्वती), सब प्रकारके धन-धान्य प्रदान करनेवाली लक्ष्मी, ज्ञान-विद्यास्वरूपा उमादेवी, शक्तिबीजा तपस्विनी और धर्मद्रवा—ये ही सात परा प्रकृतिके स्वरूप हैं। इनमें गायत्रीसे सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए हैं और वेदसे सारे जगत्की स्थिति है। स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा और दीक्षा—ये भी गायत्रीसे ही उत्पन्न मानी गयी हैं। अतः यज्ञमें मातृका आदिके साथ सदा ही गायत्रीका उच्चारण करना चाहिये। भारती (सरस्वती) सब लोगोंके मुख और हृदयमें स्थित हैं तथा वे ही समस्त शास्त्रोंमें धर्मका उपदेश करती हैं। तीसरी प्रकृति लक्ष्मी हैं, जिनसे वस्त्र और आभूषणोंकी राशि प्रकट हुई है। सुख और त्रिभुवनका राज्य भी उन्हींकी देन है। इसीसे वे भगवान् श्रीविष्णुकी प्रियतमा हैं। चौथी प्रकृति उमाके द्वारा ही संसारमें भगवान् शङ्करके स्वरूपका ज्ञान होता है। अतः उमाको ज्ञानकी जननी (ब्रह्मविद्या) समझना चाहिये। वे भगवान् शिवके आधे अङ्गमें निवास करती हैं। शक्तिबीजा नामकी जो पाँचवीं प्रकृति है, वह अत्यन्त उग्र और समूचे विश्वको मोहमें डालनेवाली है। समस्त लोकोंमें वही जगत्का पालन और संहार करती है। [तपस्विनी तपस्याकी अधिष्ठात्री देवी है।] सातवीं प्रकृति धर्मद्रवा है, जो सब धर्मोंमें प्रतिष्ठित है। उसे सबसे श्रेष्ठ देखकर मैंने अपने कमण्डलुमें धारण कर लिया। फिर परम प्रभावशाली भगवान् श्रीविष्णुने बलिके यज्ञके समय इसे प्रकट किया। उनके दोनों चरणोंसे सम्पूर्ण महीतल व्याप्त हो गया था। उनमेंसे एक चरण आकाश एवं ब्रह्माण्डको भेदकर मेरे सामने स्थित हुआ। उस समय मैंने कमण्डलुके जलसे उस चरणका पूजन किया। उस चरणको धोकर जब मैं पूजन कर चुका, तब उसका धोवन हेमकूट पर्वतपर गिरा। वहाँसे भगवान् शङ्करके पास पहुँचकर वह जल गङ्गाके रूपमें उनकी जटामें स्थित हुआ। गङ्गा बहुत कालतक उनकी जटामें ही भ्रमण करती रहीं। तत्पश्चात् महाराज भगीरथने भगवान् शङ्करकी आराधना करके गङ्गाको पृथ्वीपर उतारा। वे तीन धाराओंमें प्रकट होकर तीनों लोकोंमें गयीं; इसलिये संसारमें त्रिस्रोताके नामसे विख्यात हुईं। शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु—तीनों देवताओंके संयोगसे पवित्र होकर वे त्रिभुवनको पावन करती हैं। भगवती भागीरथीका आश्रय लेकर मनुष्य सम्पूर्ण धर्मोंका फल प्राप्त करता है। पाठ, यज्ञ, मन्त्र, होम और देवार्चन आदि समस्त शुभ कर्मोंसे भी जीवको वह गति नहीं

मिलती, जो श्रीगङ्गाजीके सेवनसे प्राप्त होती है।* गङ्गाजीके सेवनसे बढ़कर धर्म-साधनका दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिये नारद! तुम भी गङ्गाजीका आश्रय लो। हड्डियोंमें गङ्गाजीके जलका स्पर्श होनेसे राजा सगरके पुत्र अपने पितरों तथा वंशजोंके साथ स्वर्गलोकमें पहुँच गये।

**व्यासजी कहते हैं**—मुनिश्रेष्ठ नारद ब्रह्माजीके मुखसे यह बात सुनकर गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में गये और वहाँ तपस्या करके ब्रह्माजीके समान हो गये। गङ्गाजी सर्वत्र सुलभ होते हुए भी गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गा-सागर-संगम—इन तीन स्थानोंमें दुर्लभ हैं—वहाँ इनकी प्राप्ति बड़े भाग्यसे होती है। वहाँ तीन रात्रि या एक रात निवास करनेसे भी मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है; इसलिये धर्मज्ञ ब्राह्मणो! सब प्रकारसे प्रयत्न करके तुमलोग परम कल्याणमयी भगवती भागीरथीके तीरपर जाओ। विशेषतः इस कलिकालमें सत्त्वगुणसे रहित मनुष्योंको कष्टसे छुड़ाने और मोक्ष प्रदान करनेवाली गङ्गाजी ही हैं। गङ्गाजीके सेवनसे अनन्त पुण्यका उदय होता है।†

**पुलस्त्यजी कहते हैं**—भीष्म! तदनन्तर वे ब्राह्मण व्यासजीकी कल्याणमयी वाणी सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और गङ्गाजीके तटपर तपस्या करके मोक्षमार्गको पा गये। जो मनुष्य इस उत्तम परम पवित्र उपाख्यानका श्रवण करता है, वह समस्त दुःख-राशिसे पार हो जाता है तथा उसे गङ्गाजीमें स्नान करनेका फल मिलता है। एक बार भी इस प्रसङ्गका पाठ करनेपर सम्पूर्ण यज्ञोंका फल मिल जाता है। जो गङ्गाजीके तटपर ही दान, जप, ध्यान, स्तोत्र, मन्त्र और देवार्चन आदि कर्म कराता है, उसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है।

★

## गणेशजीकी महिमा और उनकी स्तुति एवं पूजाका फल

**पुलस्त्यजी कहते हैं**—भीष्म! इसके बाद एक दिन व्यासजीके शिष्य महामुनि संजयने अपने गुरुदेवको प्रणाम करके प्रश्न किया।

**संजयने पूछा**—गुरुदेव! आप मुझे देवताओंके पूजनका सुनिश्चित क्रम बतलाइये। प्रतिदिनकी पूजामें सबसे पहले किसका पूजन करना चाहिये?

**व्यासजी बोले**—संजय! विघ्नोंको दूर करनेके लिये सर्वप्रथम गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। पार्वतीदेवीने पूर्वकालमें भगवान् शङ्करजीके संयोगसे स्कन्द (कार्तिकेय) और गणेश नामके दो पुत्रोंको जन्म दिया। उन दोनोंको देखकर देवताओंको पार्वतीजीपर बड़ी श्रद्धा हुई और उन्होंने अमृतसे तैयार किया हुआ एक दिव्य मोदक (लड्डू) पार्वतीके हाथमें दिया। मोदक देखकर दोनों बालक मातासे माँगने लगे। तब पार्वतीदेवी विस्मित होकर पुत्रोंसे बोलीं—'मैं पहले इसके गुणोंका वर्णन करती हूँ, तुम दोनों सावधान होकर सुनो। इस मोदकके सूँघनेमात्रसे अमरत्व प्राप्त होता है; जो इसे सूँघता या खाता है, वह सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञानके तत्त्वको जाननेवाला और सर्वज्ञ होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पुत्रो! तुममेंसे जो धर्माचरणके द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करके आयेगा, उसीको मैं यह मोदक दूँगी। तुम्हारे पिताकी भी यही सम्मति है।'

माताके मुखसे ऐसी बात सुनकर परम चतुर स्कन्द

---

*पाठयज्ञपरैः सर्वैर्मन्त्रहोमसुरार्चनैः। सा गतिर्न भवेज्जन्तोर्गङ्गासंसेवया च या॥ (६०। ११६)

† विशेषात्कलिकाले च गङ्गा मोक्षप्रदा नृणाम्। कृच्छ्रश्च क्षीणसत्त्वानामनन्तः पुण्यसम्भवः॥ (६०। १२३)

मयूरपर आरूढ़ हो तुरंत ही त्रिलोकीके तीर्थोंकी यात्राके लिये चल दिये। उन्होंने मुहूर्तभरमें सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया। इधर लम्बोदरधारी गणेशजी स्कन्दसे भी बढ़कर बुद्धिमान् निकले। वे माता-पिताकी परिक्रमा करके बड़ी प्रसन्नताके साथ पिताजीके सम्मुख खड़े हो गये। फिर स्कन्द भी आकर पिताके सामने खड़े हुए और बोले, 'मुझे मोदक दीजिये।' तब पार्वतीजीने दोनों पुत्रोंकी ओर देखकर कहा—'समस्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, सम्पूर्ण देवताओंको किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब प्रकारके व्रत, मन्त्र, योग और संयमका पालन—ये सभी साधन माता-पिताके पूजनके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकते। इसलिये यह गणेश सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गणोंसे भी बढ़कर है। अतः देवताओंका बनाया हुआ यह मोदक मैं गणेशको ही अर्पण करती हूँ। माता-पिताकी भक्तिके कारण ही इसकी प्रत्येक यज्ञमें सबसे पहले पूजा होगी।'

**महादेवजी बोले**—इस गणेशके ही अग्रपूजनसे सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हों।

**व्यासजी कहते हैं**—अतः द्विजको उचित है कि वह सब यज्ञोंमें पहले गणेशजीका ही पूजन करे। ऐसा करनेसे उन यज्ञोंका फल कोटि-कोटि गुना अधिक होगा। सम्पूर्ण देवी-देवताओंका कथन भी यही है। देवाधिदेवी पार्वतीने सर्वगुणदायक पवित्र मोदक गणेशजीको ही दिया तथा बड़ी प्रसन्नताके साथ सम्पूर्ण देवताओंके सामने ही उन्हें समस्त गणोंका अधिपति बनाया। इसलिये विस्तृत यज्ञों, स्तोत्रपाठों तथा नित्यपूजनमें भी पहले गणेशजीकी पूजा करके ही मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। चतुर्थीको दिनभर उपवास करके श्रीगणेशजीका पूजन करे और रातमें अन्न ग्रहण करे। गणेशजीकी स्तुति इस प्रकार करनी चाहिये—'श्रीगणेशजी! आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्ति करनेवाले हैं। उमाको आनन्द प्रदान करनेवाले परम बुद्धिमान् प्रभो! भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये। आप भगवान् शङ्करको आनन्दित करनेवाले हैं। अपना ध्यान करनेवालोंको ज्ञान और विज्ञान प्रदान करते हैं। विघ्नराज! आप सम्पूर्ण दैत्योंके एकमात्र संहारक हैं, आपको नमस्कार है। आप सबको प्रसन्नता और लक्ष्मी देनेवाले हैं, सम्पूर्ण यज्ञोंके एकमात्र रक्षक तथा सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। गणपते! मैं प्रेमपूर्वक आपको प्रणाम करता हूँ।'* जो मनुष्य उपर्युक्त भावके मन्त्रोंसे गणेशजीका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अब मैं गणेशजीके बारह नामोंका कल्याणमय स्तोत्र सुनाता हूँ। उनके बारह नाम ये हैं—गणपति, विघ्नराज, लम्बतुण्ड, गजानन, द्वैमातुर, हेरम्ब, एकदन्त, गणाधिप, विनायक, चारुकर्ण, पशुपाल और भवात्मज। जो प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, सम्पूर्ण विश्व उसके वशमें हो जाता है तथा उसे कभी विघ्नका सामना नहीं करना पड़ता।†

उपनयन, विवाह आदि सम्पूर्ण माङ्गलिक कार्योंमें जो श्रीगणेशजीका पूजन करता है, वह सबको अपने वशमें कर लेता है और उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञके कलशोंमें '**गणानां त्वा—**' इस मन्त्रसे श्रीगणेशजीका आवाहन करके उनकी पूजा

---

* गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशान्तिद। उमानन्दप्रद प्राज्ञ त्राहि मां भवसागरात्॥
हरानन्दकर ध्यानज्ञानविज्ञानद प्रभो। विघ्नराज नमस्तुभ्यं सर्वदैत्यैकसूदन॥
सर्वप्रीतिप्रद श्रीद सर्वयज्ञैकरक्षक। सर्वाभीष्टप्रद प्रीत्या नमामि त्वां गणाधिप॥
(६१। २६—२८)

† गणपतिर्विघ्नराजो लम्बतुण्डो गजाननः। द्वैमातुरश्च हेरम्ब एकदन्तो गणाधिपः॥
विनायकश्चारुकर्णः पशुपालो भवात्मजः। द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥
विश्वं तस्य भवेद्वश्यं न च विघ्नं भवेत् क्वचित्।
(६१। ३१—३३)

करता है, उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा वह स्वर्ग और मोक्षको भी पा लेता है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह मिट्टीकी दीवारोंमें, प्रतिमा अथवा चित्रके रूपमें पत्थरपर, दरवाजेकी लकड़ीमें तथा पात्रोंमें श्रीगणेशजीकी मूर्ति अङ्कित करा ले। इनके सिवा दूसरे-दूसरे स्थानमें भी, जहाँ हमेशा दृष्टि पड़ सके, श्रीगणेशजीकी स्थापना करके अपनी शक्तिके अनुसार उनका पूजन करे। जो ऐसा करता है उसके समस्त प्रिय कार्य सिद्ध होते हैं। उसके सामने कोई विघ्न नहीं आता तथा वह तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लेता है। सम्पूर्ण देवता अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये जिनका पूजन करते हैं, समस्त विघ्नोंका उच्छेद करनेवाले उन श्रीगणेशजीको नमस्कार है।* जो भगवान् श्रीविष्णुको प्रिय लगनेवाले पुष्पों तथा अन्यान्य सुगन्धित फूलोंसे, फल, मूल, मोदक और सामयिक सामग्रियोंसे, दही और दूधसे, प्रिय लगनेवाले बाजोंसे तथा धूप और दीप आदिके द्वारा गणेशजीकी पूजा करता है, उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

★

## संजय-व्यास-संवाद—मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुए दैत्य और देवताओंके लक्षण

**संजयने पूछा**—ब्रह्मन्! सात्त्विक पुरुष मनुष्योंमें असुर आदिके लक्षणोंको कैसे जान सकते हैं? नाथ! मेरे इस संशयको दूर कीजिये।

**व्यासजी बोले**—द्विजों तथा अन्य जातियोंमें अपने पूर्वकृत पापोंके अनुरूप असुर, राक्षस और प्रेत भी जन्म ग्रहण करते हैं; किन्तु वे अपना स्वभाव नहीं छोड़ते। मनुष्योंमें जो असुर जन्मते हैं, वे सदा ही लड़ाई-झगड़ा करनेको उत्सुक रहते हैं। जो मायावी, दुराचारी और क्रूर हों, उन्हें इस पृथ्वीपर राक्षस समझना चाहिये।

इसके विपरीत एक भी बुद्धिमान् एवं सुयोग्य पुत्र हो तो उसके द्वारा समूचे कुलकी रक्षा होती है। एक भी वैष्णव पुत्र अपने कुलकी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो पुण्यतीर्थों और मुक्तिक्षेत्रमें ज्ञानपूर्वक मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे संसार-सागरसे तर जाते हैं। और जो ब्रह्मज्ञानी होते हैं, वे स्वयं तो तरते ही हैं, दूसरोंको भी तार देते हैं। एक पतिव्रता स्त्री अपने कुलकी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है। इसी प्रकार द्विज और देवताओंके पूजनमें तत्पर रहनेवाला धर्मात्मा जितेन्द्रिय पुरुष भी अपने कुलका उद्धार करता है। कलियुगके अन्तमें जब शहर और गाँवोंमें धर्मका नाश हो जाता है, तब एक ही धर्मात्मा पुरुष समस्त पुर, ग्राम, जनसमुदाय और कुलकी रक्षा करता है।

जो मनुष्य अपवित्र एवं दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंके भक्षणमें आनन्द मानता है, बराबर पाप करता है और रातमें घूम-घूमकर चोरी करता रहता है, उसे विद्वान् पुरुषोंको वञ्चक समझना चाहिये। जो सम्पूर्ण कर्तव्य कार्योंसे अनभिज्ञ तथा सब प्रकारके कर्मोंसे अपरिचित है, जिसे समयोचित सदाचारका ज्ञान नहीं है, वह मूर्ख वास्तवमें पशु ही है। जो हिंसक, सजातीय मनुष्योंको उद्वेजित करनेवाला, कलह-प्रिय, कायर और उच्छिष्ट भोजनका प्रेमी है, वह मनुष्य कुत्ता कहा गया है। जो स्वभावसे ही चञ्चल, भोजनके लिये सदा लालायित रहनेवाला, कूद-कूदकर चलनेवाला और जंगलमें रहनेका प्रेमी है, उस मनुष्यको इस पृथ्वीपर बंदर समझना चाहिये। जो वाणी और बुद्धिद्वारा अपने कुटुम्बियों तथा दूसरे लोगोंकी भी चुगली खाता और सबके लिये उद्वेगजनक होता है, वह पुरुष सर्पके समान माना गया है। जो बलवान्, आक्रमण करनेवाला, नितान्त निर्लज्ज, दुर्गन्धयुक्त मांसका प्रेमी और भोगासक्त होता है, वह मनुष्योंमें सिंह कहा गया है। उसकी आवाज सुनते ही दूसरे भेड़िये आदिकी श्रेणीमें गिने

* अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरैरपि। सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः॥ (६३। १०)

जानेवाले लोग भयभीत और दुःखी हो जाते हैं। जिनकी दृष्टि दूरतक नहीं जाती, ऐसे लोग हाथी माने जाते हैं। इसी क्रमसे मनुष्योंमें अन्य पशुओंका विवेक कर लेना चाहिये।

अब हम नररूपमें स्थित देवताओंका लक्षण बतलाते हैं। जो द्विज, देवता, अतिथि, गुरु, साधु और तपस्वियोंके पूजनमें संलग्न रहनेवाला, नित्य तपस्यापरायण, धर्मशास्त्र एवं नीतिमें स्थित, क्षमाशील, क्रोधजयी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, लोभहीन, प्रिय बोलनेवाला, शान्त धर्मशास्त्रप्रेमी, दयालु, लोकप्रिय, मिष्टभाषी, वाणीपर अधिकार रखनेवाला, सब कार्योंमें दक्ष, गुणवान्, महाबली, साक्षर, विद्वान्, आत्मविद्या आदिके लिये उपयोगी कार्योंमें संलग्न, घी और गायके दूध-दही आदिमें तथा निरामिष भोजनमें रुचि रखनेवाला, अतिथिको दान देने और पार्वण आदि कर्मोंमें प्रवृत्त रहनेवाला है, जिसका समय स्नान-दान आदि शुभ कर्म, व्रत, यज्ञ, देवपूजन तथा स्वाध्याय आदिमें ही व्यतीत होता है, कोई भी दिन व्यर्थ नहीं जाने पाता, वही मनुष्य देवता है। यही मनुष्योंका सनातन सदाचार है। श्रेष्ठ मुनियोंने मानवोंका आचरण देवताओंके ही समान बतलाया है। अन्तर इतना ही है कि देवता सत्त्वगुणमें बढ़े-चढ़े होते हैं [इसलिये निर्भय होते हैं,] और मनुष्योंमें भय अधिक होता है। देवता सदा गम्भीर रहते हैं और मनुष्योंका स्वभाव सर्वदा मृदु होता है। इस प्रकार पुण्यविशेषके तारतम्यसे सामान्यतः सभी जातियोंमें विभिन्न स्वभावके मनुष्योंका जन्म होता है; उनके प्रिय-अप्रिय पदार्थोंको जानकर पुण्य-पाप तथा गुण-अवगुणका निश्चय करना चाहिये।

मनुष्योंमें यदि पति-पत्नीके अंदर जन्मगत संस्कारोंका भेद हो तो उन्हें तनिक भी सुख नहीं मिलता। सालोक्य आदि मुक्तिकी स्थितिमें रहना पड़े अथवा नरकमें, सजातीय संस्कारवालोंमें ही परस्पर प्रेम होता है। शुभ कार्यमें संलग्न रहनेवाले पुण्यात्मा मनुष्योंको अत्यन्त पुण्यके कारण दीर्घायुकी प्राप्ति होती है तथा जो दैत्य आदिकी श्रेणीमें गिने जानेवाले पापात्मा मनुष्य हैं, उनकी मृत्यु जल्दी होती है। सत्ययुगमें देवजातिके मनुष्य ही इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे। दैत्य अथवा अन्य जातिके नहीं। त्रेतामें एक चौथाई, द्वापरमें आधा तथा कलियुगकी सन्ध्यामें समूचा भूमण्डल दैत्य आदिसे व्याप्त हो जाता है। देवता और असुर जातिके मनुष्योंका समान संख्यामें जन्म होनेके कारण ही महाभारतका युद्ध छिड़नेवाला है। दुर्योधनके योद्धा और सेना आदि जितने भी सहायक हैं, वे दैत्य आदि ही हैं। कर्ण आदि वीर सूर्य आदिके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। गङ्गानन्दन भीष्म वसुओंमें प्रधान हैं। आचार्य द्रोण देवमुनि बृहस्पतिके अंशसे प्रकट हुए हैं। नन्द-नन्दन श्रीकृष्णके रूपमें साक्षात् भगवान् श्रीविष्णु हैं। विदुर साक्षात् धर्म हैं। गान्धारी, द्रौपदी और कुन्ती—इनके रूपमें देवियाँ ही धरातलपर अवतीर्ण हुई हैं।

जो मनुष्य जितेन्द्रिय, दुर्गुणोंसे मुक्त तथा नीतिशास्त्रके तत्त्वको जाननेवाला है और ऐसे ही नाना प्रकारके उत्तम गुणोंसे सन्तुष्ट दिखायी देता है, वह देवस्वरूप है। स्वर्गका निवासी हो या मनुष्यलोकका—जो पुराण और तन्त्रमें बताये हुए पुण्यकर्मोंका स्वयं आचरण करता है, वही इस पृथ्वीका उद्धार करनेमें समर्थ है। जो शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेशका उपासक है, वह समस्त पितरोंको तारकर इस पृथ्वीका उद्धार करनेमें समर्थ है। विशेषतः जो वैष्णवको देखकर प्रसन्न होता और उसकी पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो इस भूतलका उद्धार कर सकता है। जो ब्राह्मण यजन-याजन आदि छः कर्मोंमें संलग्न, सब प्रकारके यज्ञोंमें प्रवृत्त रहनेवाला और सदा धार्मिक उपाख्यान सुनानेका प्रेमी है, वह भी इस पृथ्वीका उद्धार करनेमें समर्थ है।

जो लोग विश्वासघाती, कृतघ्न, व्रतका उल्लङ्घन करनेवाले तथा ब्राह्मण और देवताओंके द्वेषी हैं, वे मनुष्य इस पृथ्वीका नाश कर डालते हैं। जो माता-पिता, स्त्री, गुरुजन और बालकोंका पोषण नहीं करते, देवता, ब्राह्मण और राजाओंका धन हर लेते हैं तथा जो मोक्षशास्त्रमें श्रद्धा नहीं रखते, वे मनुष्य भी इस पृथ्वीका

नाश करते हैं। जो पापी मदिरा पीने और जुआ खेलनेमें आसक्त रहते और पाखण्डियों तथा पतितोंसे वार्तालाप करते हैं, जो महापातकी और अतिपातकी हैं, जिनके द्वारा बहुत-से जीव-जन्तु मारे जाते हैं, वे लोग इस भूतलका विनाश करनेवाले हैं। जो सत्कर्मसे रहित, सदा दूसरोंको उद्विग्न करनेवाले और निर्भय हैं, स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रोंमें बताये हुए शुभकर्मोंका नाम सुनकर जिनके हृदयमें उद्वेग होता है, जो अपनी उत्तम जीविका छोड़कर नीच वृत्तिका आश्रय लेते हैं तथा द्वेषवश गुरुजनोंकी निन्दामें प्रवृत्त होते हैं, वे मनुष्य इस भूलोकका नाश कर डालते हैं। जो दाताको दानसे रोकते और पापकर्मकी ओर प्रेरित करते हैं तथा जो दीनों और अनाथोंको पीड़ा पहुँचाते हैं, वे लोग इस भूतलका सत्यानाश करते हैं। ये तथा और भी बहुत-से पापी मनुष्य हैं, जो दूसरे लोगोंको पापोंमें ढकेलकर इस पृथ्वीका सर्वनाश करते हैं।

जो मानव इस प्रसङ्गको सुनता है, उसे इस भूतलपर दुर्गति, दुःख, दुर्भाग्य और दीनताका सामना नहीं करना पड़ता। उसका दैत्य आदिके कुलमें जन्म नहीं होता तथा वह स्वर्गलोकमें शाश्वत सुखका उपभोग करता है।

★

## भगवान् सूर्यका तथा संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य

**वैशम्पायनजीने पूछा**—विप्रवर! आकाशमें प्रतिदिन जिसका उदय होता है, यह कौन है? इसका क्या प्रभाव है? तथा इस किरणोंके स्वामीका प्रादुर्भाव कहाँसे हुआ है? मैं देखता हूँ—देवता, बड़े-बड़े मुनि, सिद्ध, चारण, दैत्य, राक्षस तथा ब्राह्मण आदि समस्त मानव इसकी सदा ही आराधना किया करते हैं।

**व्यासजी बोले**—वैशम्पायन! यह ब्रह्मके स्वरूपसे प्रकट हुआ ब्रह्मका ही उत्कृष्ट तेज है। इसे साक्षात् ब्रह्ममय समझो। यह धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। निर्मल किरणोंसे सुशोभित यह तेजका पुञ्ज पहले अत्यन्त प्रचण्ड और दुःसह था। इसे देखकर इसकी प्रखर रश्मियोंसे पीड़ित हो सब लोग इधर-उधर भागकर छिपने लगे। चारों ओरके समुद्र, समस्त बड़ी-बड़ी नदियाँ और नद आदि सूखने लगे। उनमें रहनेवाले प्राणी मृत्युके ग्रास बनने लगे। मानव-समुदाय भी शोकसे आतुर हो उठा। यह देख इन्द्र आदि देवता ब्रह्माजीके पास गये और उनसे यह सारा हाल कह सुनाया। तब ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवगण! यह तेज आदि ब्रह्मके स्वरूपसे जलमें प्रकट हुआ है। यह तेजोमय पुरुष उस ब्रह्मके ही समान है। इसमें और आदि ब्रह्ममें तुम अन्तर न समझना। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त चराचर प्राणियोंसहित समूची त्रिलोकीमें इसीकी सत्ता है। ये सूर्यदेव सत्त्वमय हैं। इनके द्वारा चराचर जगत्का पालन होता है। देवता, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आदि जितने भी प्राणी हैं—सबकी रक्षा सूर्यसे ही होती है। इन सूर्य देवताके प्रभावका हम पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकते। इन्होंने ही लोकोंका उत्पादन और पालन किया है। सबके रक्षक होनेके कारण इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। पौ फटनेपर इनका दर्शन करनेसे राशि-राशि पाप विलीन हो जाते हैं। द्विज आदि सभी मनुष्य इन सूर्यदेवकी आराधना करके मोक्ष पा लेते हैं। सन्ध्योपासनके समय ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण अपनी भुजाएँ ऊपर उठाये इन्हीं सूर्यदेवका उपस्थान करते हैं और उसके फलस्वरूप समस्त देवताओंद्वारा पूजित होते हैं। सूर्यदेवके ही मण्डलमें रहनेवाली सन्ध्यारूपिणी देवीकी उपासना करके सम्पूर्ण द्विज स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस भूतलपर जो पतित और जूठन खानेवाले मनुष्य हैं, वे भी भगवान् सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे पवित्र हो जाते हैं। सन्ध्याकालमें सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे द्विज सारे पापोंसे शुद्ध

हो जाता हैं।* जो मनुष्य चाण्डाल, गोघाती (कसाई), पतित, कोढ़ी, महापातकी और उपपातकीके दीख जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शन करते हैं, वे भारी-से-भारी पापसे मुक्त हो पवित्र हो जाते हैं। सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे मनुष्यको सब रोगोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो सूर्यकी उपासना करते हैं, वे इहलोक और परलोकमें भी अंधे, दरिद्र, दुःखी और शोकग्रस्त नहीं होते। श्रीविष्णु और शिव आदि देवताओंके दर्शन सब लोगोंको नहीं होने, ध्यानमें ही उनके स्वरूपका साक्षात्कार किया जाता है; किन्तु भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता माने गये हैं।

**देवता बोले**—ब्रह्मन्! सूर्य देवताको प्रसन्न करनेके लिये आराधना, उपासना अथवा पूजा तो दूर रहे, इनका दर्शन ही प्रलयकालकी आगके समान है। भूतलके मनुष्य आदि सम्पूर्ण प्राणी इनके तेजके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हो गये। समुद्र आदि जलाशय नष्ट हो गये। हमलोगोंसे भी इनका तेज सहन नहीं होता; फिर दूसरे लोग कैसे सह सकते हैं। इसलिये आप ही ऐसी कृपा करें, जिससे हमलोग भगवान् सूर्यका पूजन कर सकें। सब मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी आराधना कर सकें—इसके लिये आप ही कोई उपाय करें।

**व्यासजी कहते हैं**—देवताओंके वचन सुनकर ब्रह्माजी ग्रहोंके स्वामी भगवान् सूर्यके पास गये और सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे।

**ब्रह्माजी बोले**—देव! तुम सम्पूर्ण संसारके नेत्रस्वरूप और निरामय हो। तुम साक्षात् ब्रह्मरूप हो। तुम्हारी ओर देखना कठिन है। तुम प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हो। सम्पूर्ण देवताओंके भीतर तुम्हारी स्थिति है। तुम्हारे श्रीविग्रहमें वायुके सखा अग्नि निरन्तर विराजमान रहते हैं। तुम्हींसे अन्न आदिका पाचन तथा जीवनकी रक्षा होती है। देव! तुम्हींसे उत्पत्ति और प्रलय होते हैं। एकमात्र तुम्हीं सम्पूर्ण भुवनोंके स्वामी हो। तुम्हारे बिना समस्त संसारका जीवन एक दिन भी नहीं रह सकता। तुम्हीं सम्पूर्ण लोकोंके प्रभु तथा चराचर प्राणियोंके रक्षक, पिता और माता हो। तुम्हारी ही कृपासे यह जगत् टिका हुआ है। भगवन्! सम्पूर्ण देवताओंमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई नहीं है। शरीरके भीतर, बाहर तथा समस्त विश्वमें—सर्वत्र तुम्हारी सत्ता है। तुमने ही इस जगत्को धारण कर रखा है। तुम्हीं रूप और गन्ध आदि उत्पन्न करनेवाले हो। रसोंमें जो स्वाद है, वह तुम्हींसे आया है। इस प्रकार तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर और सबकी रक्षा करनेवाले सूर्य हो। प्रभो! तीर्थों, पुण्यक्षेत्रों, यज्ञों और जगत्के एकमात्र कारण तुम्हीं हो। तुम परम पवित्र, सबके साक्षी और गुणोंके धाम हो। सर्वज्ञ, सबके कर्ता, संहारक, रक्षक, अन्धकार, कीचड़ और रोगोंका नाश करनेवाले तथा दरिद्रताके दुःखोंका निवारण करनेवाले भी तुम्हीं हो। इस लोक तथा परलोकमें सबसे श्रेष्ठ बन्धु एवं सब कुछ जानने और देखनेवाले तुम्हीं हो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो सब लोकोंका उपकारक हो।

**आदित्यने कहा**—महाप्राज्ञ पितामह! आप विश्वके स्वामी तथा स्रष्टा हैं, शीघ्र अपना मनोरथ बताइये। मैं उसे पूर्ण करूँगा।

**ब्रह्माजी बोले**—सुरेश्वर! तुम्हारी किरणें अत्यन्त प्रखर हैं। लोगोंके लिये वे अत्यन्त दुःसह हो गयी हैं। अतः जिस प्रकार उनमें कुछ मृदुता आ सके, वही उपाय करो।

**आदित्यने कहा**—प्रभो! वास्तवमें मेरी कोटि-कोटि किरणें संसारका विनाश करनेवाली ही हैं। अतः आप किसी युक्तिद्वारा इन्हें खरादकर कम कर दें।

तब ब्रह्माजीने सूर्यके कहनेसे विश्वकर्माको बुलाया और वज्रकी सान बनवाकर उसीके ऊपर प्रलयकालके समान तेजस्वी सूर्यको आरोपित करके उनके प्रचण्ड तेजको छाँट दिया। उस छँटे हुए तेजसे ही भगवान्

* सन्ध्योपासनमात्रेण कल्मषात् पूततां व्रजेत्। (७५। १६)

श्रीविष्णुका सुदर्शनचक्र बनाया गया। अमोघ यमदण्ड, शङ्करजीका त्रिशूल, कालका खड्ग, कार्तिकेयको आनन्द प्रदान करनेवाली शक्ति तथा भगवती दुर्गाके विचित्र शूलका भी उसी तेजसे निर्माण हुआ। ब्रह्माजीकी आज्ञासे विश्वकर्माने उन सब अस्त्रोंको फुर्तीसे तैयार किया था। सूर्यदेवकी एक हजार किरणें शेष रह गयीं, बाकी सब छाँट दी गयीं। ब्रह्माजीके बताये हुए उपायके अनुसार ही ऐसा किया गया।

कश्यपमुनिके अंश और अदितिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्य आदित्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। भगवान् सूर्य विश्वकी अन्तिम सीमातक विचरते और मेरु गिरिके शिखरोंपर भ्रमण करते रहते हैं। ये दिन-रात इस पृथ्वीसे लाख योजन ऊपर रहते हैं। विधाताकी प्रेरणासे चन्द्रमा आदि ग्रह भी वहीं विचरण करते हैं। सूर्य बारह स्वरूप धारण करके बारह महीनोंमें बारह राशियोंमें संक्रमण करते रहते हैं। उनके संक्रमणसे ही संक्रान्ति होती है, जिसको प्रायः सभी लोग जानते हैं।

मुने! संक्रान्तियोंमें पुण्यकर्म करनेसे लोगोंको जो फल मिलता है, वह सब हम बतलाते हैं। धन, मिथुन, मीन और कन्या राशिकी संक्रान्तिको षडशीति कहते हैं तथा वृष, वृश्चिक, कुम्भ और सिंह राशिपर जो सूर्यकी संक्रान्ति होती है, उसका नाम विष्णुपदी है। षडशीति नामकी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका फल छियासी हजारगुना, विष्णुपदीमें लाखगुना और उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन कोटि-कोटिगुना अधिक होता है। दोनों अयनोंके दिन जो कर्म किया जाता है, वह अक्षय होता है। मकरसंक्रान्तिमें सूर्योदयके पहले स्नान करना चाहिये। इससे दस हजार गोदानका फल प्राप्त होता है। उस समय किया हुआ तर्पण, दान और देवपूजन अक्षय होता है। विष्णुपदी नामक संक्रान्तिमें किये हुए दानको भी अक्षय बताया गया है। दाताको प्रत्येक जन्ममें उत्तम निधिकी प्राप्ति होती है। शीतकालमें रूईदार वस्त्र दान करनेसे शरीरमें कभी दुःख नहीं होता। तुला-दान और शय्या-दान दोनोंका ही फल अक्षय है। माघमासके कृष्णपक्षकी अमावास्याको सूर्योदयके पहले जो तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करता है, वह स्वर्गमें अक्षय सुख भोगता है। जो अमावास्याके दिन सुवर्णजटित सींग और मणिके समान कान्तिवाली शुभलक्षणा गौको, उसके खुरोंमें चाँदी मँढ़ाकर काँसेके बने हुए दुग्धपात्रसहित श्रेष्ठ ब्राह्मणके लिये दान करता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है। जो उक्त तिथिको तिलकी गौ बनाकर उसे सब सामग्रियोंसहित दान करता है, वह सात जन्मके पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है। ब्राह्मणको भोजनके योग्य अन्न देनेसे भी अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो उत्तम ब्राह्मणको अनाज, वस्त्र घर आदि दान करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती। माघमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको मन्वन्तर-तिथि कहते हैं; उस दिन जो कुछ दान किया जाता है, वह सब अक्षय बताया गया है। अतः दान और सत्पुरुषोंका पूजन—ये परलोकमें अनन्त फल देनेवाले हैं।

★

## भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल—भद्रेश्वरकी कथा

**व्यासजी कहते हैं**—कैलासके रमणीय शिखरपर भगवान् महेश्वर सुखपूर्वक बैठे थे। इसी समय स्कन्दने उनके पास जा पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'नाथ! मैं आपसे रविवार आदिका यथार्थ फल सुनना चाहता हूँ।'

**महादेवजीने कहा**—बेटा! रविवारके दिन मनुष्य व्रत रहकर सूर्यको लाल फूलोंसे अर्घ्य दे और रातको हविष्यान्न भोजन करे। ऐसा करनेसे वह कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। रविवारका व्रत परम पवित्र और हितकर है। वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, पुण्यप्रद, ऐश्वर्यदायक, रोगनाशक और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यदि रविवारके दिन सूर्यकी संक्रान्ति तथा शुक्लपक्षकी सप्तमी हो तो उस दिन किया हुआ व्रत, पूजा और जप—सब अक्षय होता है।

शुक्लपक्षके रविवारको ग्रहपति सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। हाथमें फूल ले, लाल कमलपर विराजमान, सुन्दर ग्रीवासे सुशोभित, रक्तवस्त्रधारी और लाल रंगके आभूषणोंसे विभूषित भगवान् सूर्यका ध्यान करे और फूलोंको सूँघकर ईशान कोणकी ओर फेंक दे। इसके बाद **'आदित्याय विद्महे भास्कराय धीमहि तन्नो भानुः प्रचोदयात्'** इस सूर्य-गायत्रीका जप करे। तदनन्तर गुरुके उपदेशके अनुसार विधिपूर्वक पूजा करे। भक्तिके साथ पुष्प और केले आदिके सुन्दर फल अर्पण करके जल चढ़ाना चाहिये। जलके बाद चन्दन, चन्दनके बाद धूप, धूपके बाद दीप, दीपके पश्चात् नैवेद्य तथा उसके बाद जल निवेदन करना चाहिये। तत्पश्चात् जप, स्तुति, मुद्रा और नमस्कार करना उचित है। पहली मुद्राका नाम अञ्जलि और दूसरीका नाम धेनु है। इस प्रकार जो सूर्यका पूजन करता है, वह उन्हींका सायुज्य प्राप्त करता है।

भगवान् सूर्य एक होते हुए भी कालभेदसे नाना रूप धारण करके प्रत्येक मासमें तपते रहते हैं। एक ही सूर्य बारह रूपोंमें प्रकट होते हैं। मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें सनातन विष्णु, माघमें वरुण, फाल्गुनमें सूर्य, चैत्रमासमें भानु, वैशाखमें तापन, ज्येष्ठमें इन्द्र, आषाढ़में रवि, श्रावणमें गभस्ति, भादोंमें यम, आश्विनमें हिरण्यरेता और कार्तिकमें दिवाकर तपते हैं। इस प्रकार बारह महीनोंमें भगवान् सूर्य बारह नामोंसे पुकारे जाते हैं। इनका रूप अत्यन्त विशाल, महान् तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान देदीप्यमान है। जो इस प्रसङ्गका नित्य पाठ करता है, उसके शरीरमें पाप नहीं रहता। उसे रोग, दरिद्रता और अपमानका कष्ट भी कभी नहीं उठाना पड़ता। वह क्रमशः यश, राज्य, सुख तथा अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है।

अब मैं सबको प्रसन्नता प्रदान करनेवाले सूर्यके उत्तम महामन्त्रका वर्णन करूँगा। उसका भाव इस प्रकार है—'सहस्र भुजाओं (किरणों) से सुशोभित भगवान् आदित्यको नमस्कार है। हाथमें कमल धारण करनेवाले वरुणदेवको बारंबार नमस्कार है। अन्धकारका विनाश करनेवाले श्रीसूर्यदेवको अनेक बार नमस्कार है। रश्मिमयी सहस्रों जिह्वाएँ धारण करनेवाले भानुको नमस्कार है। भगवन्! तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं विष्णु और तुम्हीं रुद्र हो; तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर अग्नि और वायुरूपसे विराजमान हो; तुम्हें बारंबार प्रणाम है। तुम्हारी सर्वत्र गति और सब भूतोंमें स्थिति है, तुम्हारे बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। तुम इस चराचर जगत्में समस्त देहधारियोंके भीतर स्थित हो।'* इस मन्त्रका जप करके मनुष्य अपने सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थों तथा स्वर्ग आदिके भोगको प्राप्त करता है। आदित्य, भास्कर, सूर्य, अर्क, भानु, दिवाकर, सुवर्णरेता, मित्र, पूषा, त्वष्टा, स्वयम्भू और तिमिराश—ये सूर्यके बारह नाम बताये गये हैं। जो मनुष्य पवित्र होकर सूर्यके इन बारह नामोंका पाठ करता है, वह सब पापों और रोगोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होता है।

षडानन! अब मैं महात्मा भास्करके जो दूसरे-दूसरे प्रधान नाम हैं, उनका वर्णन करूँगा। तपन, तापन, कर्ता, हर्ता, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, व्योमाधिप, दिवाकर, अग्निगर्भ, महाविप्र, खग, सप्ताश्ववाहन, पद्महस्त, तमोभेदी, ऋग्वेद, यजुःसामग, कालप्रिय, पुण्डरीक, मूलस्थान और भावित। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन नामोंका सदा स्मरण करता है, उसे रोगका भय कैसे हो सकता है। कार्तिकेय! तुम यत्नपूर्वक सुनो। सूर्यका नाम-स्मरण सब पापोंको हरनेवाला और शुभ है। महामते! आदित्यकी महिमाके विषयमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिये। **'ॐ इन्द्राय नमः स्वाहा'**, **'ॐ विष्णवे नमः'**—इन मन्त्रोंका जप, होम और सन्ध्योपासन करना चाहिये। ये मन्त्र सब प्रकारसे शान्ति

---

* ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमो नमः। नमस्ते पद्महस्ताय वरुणाय नमो नमः॥
नमस्तिमिरनाशाय श्रीसूर्याय नमो नमः। नमः सहस्रजिह्वाय भानवे च नमो नमः॥
त्वं च ब्रह्मा त्वं च विष्णू रुद्रस्त्वं च नमो नमः। त्वमग्निस्सर्वभूतेषु वायुस्त्वं च नमो नमः॥
सर्वगः सर्वभूतेषु न हि किंचित्त्वया विना। चराचरे जगत्यस्मिन् सर्वदेहे व्यवस्थितः॥ (७६। ३१—३४)

देनेवाले और सम्पूर्ण विघ्नोंके विनाशक हैं। ये सब रोगोंका नाश कर डालते हैं।

अब महात्मा भास्करके मूलमन्त्रका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण कामनाओं एवं प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वह मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः।**' इस मन्त्रसे सदा सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है—यह निश्चित बात है। इसके जपसे रोग नहीं सताते तथा किसी प्रकारके अनिष्टका भय नहीं होता। यह मन्त्र न किसीको देना चाहिये और न किसीसे इसकी चर्चा करनी चाहिये; अपितु प्रयत्नपूर्वक इसका निरन्तर जप करते रहना चाहिये। जो लोग अभक्त, सन्तानहीन, पाखण्डी और लौकिक व्यवहारोंमें आसक्त हों, उनसे तो इस मन्त्रकी कदापि चर्चा नहीं करनी चाहिये। सन्ध्या और होमकर्ममें मूलमन्त्रका जप करना चाहिये। उसके जपसे रोग और क्रूर ग्रहोंका प्रभाव नष्ट हो जाता है। वत्स! दूसरे-दूसरे अनेकों शास्त्रों और बहुतेरे विस्तृत मन्त्रोंकी क्या आवश्यकता है; इस मूलमन्त्रका जप ही सब प्रकारकी शान्ति तथा सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला है। देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो प्रतिदिन एक, दो या तीन समय भगवान् सूर्यके समीप इसका पाठ करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। पुत्रकी कामनावालेको पुत्र, कन्या चाहनेवालेको कन्या, विद्याकी अभिलाषा रखनेवालेको विद्या और धनार्थीको धन मिलता है। जो शुद्ध आचार-विचारसे युक्त हो संयम तथा भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकको जाता है। सूर्य देवताके व्रतके दिन तथा अन्यान्य व्रत, अनुष्ठान, यज्ञ, पुण्यस्थान और तीर्थोंमें जो इसका पाठ करता है, उसे कोटिगुना फल मिलता है।

**व्यासजी कहते हैं**—मध्यदेशमें भद्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक चक्रवर्ती राजा थे। वे बहुत-सी तपस्याओं तथा नाना प्रकारके व्रतोंसे पवित्र हो गये थे। प्रतिदिन देवता, ब्राह्मण, अतिथि और गुरुजनोंका पूजन करते थे। उनका बर्ताव न्यायके अनुकूल होता था। वे स्वभावके सुशील और शास्त्रोंके तात्पर्य तथा विधानके पारगामी विद्वान् थे। सदा सद्भावपूर्वक प्रजाजनोंका पालन करते थे। एक समयकी बात है, उनके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया। वैद्योंने बहुत कुछ उपचार किया; किन्तु उससे कोढ़का चिह्न और भी स्पष्ट दिखायी देने लगा। तब राजाने प्रधान-प्रधान ब्राह्मणों और मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—'विप्रगण! मेरे हाथमें एक-ऐसा पापका चिह्न प्रकट हो गया है, जो लोकमें निन्दित होनेके कारण मेरे लिये दुःसह हो रहा है। अतः मैं किसी महान् पुण्यक्षेत्रमें जाकर अपने शरीरका परित्याग करना चाहता हूँ।'

**ब्राह्मण बोले**—महाराज! आप धर्मशील और बुद्धिमान् हैं। यदि आप अपने राज्यका परित्याग कर देंगे तो यह सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। इसलिये आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। प्रभो! हमलोग इस रोगको दबानेका उपाय जानते हैं; वह यह है कि आप यत्नपूर्वक महान् देवता भगवान् सूर्यकी आराधना कीजिये।

**राजाने पूछा**—विप्रवरो! किस उपायसे मैं भगवान् भास्करको सन्तुष्ट कर सकूँगा?

**ब्राह्मण बोले**—राजन्! आप अपने राज्यमें ही रहकर सूर्यदेवकी उपासना कीजिये; ऐसा करनेसे आप भयङ्कर पापसे मुक्त हो स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर सकेंगे।

यह सुनकर सम्राट्ने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया और सूर्यकी उत्तम आराधना आरम्भ की। वे प्रतिदिन मन्त्रपाठ, नैवेद्य, नाना प्रकारके फल, अर्घ्य, अक्षत, जपापुष्प, मदारके पत्ते, लाल चन्दन, कुंकुम, सिन्दूर, कदली-पत्र तथा उसके मनोहर फल आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा करते थे। राजा गूलरके पात्रमें अर्घ्य सजाकर सदा सूर्य देवताको निवेदन किया करते थे। अर्घ्य देते समय वे मन्त्री और पुरोहितोंके साथ सदा सूर्यके सामने खड़े रहते थे। उनके साथ आचार्य, रानियाँ, अन्तःपुरमें रहनेवाले रक्षक तथा उनकी पत्नियाँ, दासवर्ग तथा अन्य लोग भी रहा करते थे। वे सब लोग प्रतिदिन साथ-ही-साथ अर्घ्य देते थे। सूर्यदेवताके अङ्गभूत जितने व्रत थे, उनका भी उन्होंने एकाग्रचित्त होकर

अनुष्ठान किया। क्रमशः एक वर्ष व्यतीत होनेपर राजाका रोग दूर हो गया। इस प्रकार उस भयङ्कर रोगके नष्ट हो जानेपर राजाने सम्पूर्ण जगत्को अपने वशमें करके सबके द्वारा प्रभातकालमें सूर्यदेवताका पूजन और व्रत कराना आरम्भ किया। सब लोग कभी हविष्यान्न खाकर और कभी निराहार रहकर सूर्यदेवताका पूजन करते थे। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्गोंके द्वारा पूजित होकर भगवान् सूर्य बहुत सन्तुष्ट हुए और कृपापूर्वक राजाके पास आकर बोले— 'राजन्! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वरदानके रूपमें माँग लो। सेवकों और पुरवासियोंसहित तुम सब लोगोंका हित करनेके लिये मैं उपस्थित हूँ।'

**राजाने कहा**—सबको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवन्! यदि आप मुझे अभीष्ट वरदान देना चाहते हैं, तो ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब लोग आपके पास रहकर ही सुखी हों।

**सूर्य बोले**—राजन्! तुम्हारे मन्त्री, पुरोहित, ब्राह्मण, स्त्रियाँ तथा अन्य परिवारके लोग—सभी शुद्ध होकर कल्पपर्यन्त मेरे रमणीय धाममें निवास करें।

**व्यासजी कहते हैं**—यों कहकर संसारको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर राजा भद्रेश्वर अपने पुरवासियोंसहित दिव्यलोकमें आनन्दका अनुभव करने लगे। वहाँ जो कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे भी अपने पुत्र आदिके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गको सिधारे। इसी प्रकार राजा, ब्राह्मण, कठोर व्रतोंका पालन करनेवाले मुनि तथा क्षत्रिय आदि अन्य वर्ण सूर्यदेवताके धाममें चले गये। जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक इस प्रसङ्गका पाठ करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है तथा वह रुद्रकी भाँति इस पृथ्वीपर पूजित होता है। जो मानव संयमपूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। इस अत्यन्त गोपनीय रहस्यका भगवान् सूर्यने यमराजको उपदेश दिया था। भूमण्डलपर तो व्यासके द्वारा ही इसका प्रचार हुआ है।

**ब्रह्माजी कहते हैं**—नारद! इस तरह नाना प्रकारके धर्मोंका निर्णय सुनाकर भगवान् व्यास शम्या-प्राशमें चले गये। तुम भी इस तत्त्वको श्रद्धापूर्वक जानकर सुखसे विचरो और समयानुसार भगवान् श्रीविष्णुके सुयशका सानन्द गान करते रहो। साथ ही जगत्को धर्मका उपदेश देते हुए जगद्गुरु भगवान्को प्रसन्न करो।

**पुलस्त्यजी कहते हैं**—भीष्म! ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर देवर्षि नारद मुनिवर श्रीनारायणका दर्शन करनेके लिये गन्धमादन पर्वतपर बदरिकाश्रम तीर्थमें चले गये।

महाराज! इस प्रकार यह सारा सृष्टिखण्ड मैंने क्रमशः तुम्हें सुना दिया। यह सम्पूर्ण वेदार्थोंका सार है, इसे सुनकर मनुष्य भगवान्का सान्निध्य प्राप्त करता है। यह परम पवित्र, यशका निधान तथा पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। यह देवताओंके लिये अमृतके समान मधुर तथा पापी पुरुषोंको भी पुण्य प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य ऋषियोंके इस शुभ चरित्रका प्रतिदिन श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ तथा कलियुगमें एकमात्र दानकी विशेष प्रशंसा की गयी है। सम्पूर्ण दानोंमें भी समस्त भूतोंको अभय देना—यही सर्वोत्तम दान है; इससे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है।* तीर्थ और श्राद्धके वर्णनसे युक्त यह पुराण-खण्ड कहा गया। यह पुण्यजनक, पवित्र, आयुवर्धक और सम्पूर्ण पापोंका नाशक है। जो मनुष्य इसका पाठ या श्रवण करता है, वह श्रीसम्पन्न होता है तथा सब पापोंसे मुक्त हो लक्ष्मीसहित भगवान् श्रीविष्णुको प्राप्त कर लेता है।

★

## ॥ सृष्टिखण्ड सम्पूर्ण ॥

★

* सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम्। अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम्॥(८२। ३९)

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# संक्षिप्त पद्मपुराण

## भूमिखण्ड

### शिवशर्माके चार पुत्रोंका पितृ-भक्तिके प्रभावसे श्रीविष्णुधामको प्राप्त होना

**यं सर्वदेवं परमेश्वरं हि निष्केवलं ज्ञानमयं प्रधानम्।**
**वदन्ति नारायणमादिसिद्धं सिद्धेश्वरं तं शरणं प्रपद्ये ॥***

(१६। ३५)

**सूतजी कहते हैं**—पश्चिम-समुद्रके तटपर द्वारका नामसे प्रसिद्ध एक नगरी है। वहाँ योगशास्त्रके ज्ञाता एक ब्राह्मण-देवता सदा निवास करते थे। उनका नाम था शिवशर्मा। वे वेद-शास्त्रोंके अच्छे विद्वान् थे। उनके पाँच पुत्र हुए, जिन्हें शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञान था। उनके नाम इस प्रकार हैं—यज्ञशर्मा, वेदशर्मा, धर्मशर्मा, विष्णुशर्मा तथा सोमशर्मा—ये सभी पिताके भक्त थे। द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माने उनकी भक्ति देखकर सोचा—'पितृभक्त पुरुषोंके हृदयमें जो भाव होना चाहिये, वह मेरे इन पुत्रोंके हृदयमें है या नहीं—इस बातको बुद्धिपूर्वक परीक्षा करके जाननेका प्रयत्न करूँ।' शिवशर्मा ब्रह्म-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे। उन्हें उपायका ज्ञान था। उन्होंने मायाद्वारा अपने पुत्रोंके सामने एक घटना उपस्थित की। पुत्रोंने देखा, उनकी माता महान् ज्वररोगसे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त हो गयी। तब वे पिताके पास जाकर बोले—'तात! हमारी माता अपने शरीरका परित्याग करके चली गयी। अब उसके विषयमें आप हमें क्या आज्ञा देते हैं?' द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माने अपने भक्तिपरायण ज्येष्ठ पुत्र यज्ञशर्माको सम्बोधित करके कहा—'बेटा! इस तीखे हथियारसे अपनी माताके सारे अङ्गोंको टुकड़े-टुकड़े करके इधर-उधर फेंक दो। पुत्रने पिताकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य किया। पिताने भी यह बात सुनी। इससे उन्हें उस पुत्रकी भक्तिके विषयमें पूर्ण निश्चय हो गया। अब उन्होंने दूसरे पुत्रकी पितृ-भक्ति जाननेका विचार किया और वेदशर्माके पास जाकर कहा—'बेटा! मैं स्त्रीके बिना नहीं रह सकता। तुम मेरी आज्ञा मानकर जाओ और समस्त सौभाग्य-सम्पत्तिसे युक्त जो स्त्री मैंने देखी है, उसे मेरे लिये यहाँ बुला लाओ।' पिताके ऐसा कहनेपर वेदशर्मा बोले—'मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा।' यों कहकर वे पिताको प्रणाम करके चले गये और उस स्त्रीके पास पहुँचकर बोले—'देवि! मेरे पिता तुम्हारे लिये प्रार्थना करते हैं; यद्यपि वे वृद्ध हैं तथापि तुम मेरे अनुरोधसे उनपर कृपा करके उनके अनुकूल हो जाओ।'

वेदशर्माकी ऐसी बात सुनकर मायासे प्रकट हुई उस स्त्रीने कहा—'ब्रह्मन्! तुम्हारे पिता बुढ़ापेसे कष्ट पा रहे हैं; अतः मैं कदापि उन्हें पति बनाना नहीं चाहती। उन्हें खाँसीका रोग है, उनके मुँहमें कफ भरा रहता है। इस समय दूसरी-दूसरी बीमारियोंने भी उन्हें पकड़ रखा है। रोगके कारण वे शिथिल एवं आर्त हो गये हैं; अतः मुझे उनका समागम नहीं चाहिये। मैं तुम्हारे साथ रमण करना चाहती हूँ। तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगी। तुम दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न, दिव्यरूपधारी तथा महान् तेजस्वी हो; अतः मैं तुम्हींको पाना चाहती हूँ। मानद! उस बूढ़ेको लेकर क्या करोगे। मेरे शरीरका उपभोग करनेसे तुम्हें समस्त दुर्लभ सुखोंकी प्राप्ति होगी, विप्रवर! तुम्हें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा होगी, वह सब ला दूँगी; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

यह महान् पापपूर्ण अप्रिय वचन सुनकर वेदशर्माने कहा—'देवि! तुम्हारा वचन अधर्मयुक्त, पापमिश्रित और अनुचित है। मैं पिताका भक्त और निरपराध हूँ;

---

* जिन्हें सर्वदेवस्वरूप, परमेश्वर, केवल, ज्ञानमय और प्रधानरूप कहते हैं, उन सिद्धोंके स्वामी आदिसिद्ध भगवान् श्रीनारायणकी मैं शरण हूँ।

मुझसे ऐसी बात न कहो। शुभे ! मैं पिताके लिये ही यहाँ आया हूँ और उन्हींके लिये तुमसे प्रार्थना करता हूँ। इसके विपरीत दूसरी कोई बात न कहो। मेरे पिताजीको ही स्वीकार करो। देवि ! इसके लिये तुम चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकीकी जो-जो वस्तु चाहोगी, वह सब निस्सन्देह तुम्हें अर्पण करूँगा। अधिक क्या कहूँ, देवताओंका राज्य आदि भी यदि चाहो तो तुम्हें दे सकता हूँ।'

**स्त्री बोली**—यदि तुम अपने पिताके लिये इस प्रकार दान देनेमें समर्थ हो तो मुझे इन्द्रसहित सम्पूर्ण दवताओंका अभी दर्शन कराओ।

**वेदशर्मा बोले**—देवि ! मेरा बल, मेरी तपस्याका प्रभाव देखो। मेरे आवाहन करनेपर ये इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवता यहाँ आ पहुँचे।

**देवताओंने वेदशर्मासे कहा**—'द्विजश्रेष्ठ ! हम तुम्हारा कौन-सा कार्य करें ?'

**वेदशर्मा बोले**—देवगण ! यदि आपलोग मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अपने पिताके चरणोंमें पूर्ण भक्ति प्रदान करें। 'एवमस्तु' कहकर सम्पूर्ण देवता जैसे आये थे, वैसे लौट गये। तब उस स्त्रीने हर्षमें भरकर कहा—'तुम्हारी तपस्याका बल देख लिया। देवताओंसे मुझे कोई काम नहीं है। यदि तुम मुझे मुँहमाँगी वस्तु देना चाहते हो और अपने पिताके लिये मुझे ले जाना चाहते हो तो अपना सिर अपने ही हाथसे काटकर मुझे अर्पण कर दो।'

**वेदशर्माने कहा**—देवि ! आज मैं धन्य हो गया। शुभे ! मैं पिताके लिये अपना मस्तक भी दे दूँगा; ले लो, ले लो। यह कहकर द्विजश्रेष्ठ वेदशर्माने तीखी धारवाली तेज तलवार उठायी और हँसते-हँसते अपना मस्तक काटकर उस स्त्रीको दे दिया। खूनमें डूबे हुए उस मस्तकको लेकर वह शिवशर्माके पास गयी।

**स्त्रीने कहा**—विप्रवर ! तुम्हारे पुत्र वेदशर्माने मुझे तुम्हारी सेवाके लिये यहाँ भेजा है; यह उनका मस्तक है, इसे ग्रहण करो। इसको उन्होंने अपने हाथसे काटकर दिया है।

उस मस्तकको देखकर वेदशर्माके चारों भाई काँप उठे। उन पुण्यात्मा बन्धुओंमें इस प्रकार बात होने लगी—'अहो ! धर्म ही जिसका सर्वस्व था, वह हमारी माता सत्य समाधिके द्वारा मृत्युको प्राप्त हो गयी। हमलोगोंमें ये वेदशर्मा ही परम सौभाग्यशाली थे, जिन्होंने पिताके लिये प्राण दे दिये। ये धन्य तो थे ही और अधिक धन्य हो गये।' शिवशर्माने उस स्त्रीकी बात सुनकर जान लिया कि वेदशर्मा पूर्ण भक्त था। तत्पश्चात् उन्होंने अपने तृतीय पुत्र धर्मशर्मासे कहा—'बेटा ! यह अपने भाईका मस्तक लो और जिस प्रकार यह जी सके, वह उपाय करो।'

**सूतजी कहते हैं**—धर्मशर्मा भाईके मस्तकको लेकर तुरंत ही वहाँसे चल दिये। उन्होंने पिताकी भक्ति, तपस्या, सत्य और सरलताके बलसे धर्मको आकर्षित किया। उनकी तपस्यासे खिंचकर धर्मराज धर्मशर्माके पास आये और इस प्रकार बोले—'धर्मशर्मन् ! तुम्हारे आवाहन करनेसे मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ; मुझे अपना कार्य बताओ, मैं उसे निस्सन्देह पूर्ण करूँगा।'

**धर्मशर्माने कहा**—धर्मराज ! यदि मैंने गुरुकी सेवा की हो, यदि मुझमें पिताके प्रति निष्ठा और अविचल तपस्या हो तो इस सत्यके प्रभावसे मेरे भाई वेदशर्मा जी उठें।

**धर्म बोले**—महामते ! मैं तुम्हारी तपस्या और पितृभक्तिसे सन्तुष्ट हूँ, तुम्हारे भाई जी जायँगे; तुम्हारा कल्याण हो। धर्मवेत्ताओंके लिये जो दुर्लभ है, ऐसा कोई उत्तम वरदान मुझसे और माँग लो।

धर्मशर्माने जब धर्मका यह उत्तम वचन सुना तो उस महायशस्वीने महात्मा वैवस्वतसे कहा—'धर्मराज ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो पिताके चरणोंकी पूजामें अविचल भक्ति, धर्ममें अनुराग तथा अन्तमें मोक्षका वरदान मुझे दीजिये।' तब धर्मने कहा—'मेरी कृपासे यह सब कुछ तुम्हें प्राप्त होगा।' उनके मुखसे यह महावाक्य निकलते ही वेदशर्मा उठकर खड़े हो गये। मानो वे सोतेसे जाग उठे हों। उठते ही महाबुद्धिमान् वेदशर्माने धर्मशर्मासे कहा—'भाई ! वे देवी कहाँ

गयीं ? पिताजी कहाँ हैं ?' धर्मशर्माने थोड़ेमें सब हाल कह सुनाया। सब हाल जानकर वेदशर्माको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने धर्मशर्मासे कहा—'प्रिय बन्धु ! इस पृथ्वीपर तुम्हारे-जैसा मेरा हितैषी कौन है ?' तदनन्तर दोनों भाई प्रसन्न होकर अपने पिता शिवशर्माके पास गये। उस समय धर्मशर्माने तेजस्वी पितासे कहा—'महाभाग ! आज मैंने आपके पुत्र वेदशर्माको मस्तक और जीवनके साथ यहाँ ला दिया है। आप इन्हें स्वीकार कीजिये।'

तदनन्तर, शिवशर्माने विनीत भावसे सामने खड़े हुए चौथे पुत्र महामति विष्णुशर्मासे कहा—'बेटा ! मेरा कहना करो। आज ही इन्द्रलोकको जाओ और वहाँसे अमृत ले आओ। मैं अपनी इस प्रियतमाके साथ इस समय अमृत पीना चाहता हूँ; क्योंकि अमृत सब रोगोंको दूर करनेवाला है।' महात्मा पिताका यह वचन सुनकर विष्णुशर्माने उनसे कहा—'पिताजी ! मैं आपके कथनानुसार सब कार्य करूँगा।' यह कहकर परम बुद्धिमान् धर्मात्मा विष्णुशर्माने पिताको प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके अपने महान् बल, तपस्या

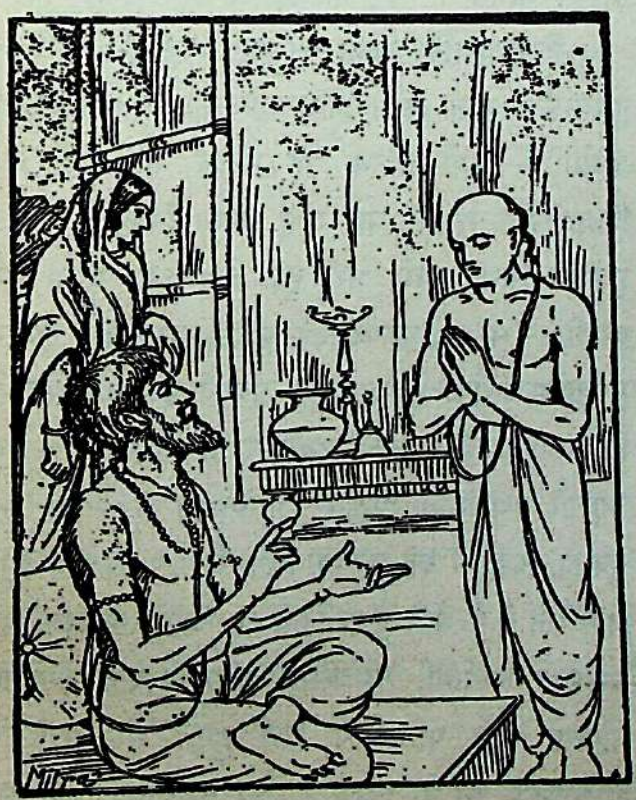

तथा नियमके प्रभावसे आकाशमार्गद्वारा इन्द्रलोककी यात्रा की।

अन्तरिक्षमार्गसे जब वे आकाशके भीतर घुसे, तब देवराज इन्द्रने उन्हें देखा और उनका उद्देश्य जानकर उसमें विघ्न डालना आरम्भ किया। उन्होंने मेनकासे कहा—'सुन्दरी ! मेरी आज्ञासे शीघ्रतापूर्वक जाओ और विप्रवर विष्णुशर्माके कार्यमें बाधा डालो।' देवराजकी आज्ञा पाकर मेनका बड़ी उतावलीके साथ चली। उसका सुन्दर रूप था और वह सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थी। नन्दनवनके भीतर पहुँचकर वह झूलेमें जा बैठी और मधुर स्वरसे गीत गाने लगी। उसका संगीत बीणाके स्वरके समान था। विष्णुशर्माने उसे देखा और उसके मनोभावको समझ लिया। उन्होंने सोचा—'यह एक बहुत बड़े विघ्नके रूपमें उपस्थित हुई है, इन्द्रने इसे भेजा है; यह मेरी भलाई नहीं कर सकती।' यह विचारकर वे शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ गये। मेनकाने उन्हें जाते देखा और पूछा—'महामते ! कहाँ जाओगे ?' विष्णुशर्मा बोले—'मैं पिताके कार्यसे इन्द्रलोकमें जाऊँगा, वहाँ पहुँचनेके लिये मुझे बड़ी जल्दी है।' मेनकाने कहा—'विप्रवर ! मैं कामदेवके बाणोंसे घायल होकर इस समय तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। यदि धर्मका पालन करना चाहते हो तो मेरी रक्षा करो।'

**विष्णुशर्मा बोले**—सुमुखि ! मुझे देवराजका सारा चरित्र मालूम है; तुम्हारे मनमें क्या है, यह भी मुझसे छिपा नहीं है। तुम्हारे तेज और रूपसे विश्वामित्र आदि दूसरे लोग ही मोहित होते हैं। मैं शिवशर्माका पुत्र हूँ, मुझपर तुम्हारा जादू नहीं चल सकता। अबले ! मैं योगसिद्धिको प्राप्त हूँ, तपस्यासे सिद्ध हो चुका हूँ। काम आदि बड़े-बड़े दोषोंको मैंने पहले ही जीत लिया है। तुम किसी दूसरे पुरुषका आश्रय लो, मैं इन्द्रलोकको जा रहा हूँ।

यों कहकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुशर्मा शीघ्रतापूर्वक चले गये। मेनकाका प्रयत्न निष्फल हुआ। देवराजके पूछनेपर उसने सब कुछ बता दिया। तब इन्द्रने बारंबार विघ्न उपस्थित किया, किन्तु महायशस्वी ब्राह्मणने अपने तेजसे

उन सब विघ्नोंका नाश कर दिया। उनके उपस्थित किये हुए भयंकर विघ्नोंका विचार करके महातेजस्वी विष्णुशर्माको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सोचा—'मैं इन्द्रलोकसे इन्द्रको गिरा दूँगा और देवताओंकी रक्षाके लिये दूसरा इन्द्र बनाऊँगा।' वे इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि देवराज इन्द्र वहाँ आ पहुँचे और बोले—'महाप्राज्ञ विप्र! तपस्या, नियम, इन्द्रियसंयम, सत्य और शौचके द्वारा तुम्हारी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारी इस पितृभक्तिसे मैं देवताओंसहित परास्त हो गया। साधुश्रेष्ठ! तुम मेरे सारे अपराध क्षमा करो और मुझसे कोई वर माँगो। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे माँगनेपर मैं दुर्लभ-से-दुर्लभ वर भी दे दूँगा।' यह सुनकर विष्णुशर्माने देवराजसे कहा—'आपको महात्मा ब्राह्मणोंके तेजका विनाश करनेकी कभी चेष्टा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यदि श्रेष्ठ ब्राह्मण क्रोधमें भर जायँ तो समस्त पुत्र-पौत्रोंके साथ अपराधी व्यक्तिका संहार कर सकते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि आप इस समय यहाँ न आये होते तो मैं अपनी तपस्याके प्रभावसे आपके इस उत्तम राज्यको छीनकर किसी दूसरेको दे डालनेका विचार कर चुका था। मेरी आँखें

क्रोधसे लाल हो रही थीं। [किन्तु आपके आनेसे मेरा भाव बदल गया।] देवेन्द्र! आप आकर मुझे वर देना चाहते हैं तो अमृत दीजिये; साथ ही पिताके चरणोंमें अविचल भक्ति प्रदान कीजिये।'

इस प्रकार बातचीत होनेपर इन्द्रने प्रसन्न चित्तसे ब्राह्मणको अमृतसे भरा घड़ा लाकर दिया तथा वरदान देते हुए कहा—'विप्रवर! अपने पिताके प्रति तुम्हारे हृदयमें सदा अविचल भक्ति बनी रहेगी।' यों कहकर इन्द्रने ब्राह्मणको विदा किया। तदनन्तर विष्णुशर्मा अपने पिताके पास जाकर बोले—'तात! मैं इन्द्रके यहाँसे अमृत ले आया हूँ। इसका सेवन करके आप सदाके लिये नीरोग हो जाइये।' शिवशर्मा पुत्रकी यह बात सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुए और सब पुत्रोंको बुलाकर कहने लगे—'तुम सब लोग पितृभक्तिसे युक्त और मेरी आज्ञाके पालक हो। अतः प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कोई वर माँगो। इस भूतलपर जो दुर्लभ वस्तु होगी, वह भी तुम्हें मिल जायगी।' पिताकी यह बात सुनकर वे सभी पुत्र एक-दूसरेकी ओर देखते हुए उनसे बोले—'सुव्रत! आपकी कृपासे हमारी माता, जो यमलोकको चली गयी हैं, जी जायँ।'

**शिवशर्माने कहा**—'पुत्रो! तुम्हारी मरी हुई पुत्रवत्सला माता अभी जीवित होकर हर्षमें भरी हुई यहाँ आयेगी—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।' ऋषि शिवशर्माके मुखसे यह शुभ वाक्य निकलते ही उन पुत्रोंकी माता हर्षमें भरी हुई वहाँ आ पहुँची और बोली—'मेरे सौभाग्यशाली पुत्रो! इसीलिये संसारमें पुण्यात्मा स्त्रियाँ पुण्यसाधक पुत्रकी इच्छा करती हैं। जिसका कुलके अनुरूप आचरण हो, जो अपने कुलका आधार तथा माता-पिताको तारनेवाला हो—ऐसे उत्तम पुत्रको कोई भी स्त्री पुण्यके बिना कैसे पा सकती है। न जाने मैंने कैसे-कैसे पुण्य किये थे, जिनके फलस्वरूप ये धर्मप्राण, धर्मात्मा, धर्मवत्सल तथा अत्यन्त पुण्यभागी महात्मा मुझे पतिरूपमें प्राप्त हुए। मेरे सभी पुत्र पितृभक्तिमें रत हैं; इससे बढ़कर प्रसन्नताकी बात और

क्या होगी। अहो ! संसारमें पुण्यके ही बलसे उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। मुझे पाँच पुत्र प्राप्त हुए हैं, जिनका हृदय विशाल है तथा जिनमें एक-से-एक बढ़कर है। मेरे सभी पुत्र यज्ञ करनेवाले, पुण्यात्मा, तपस्वी, तेजस्वी और पराक्रमी हैं।'

इस प्रकार माताके कहनेपर पुत्रोंको बड़ा हर्ष हुआ और वे अपनी माताको प्रणाम करके बोले—'माँ ! अच्छे माता-पिताकी प्राप्ति बड़े पुण्यसे होती है। तुम सदा पुण्य कर्म करती रहती हो। हमारे बड़े भाग्य थे, जो तुम हमें माताके रूपमें प्राप्त हुईं, जिनके गर्भमें आकर हमलोग उत्तम पुण्योंसे वृद्धिको प्राप्त हुए हैं। हमारी यही अभिलाषा है कि प्रत्येक जन्ममें तुम्हीं हमारी माता और ये ही हमारे पिता हों।'

**पिता बोले**—पुत्रो ! तुमलोग मुझसे कोई परम उत्तम और पुण्यदायक वरदान माँगो। मेरे सन्तुष्ट होनेपर तुमलोग अक्षय लोकोंका उपभोग कर सकते हो।

**पुत्रोंने कहा**—पिताजी ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो हमें भगवान् श्रीविष्णुके गोलोकधाममें भेज दीजिये, जहाँ किसी प्रकारकी चिन्ता और व्याधि नहीं फटकने पाती।

**पिता बोले**—पुत्रो ! तुमलोग सर्वथा निष्पाप हो; इसलिये मेरे प्रसाद, तपस्या और इस पितृभक्तिके बलसे वैष्णवधामको जाओ।

महर्षि शिवशर्माके यह उत्तम वचन कहते ही भगवान् श्रीविष्णु अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये गरुड़पर सवार हो वहाँ आ पहुँचे और पुत्रोंसहित शिवशर्मासे बारंबार कहने लगे—'विप्रवर ! पुत्रोंसहित तुमने भक्तिके बलसे मुझे अपने वशमें कर लिया है। अतः इन पुण्यात्मा पुत्रों तथा पतिके साथ रहनेकी इच्छावाली इस पुण्यमयी पत्नीको साथ लेकर तुम मेरे परमधामको चलो।'

**शिवशर्माने कहा**—भगवन् ! ये मेरे चारों पुत्र ही इस समय परम उत्तम वैष्णवधाममें चलें। मैं पत्नीके साथ अभी भूलोकमें ही कुछ काल व्यतीत करना चाहता हूँ। मेरे साथ मेरा कनिष्ठ पुत्र सोमशर्मा भी रहेगा।

सत्यभाषी महर्षि शिवशर्माके यों कहनेपर देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुने उनके चार पुत्रोंसे कहा—'तुमलोग दाह और प्रलयसे रहित मोक्षदायक गोलोकधामको चलो।' भगवान्‌के इतना कहते ही उन चारों सत्यतेजस्वी ब्राह्मणोंका तत्काल विष्णुके समान रूप हो गया, उनके शरीरका श्यामवर्ण इन्द्र नीलमणिके समान शोभा पाने लगा। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित होने लगे। वे विष्णुरूपधारी महान् तेजस्वी द्विज पितृभक्तिके प्रभावसे विष्णुधामको प्राप्त हो गये।

★

## सोमशर्माकी पितृ-भक्ति

**सूतजी कहते हैं**—भगवान् श्रीविष्णुका गोलोकधाम तमसे परे परम प्रकाशरूप है। पूर्वोक्त चारों ब्राह्मण जब उस लोकमें चले गये, तब महाप्राज्ञ शिवशर्माने अपने छोटे पुत्रसे कहा—'महामते ! सोमशर्मन् ! तुम पिताकी भक्तिमें रत हो। मैं इस समय तुम्हें यह अमृतका घड़ा दे रहा हूँ; तुम सदा इसकी रक्षा करना। मैं पत्नीके साथ तीर्थयात्रा करने जाऊँगा।' यह सुनकर सोमशर्माने कहा—'महाभाग ! ऐसा ही होगा।' बुद्धिमान् शिवशर्मा सोमशर्माके हाथमें वह घड़ा देकर वहाँसे चल दिये और दस वर्षोंतक निरन्तर तपस्यामें लगे रहे। धर्मात्मा सोमशर्मा दिन-रात आलस्य छोड़कर उस अमृत-कुम्भकी रक्षा करते रहे। दस वर्षोंके पश्चात् महायशस्वी शिवशर्मा पुनः लौटकर वहाँ आये। ये मायाका प्रयोग करके भार्यासहित कोढ़ी बन गये। जैसे वे स्वयं कुष्ठरोगसे पीड़ित थे, उसी प्रकार उनकी स्त्री भी थीं। दोनों ही मांसके पिण्डकी भाँति त्याग देनेयोग्य दिखायी देते थे। वे धीरचित्त ब्राह्मण महात्मा सोमशर्माके समीप आये। वहाँ पधारे हुए माता-पिताको सर्वथा दुःखसे पीड़ित देख महायशस्वी सोमशर्माको बड़ी दया आयी। भक्तिसे उनका मस्तक झुक गया। वे उन दोनोंके

चरणोंमें पड़ गये और बोले—'पिताजी ! मैं दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता, जो तपस्या, गुण-समुदाय और उत्तम पुण्यसे युक्त होकर आपकी समानता कर

सके। फिर भी आपको यह क्या हो गया ? विप्रवर ! सम्पूर्ण देवता सदा दासकी भाँति आपकी आज्ञाके पालनमें लगे रहते हैं। वे आपके तेजसे खिंचकर यहाँ आ जाते हैं। आप इतने शक्तिशाली हैं तो भी किस पापके कारण आपके शरीरमें यह पीड़ा देनेवाला रोग हो गया ? ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इसका कारण बताइये। यह मेरी माता भी पुण्यवती है, इसका पुण्य महान् है; यह पतिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली है। यह अपने स्वामीकी कृपासे समूची त्रिलोकीको भी धारण करनेमें समर्थ है। जो राग-द्वेषका परित्याग करके भाँति-भाँतिके कर्मोंद्वारा अपने पतिदेवका पूजन करती है, देवताओंकी ही भाँति गुरुजनोंके प्रति भी जिसके हृदयमें आदरका भाव है, वह मेरी माता क्यों इस कष्टकारी कुष्ठरोगका दुःख भोग रही है ?'

**शिवशर्मा बोले**—महाभाग ! तुम शोक न करो; सबको अपने कर्मोंका ही फल भोगना पड़ता है; क्योंकि मनुष्य प्रायः [पूर्वकृत] पाप और पुण्यमय कर्मोंसे युक्त होता ही है। अब तुम हम दोनों रोगियोंके घावोंको धोकर साफ करो।

पिताका यह शुभ वाक्य सुनकर महायशस्वी सोमशर्माने कहा—'आप दोनों पुण्यात्मा हैं; मैं आपकी सेवा अवश्य करूँगा। माता-पिताकी शुश्रूषाके सिवा मेरा और कर्तव्य ही क्या है।' सोमशर्मा उन दोनोंके दुःखसे दुःखी थे। वे माता-पिताके मल-मूत्र तथा कफ आदि धोते। अपने हाथसे उनके चरण पखारते और दबाया करते थे। उनके रहने और नहाने आदिका प्रबन्ध भी वे पूर्ण भक्तिके साथ स्वयं ही करते थे। विप्रवर सोमशर्मा बड़े यशस्वी, धर्मात्मा और सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे। वे अपने दोनों गुरुजनोंको कंधेपर बिठाकर तीर्थोंमें ले जाया करते थे। वे वेदके ज्ञाता थे; अतः माङ्गलिक मन्त्रोंका उच्चारण करके दोनोंको अपने हाथसे विधिपूर्वक नहलाते और स्वयं भी स्नान करते थे। फिर पितरोंका तर्पण और देवताओंका पूजन भी वे उन दोनोंसे प्रतिदिन कराया करते थे। स्वयं अग्निमें होम करते और अपने दोनों महागुरु माता-पिताको प्रसन्न करते हुए अपने सब कार्य उन्हें बताया करते थे। सोमशर्मा उन दोनोंको प्रतिदिन शय्यापर सुलाते और उन्हें वस्त्र तथा पुष्प आदि सब सामग्री निवेदन करते थे। परम सुगन्धित पान लगाकर माता-पिताको अर्पण करते तथा नित्यप्रति उनकी इच्छाके अनुसार फल, मूल, दूध आदि उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थ खानेको देते थे। इस क्रमसे वे सदा ही माता-पिताको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे। पिता सोमशर्माको बुलाकर उन्हें नाना प्रकारके कठोर एवं दुःखदायी वचनोंसे पीड़ित करते और आतुर होकर उन्हें डंडोंसे पीटते भी थे। यह सब करनेपर भी धर्मात्मा सोमशर्मा कभी पिताके ऊपर क्रोध नहीं करते थे। वे सदा सन्तुष्ट रहकर मन, वाणी और क्रिया—तीनोंके ही द्वारा पिताकी पूजा करते थे।

ये सब बातें जानकर शिवशर्मा अपने चरित्रपर विचार करने लगे। उन्होंने सोचा—'सोमशर्माका मेरी सेवामें अधिक अनुराग दिखायी देता है, इसीलिये

समयपर मैंने इसके तपकी परीक्षा की है; किन्तु मेरा पुत्र भक्ति-भाव तथा सत्यपूर्ण बर्तावसे भ्रष्ट नहीं हो रहा है।

निन्दा करने और मारनेपर भी सदा मीठे वचन बोलता है। इस प्रकार मेरा बुद्धिमान् पुत्र दुष्कर सदाचारका पालन कर रहा है। अतः अब मैं भगवान् श्रीविष्णुके प्रसादसे इसके दुःख दूर करूँगा।' इस प्रकार बहुत देरतक सोच-विचार करनेके पश्चात् परम बुद्धिमान् शिवशर्माने पुनः मायाका प्रयोग किया। अमृतके घड़ेसे अमृतका अपहरण कर लिया। उसके बाद सोमशर्माको बुलाकर कहा—'बेटा! मैंने तुम्हारे हाथमें रोगनाशक अमृत सौंपा था, उसे शीघ्र लाकर मुझे अर्पण करो, जिससे मैं इस समय उसका पान करूँ।'

पिताके यों कहनेपर सोमशर्मा तुरंत उठकर चल दिये। अमृतके घड़ेके पास जाकर उन्होंने देखा कि वह खाली पड़ा है—उसमें अमृतकी एक बूँद भी नहीं है। यह देखकर परम सौभाग्यशाली सोमशर्माने मन-ही-मन कहा—'यदि मुझमें सत्य और गुरु-शुश्रूषा है, यदि मैंने पूर्वकालमें निश्छल हृदयसे तपस्या की है, इन्द्रियसंयम, सत्य और शौच आदि धर्मोंका ही सदा पालन किया है, तो यह घड़ा निश्चय ही अमृतसे भर जाय।' महाभाग सोमशर्माने इस प्रकार विचार करके ज्यों ही उस घड़ेकी ओर देखा, त्यों ही वह अमृतसे भर गया। घड़ेको भरा देख उसे हाथमें ले महायशस्वी सोमशर्मा तुरंत ही पिताके पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'पिताजी! लीजिये, यह अमृतसे भरा घड़ा आ गया। महाभाग! अब इसे पीकर शीघ्र ही रोगसे मुक्त हो जाइये।' पुत्रका यह परम पुण्यमय तथा सत्य और धर्मके उद्देश्यसे युक्त मधुर वचन सुनकर शिवशर्माको बड़ा हर्ष हुआ। वे बोले—'पुत्र! आज मैं तुम्हारी तपस्या, इन्द्रियसंयम, शौच, गुरुशुश्रूषा तथा भक्तिभावसे विशेष संतुष्ट हूँ। लो, अब मैं इस विकृत रूपका त्याग करता हूँ।'

यों कहकर ब्राह्मण शिवशर्माने पुत्रको अपने पहले रूपमें दर्शन दिया। सोमशर्माने माता-पिताको पहले जिस रूपमें देखा था, उसी रूपमें उस समय भी देखा। वे दोनों महात्मा सूर्यमण्डलकी भाँति तेजसे दिप रहे थे। सोमशर्माने बड़ी भक्तिके साथ उन महात्माओंके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तदनन्तर वे दोनों पति-पत्नी पुत्रसे बातचीत करके अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे अपनी पत्नीको साथ ले विष्णुधामको चले गये। अपने पुण्य और योगाभ्यासके प्रभावसे उन महर्षिने दुर्लभ पद प्राप्त कर लिया।

★

## सुव्रतकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें सुमना और शिवशर्माका संवाद—विविध प्रकारके पुत्रोंका वर्णन तथा दुर्वासाद्वारा धर्मको शाप

**ऋषियोंने कहा**—सूतजी ! अब हम महात्मा सुव्रतका चरित्र सुनना चाहते हैं। वे महाप्राज्ञ किस गोत्रमें उत्पन्न हुए और किसके पुत्र थे ? ब्राह्मण सुव्रतकी क्या तपस्या थी और किस प्रकार उन्होंने भगवान् श्रीहरिकी आराधना की थी ?

**सूतजी बोले**—विप्रगण ! मैं सुव्रतके दिव्य एवं पावन चरित्रका वर्णन करता हूँ। यह प्रसङ्ग परम कल्याणकारी तथा भगवान् श्रीविष्णुकी चर्चासे युक्त है। पूर्व कल्पकी बात है, नर्मदाके पापनाशक तटपर अमरकण्टक तीर्थके भीतर कौशिक-वंशमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे। उनका नाम था सोमशर्मा। उनके कोई पुत्र नहीं था। इस कारण वे बहुत दुःखी रहा करते थे। उनकी पत्नीका नाम था सुमना। वह उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली थी। एक दिन उसने अपने पतिको चिन्तित देखकर कहा—'नाथ ! चिन्ता छोड़िये। चिन्ताके समान दूसरा कोई दुःख नहीं है, क्योंकि वह शरीरको सुखा डालती है। जो उसे त्यागकर यथोचित बर्ताव करता है, वह अनायास ही आनन्दमें मस्त रहता है।* विप्रवर ! मेरे सामने आप अपनी चिन्ताका कारण बताइये।'

**सोमशर्माने कहा**—सुव्रते ! न जाने किस पापसे मैं निर्धन और पुत्रहीन हूँ। यही मेरे दुःखका कारण है।

**सुमना बोली**—प्राणनाथ ! सुनिये। मैं एक ऐसी बात बताती हूँ, जो सब सन्देहोंका नाश करनेवाली है। पाप एक वृक्षके समान है, उसका बीज है लोभ। मोह उसकी जड़ है। असत्य उसका तना और माया उसकी शाखाओंका विस्तार है। दम्भ और कुटिलता पत्ते हैं। कुबुद्धि फूल है और अनृत उसकी गन्ध है। छल, पाखण्ड, चोरी, ईर्ष्या, क्रूरता, कूटनीति और पापाचारसे युक्त प्राणी उस मोहमूलक वृक्षके पक्षी हैं, जो मायारूपी शाखाओंपर बसेरे लेते हैं। अज्ञान उस वृक्षका फल है और अधर्मको उसका रस बताया गया है। दुर्भावरूप जलसे सींचनेपर उसकी वृद्धि होती है। अश्रद्धा उसके फूलने-फलनेकी ऋतु है। जो मनुष्य उस वृक्षकी छायाका आश्रय लेकर संतुष्ट रहता है, उसके पके हुए फलोंको प्रतिदिन खाता है और उन फलोंके अधर्मरूप रससे पुष्ट होता है, वह ऊपरसे कितना ही प्रसन्न क्यों न हो, वास्तवमें पतनकी ओर ही जाता है। इसलिये पुरुषको चिन्ता छोड़कर लोभका भी त्याग कर देना चाहिये।

स्त्री, पुत्र और धनकी चिन्ता तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। प्रियतम ! कितने ही विद्वान् भी मूर्खोंके मार्गका अवलम्बन करते हैं। दिन-रात मोहमें डूबे रहकर निरन्तर इसी चिन्तामें पड़े रहते हैं कि किस प्रकार मुझे अच्छी स्त्री मिले और कैसे मैं बहुत-से पुत्र प्राप्त करूँ। ब्रह्मन् ! आप चिन्ता और मोहका त्याग करके विवेकका आश्रय लीजिये।

कोई पूर्वजन्ममें ऋण देनेके कारण इस जन्ममें अपने सम्बन्धी होते हैं और कोई-कोई धरोहर हड़प लेनेके कारण भी सम्बन्धीके रूपमें जन्म लेते हैं। पत्नी, पिता, माता, भृत्य, स्वजन और बान्धव—सब लोग अपने-अपने ऋणानुबन्धसे ही इस पृथ्वीपर उत्पन्न होते हैं। जिसने जिसकी जिस भावसे धरोहर हड़प ली है, वह उसी भावसे उसके यहाँ जन्म लेता है। धरोहरका स्वामी रूपवान् और गुणवान् पुत्र होकर पृथ्वीपर उत्पन्न होता है और धरोहरके अपहरणका बदला लेनेके लिये दारुण दुःख देकर चला जाता है।

जो किसीका ऋण लेकर मर जाता है, उसके यहाँ दूसरे जन्ममें ऋणदाता पुरुष पुत्र, भाई, पिता, पत्नी और मित्ररूपसे उत्पन्न होता है। वह सदा ही अत्यन्त दुष्टतापूर्ण बर्ताव करता है। गुणोंकी ओर तो वह कभी

* नास्ति चिन्तासमं दुःखं कायशोषणमेव हि। यस्तां संत्यज्य वर्तेत स सुखेन प्रमोदते॥(११। ११)

देखता ही नहीं। क्रूर स्वभाव और निष्ठुर आकृति बनाये अपने स्वजनोंको सदा कठोर बातें सुनाया करता है। प्रतिदिन मीठी-मीठी वस्तुएँ स्वयं खाता है। घरमें रहते हुए धनका बलपूर्वक उपभोग करता है और रोकनेपर कुपित हो जाता है।

विप्रवर ! अब मैं आपके सामने शत्रु-स्वभाववाले पुत्रका वर्णन करती हूँ। वह बाल्यावस्थासे ही सदा शत्रुओंका-सा बर्ताव करता है। खेल-कूदमें भी पिता-माताको मार-मारकर भागता है और बारंबार हँसा करता है। क्रोधयुक्त स्वभावको लेकर ही बड़ा होता है और सदा वैरके काममें लगा रहता है। वह प्रतिदिन पिता और माताकी निन्दा करता है। फिर विवाह-सम्बन्ध हो जानेपर नाना प्रकारसे धनका अपव्यय करता है। 'घर और खेत आदि सब मेरा ही है' [तुमलोग कौन हो मेरा हाथ रोकनेवाले ?] यों कहकर पिता और माताको प्रतिदिन पीटता रहता है। उनकी मृत्युके पश्चात् न वह श्राद्ध करता है और न कभी दान ही देता है। ऐसे बहुतेरे पुत्र इस पृथ्वीपर उत्पन्न होते रहते हैं।

अब मैं उस पुत्रका वर्णन करती हूँ, जिसके द्वारा प्रिय वस्तुकी प्राप्ति होती है। वैसा बालक बचपनसे ही माता-पिताका प्रिय करता है। वयस्क (बड़ा) होनेपर भी उनके प्रियसाधनमें लगा रहता है और सदा अपनी भक्तिसे माता-पिताको सन्तुष्ट रखता है। स्नेहसे, मीठी वाणीसे तथा प्रिय लगनेवाली बातचीतसे उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता है। माता-पिताकी मृत्युके पश्चात् सम्पूर्ण श्राद्धकर्म और पिण्डदान आदिका कार्य करता है तथा उनकी सद्गतिके लिये तीर्थयात्रा भी करता है।

प्रियतम ! अब इस समय आपके सामने उदासीन पुत्रका वर्णन करती हूँ—विप्रवर ! उदासीन बालक सदा उदासीन-भावसे ही रहता है। वह न कुछ देता है और न लेता है। न रुष्ट होता है और न सन्तुष्ट। इस प्रकार मैंने पुत्रोंके सम्बन्धमें सब कुछ बता दिया। पुत्रोंकी ऐसी ही गति है। जैसे पुत्र होते हैं, वैसे ही पिता, माता, पत्नी, बन्धु-बान्धव तथा भृत्य आदि अन्य लोग भी बताये गये हैं। [इनमें भी शत्रु, मित्र और उदासीन आदि भेद होते हैं।] मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, पशु—घोड़े, हाथी, भैंस आदि भी ऐसे ही होते हैं। नौकरोंकी भी यही स्थिति है; ये सब ऋणके सम्बन्धसे ही प्राप्त होते हैं।

हम दोनोंने पूर्वजन्ममें न तो किसीसे ऋण लिया है और न किसीकी धरोहर ही हड़पी है। इतना ही नहीं, हमने किसीके साथ वैर भी नहीं किया है। [इसीलिये हमें धन और पुत्र आदि किसी भी वस्तुकी प्राप्ति नहीं हुई है।] यह जानकर आप शान्ति धारण करें और व्यर्थकी चिन्ता छोड़ दें। आपने किसीको दान नहीं दिया है, तब धन कैसे आये। अतः प्राणनाथ ! दुःखी न होइये। द्विजश्रेष्ठ ! जिस पुरुषको धन मिलना निश्चित है, उसके हाथमें अनायास ही धन आ जाता है। मनुष्य उस धनकी बड़े यत्नसे रक्षा करता है। किन्तु जब वह जानेको होता है, तब चला ही जाता है। ऐसा समझकर आप शान्त हो जाइये। निरर्थक चिन्ता छोड़िये। महान् मोहसे मूढ़ (विवेकशून्य) हुए मानव पापमें आसक्तचित्त होकर कहने लगते हैं कि 'यह घर, यह पुत्र और ये स्त्रियाँ मेरी ही हैं।' किन्तु प्राणनाथ ! संसारका यह बन्धन सदा झूठा ही दिखायी देता है।

**सोमशर्मा बोले**—कल्याणी ! तुम ठीक कहती हो; तुम्हारा यह वचन सब प्रकारके सन्देहोंका नाश करनेवाला है तथापि सत्यके ज्ञाता साधु पुरुष वंशकी इच्छा रखते हैं। प्रिये ! मुझे पुत्रकी चिन्ता है; जीमें आता है—जिस-किसी उपायसे सम्भव हो, मैं पुत्र अवश्य उत्पन्न करूँ।

**सुमनाने कहा**—महाभाग ! एक ही विद्वान् पुत्र श्रेष्ठ है, बहुत-से गुणहीन पुत्रोंको लेकर क्या करना है ? एक ही पुत्र कुलका उद्धार करता है; दूसरे तो केवल कष्ट देनेवाले होते हैं। पुण्यसे ही पुत्र प्राप्त होता है, पुण्यसे ही अच्छा कुल मिलता है तथा पुण्यसे ही उत्तम गर्भकी प्राप्ति होती है। इसलिये आप पुण्यका अनुष्ठान कीजिये। प्राणनाथ ! पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्य ही सुख-राशिका उपभोग करते हैं।

**सोमशर्मा बोले**—भद्रे ! मुझे पुण्यका अनुष्ठान बताओ। उत्तम पुण्य कैसा होता है ? पुण्यके लक्षणोंका वर्णन करो।

**सुमनाने कहा**—प्राणनाथ ! पुरुष या स्त्रीको सदा जिस प्रकार बर्ताव करना चाहिये तथा जिस प्रकार पुण्य करनेसे कीर्ति, पुत्र, प्यारी स्त्री और धनकी प्राप्ति होती है, वह सब मैं बताती हूँ तथा पुण्यका लक्षण भी कहती हूँ। ब्रह्मचर्य, तपस्या, पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, उत्तम शक्ति और चोरीका अभाव—ये पुण्यके अङ्ग हैं; इनके अनुष्ठानसे धर्मकी पूर्ति करनी चाहिये।* धर्मात्मा पुरुष मन, वाणी और शरीर—तीनोंकी क्रियासे धर्मका सम्पादन करता है। फिर वह जिस-जिस वस्तुका चिन्तन करता है, वह दुर्लभ होनेपर भी उसे प्राप्त हो जाती है।

**सोमशर्माने पूछा**—भामिनि ! धर्मका स्वरूप कैसा है ? और उसके कौन-कौन-से अङ्ग हैं ? प्रिये ! इस विषयको सुननेकी मेरे मनमें बड़ी रुचि हो रही है; अतः तुम प्रसन्नतापूर्वक इसका वर्णन करो।

**सुमना बोली**—ब्रह्मन् ! जिनका अत्रिवंशमें जन्म हुआ है तथा जो अनसूयाके पुत्र हैं, उन भगवान् दत्तात्रेयजीने ही सदा धर्मका साक्षात्कार किया है। महर्षि दुर्वासा और दत्तात्रेय—इन दोनोंने उत्तम तपस्या की है। उन्होंने तपस्या और आत्मबलके साथ धर्मानुकूल बर्ताव किया है। उन्होंने वनमें रहकर दस हजार वर्षोंतक तपस्या की, बिना कुछ खाये-पीये केवल हवा पीकर जीवन-निर्वाह किया; इससे वे दोनों शुभदर्शी हो गये हैं। तत्पश्चात् उतने ही समय (दस हजार वर्ष) तक उन दोनोंने पञ्चाग्निसेवन किया। उसके बाद वे जलके भीतर खड़े हो उतने ही वर्षोंतक तपस्यामें लगे रहे। यतिवर दत्तात्रेय और मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा बहुत दुर्बल हो गये। तब मुनिवर दुर्वासाके मनमें धर्मके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। इसी समय बुद्धिमान् धर्म साक्षात् वहाँ आ पहुँचे। उनके साथ ब्रह्मचर्य और तप आदि भी मूर्तिमान् होकर आये। सत्य, ब्रह्मचर्य, तप और इन्द्रियसंयम—ये उत्तम एवं विद्वान् ब्राह्मणके रूपमें आये। नियमने महाप्राज्ञ पण्डितका रूप धारण कर रखा था और दान अग्निहोत्रीका स्वरूप धारण किये महर्षि दुर्वासाके निकट उपस्थित हुआ था। क्षमा, शान्ति, लज्जा, अहिंसा और अकल्पना (निःसंकल्प अवस्था)—ये सब स्त्री रूप धारण किये वहाँ आयी थीं। बुद्धि, प्रज्ञा, दया, श्रद्धा, मेधा, सत्कृति और शान्ति—इनका भी वही रूप था। पाँचों अग्नियाँ, परम पावन वेद और वेदाङ्ग—ये भी अपना-अपना दिव्य रूप धारण किये उपस्थित थे। इस प्रकार धर्म अपने परिवारके साथ वहाँ आये थे। ये सब-के-सब मुनिको सिद्ध हो गये थे।

**धर्म बोले**—ब्रह्मन् ! आपने तपस्वी होकर भी क्रोध क्यों किया है ? क्रोध तो मनुष्यके श्रेय और तपस्या—दोनोंका ही नाश कर डालता है; इसलिये तपस्याके समय इस सर्वनाशी क्रोधको अवश्य त्याग देना चाहिये। द्विजश्रेष्ठ ! स्वस्थ होइये; आपकी तपस्याका फल बहुत उत्तम है।

**दुर्वासाने कहा**—आप कौन हैं, जो इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ यहाँ पधारे हैं ? तथा आपके साथ ये सुन्दर रूप और अलंकारोंसे सुशोभित स्त्रियाँ कैसे खड़ी हैं ?

**धर्म बोले**—मुने ! ये जो आपके सामने ब्राह्मणके रूपमें सम्पूर्ण तेजसे युक्त दिखायी देते हैं, जो हाथमें दण्ड और कमण्डलु लिये अत्यन्त प्रसन्न जान पड़ते हैं; इनका नाम 'ब्रह्मचर्य' है। इसी प्रकार ये जो दूसरे तेजस्वी ब्राह्मण खड़े हैं, इनपर भी दृष्टिपात कीजिये। इनके शरीरका रङ्ग पीला और आँखें भूरे रंगकी हैं; ये 'सत्य' कहलाते हैं। धर्मात्मन् ! इन्हींके समान जो अपनी दिव्य प्रभासे विश्वेदेवोंकी समानता कर रहे हैं तथा जिनका आपने सदा ही आश्रय लिया है, वही ये आपके मूर्तिमान् 'तप' हैं; इनका दर्शन कीजिये। जिनकी

---

* ब्रह्मचर्येण तपसा मखपञ्चकवर्तनैः। दानेन नियमैश्चापि क्षमाशौचेन वल्लभ॥
अहिंसया सुशक्त्या च हास्तेयेनापि वर्तनैः। एतैर्दशभिरङ्गैस्तु धर्ममेव प्रपूरयेत्॥
(१२।४४-४५)

वाणी प्रसाद-गुणसे युक्त है, जो दीप्तिमान् दिखायी देते हैं, सम्पूर्ण जीवोंपर दया करना जिनका स्वभाव है तथा जो सर्वदा आपका पोषण करते हैं, वे ही 'दम' (इन्द्रिय-संयम) यहाँ व्यक्तरूप धारण करके उपस्थित हैं। जिनके मस्तकपर जटा है, जिनका स्वभाव कुछ कठोर जान पड़ता है, जिनके शरीरका रंग कुछ पीला है, जो अत्यन्त तीव्र और महान् सामर्थ्यशाली प्रतीत होते हैं तथा जिन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणका रूप धारण कर हाथमें तलवार ले रखी है, वे पापोंका नाश करनेवाले 'नियम' हैं। जो अत्यन्त श्वेत और महान् दीप्तिमान् हैं, जिनके शरीरका रंग शुद्ध स्फटिक मणिके समान जान पड़ता है, जिनके हाथमें जलसे भरा कमण्डलु है तथा जिन्होंने दाँतन ले रखी है, वे 'शौच' ही यहाँ ब्राह्मणका रूप धारण करके आये हैं।

स्त्रियोंमें यह शुश्रूषा है, जो सत्यसे विभूषित, परम सौभाग्यवती और अत्यन्त साध्वी है। जिसका स्वभाव अत्यन्त धीर है, जिसके सारे अङ्गोंसे प्रसन्नता टपक रही है, जिसका रंग गोरा और मुखपर हास्यकी छटा छा रही है, वह कमललोचना सरस्वती है। द्विजश्रेष्ठ ! यह दिव्य आभूषणोंसे युक्त क्षमा उपस्थित है, जो परम शान्त, सुस्थिर और अनेकों मङ्गलमय विधानोंसे सुशोभित है। महाप्राज्ञ ! तुम्हारी ज्ञानस्वरूपा शान्ति भी दिव्य आभूषणोंसे विभूषित होकर यहाँ आयी है। यह तुम्हारी प्रज्ञा है, जो परोपकारमें संलग्न, सत्यपरायण तथा स्वल्प भाषण करनेवाली है। यह क्षमाके साथ बड़ी प्रसन्न रहती है। इस यशस्विनीके शरीरका वर्ण श्याम है। जिसका शरीर तपाये हुए सोनेके समान उद्दीप्त दिखायी दे रहा है, वह महाभागा अहिंसा है। यह अत्यन्त प्रसन्न और अच्छी मन्त्रणासे युक्त है। यह यत्र-तत्र दृष्टि नहीं डालती। ज्ञानभावसे आक्रान्त हो सदा तपस्यामें लगी रहती है। महाभाग ! यह देखिये—आपकी श्रद्धा भी आयी है, जो नाना प्रकारकी बुद्धिसे आक्रान्त और अनेकों ज्ञानोंसे आकुल होनेपर भी सुस्थिर है। यह श्रद्धा मनोहर और मङ्गलमयी है। सबका शुभ चिन्तन करनेवाली, सम्पूर्ण जगत्की माता, यशस्विनी तथा गौरवर्णा है। इधर यह मेधा उपस्थित है, जिसके शरीरका रंग हंस और चन्द्रमाके समान श्वेत है, गलेमें मोतियोंका हार लटक रहा है और हाथमें पुस्तक तथा स्फटिकाक्षकी माला शोभा पा रही है। यह प्रज्ञा है, जो सदा ही अत्यन्त प्रसन्न रहा करती है; यह प्रज्ञादेवी पीत वस्त्रसे शोभा पा रही है। द्विजश्रेष्ठ ! जो त्रिभुवनका उपकार और पोषण करनेमें अद्वितीय है, जिसके शीलकी सदा ही प्रशंसा होती रहती है, वह दया भी आपके पास आयी है। यह वृद्धा, परम विदुषी, तपस्विनी, भावकी भार्या और मेरी माता है। सुव्रत ! मैं आपका मूर्तिमान् धर्म हूँ। ऐसा समझकर शान्त होइये। मेरी रक्षा कीजिये। विप्रवर ! आप कुपित क्यों हो रहे हैं ?

**दुर्वासाने कहा**—देव ! जिससे मुझे क्रोध हुआ है, वह कारण सुनिये। मैंने इन्द्रियसंयम और शौच आदि क्लेशमय साधनोंद्वारा अपने शरीरका शोधन किया तथा तपस्या की; किन्तु ऐसा करनेपर भी देख रहा हूँ—केवल मेरे ही ऊपर आपकी दया नहीं हो रही है। धर्मराज ! मैं आपके इस बर्तावको न्याययुक्त नहीं मानता। यही मेरे क्रोधका कारण है, दूसरा कुछ नहीं; इसलिये मैं आपको तीन शाप दूँगा।

'धर्म ! अब आप राजा और दासीपुत्र होइये। साथ ही स्वेच्छानुसार चाण्डाल-योनिमें भी प्रवेश कीजिये।' इस प्रकार तीन शाप देकर द्विजश्रेष्ठ दुर्वासा चले गये।

**सोमशर्माने पूछा**—भामिनि ! महात्मा दुर्वासाका शाप पाकर धर्मकी क्या अवस्था हुई ? उन शापोंका उपभोग उन्होंने किस प्रकार किया ? यदि जानती हो तो बताओ।

**सुमना बोली**—प्राणनाथ ! धर्मने भरतवंशमें राजा युधिष्ठिरके रूपमें जन्म ग्रहण किया। दासीपुत्र होकर जब वे उत्पन्न हुए, तब विदुर नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। अब तीसरे शापका उपभोग बतलाती हूँ—जिस समय महर्षि विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रको बहुत कष्ट पहुँचाया, उस समय परम बुद्धिमान् धर्म चाण्डालके स्वरूपको प्राप्त हुए थे।

★

## सुमनाके द्वारा ब्रह्मचर्य, साङ्गोपाङ्ग धर्म तथा धर्मात्मा और पापियोंकी मृत्युका वर्णन

**सोमशर्माने कहा**—भामिनि ! ब्रह्मचर्यके लक्षणका विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

**सुमना बोली**—नाथ ! सदा सत्यभाषणमें जिसका अनुराग है, जो पुण्यात्मा होकर साधुताका आश्रय लेता है, ऋतुकाल प्राप्त होनेपर अपनी स्त्रीके साथ समागम करता है, स्वयं दोषोंसे दूर रहता है और अपने कुलके सदाचारका कभी त्याग नहीं करता, वही सच्चा ब्रह्मचारी है। द्विजश्रेष्ठ ! यह मैंने गृहस्थके ब्रह्मचर्यका वर्णन किया है। यह ब्रह्मचर्य गृहस्थ पुरुषोंको सदा मुक्ति प्रदान करनेवाला है। अब मैं यतियों (संन्यासियों)के ब्रह्मचर्यका वर्णन करूँगी, आप ध्यान देकर सुनें। यतिको चाहिये कि वह इन्द्रियसंयम और सत्यसे युक्त हो पापसे सदा डरता रहे तथा स्त्रीके सङ्गका परित्याग करके ध्यान और ज्ञानमें निरन्तर संलग्न रहे। यह यतियोंका ब्रह्मचर्य बतलाया गया। अब आपके समक्ष वानप्रस्थके ब्रह्मचर्यका वर्णन करती हूँ, सुनिये। वानप्रस्थीको सदाचारसे रहना और काम-क्रोधका परित्याग करना चाहिये। वह उञ्छवृत्तिसे जीविका चलाये और प्राणियोंके उपकारमें संलग्न रहे। यह वानप्रस्थका ब्रह्मचर्य बताया गया।

अब सत्यका वर्णन करती हूँ। जिसकी बुद्धि पराये धन और परायी स्त्रियोंको देखकर लोलुपतावश उनके प्रति आसक्त नहीं होती, वही पुरुष सत्यनिष्ठ कहा गया है। अब दानका वर्णन करती हूँ; जिससे मनुष्य जीवित रहता है। भूखसे पीड़ित मनुष्यको भोजनके लिये अन्न अवश्य देना चाहिये। उसको देनेसे महान् पुण्य होता है तथा दाता मनुष्य सदा अमृतका उपभोग करता है। अपने वैभवके अनुसार प्रतिदिन कुछ-न-कुछ दान करना चाहिये। सहानुभूतिपूर्ण वचन, तृण, शय्या, घरकी शीतल छाया, पृथ्वी, जल, अन्न, मीठी बोली, आसन, वस्त्र या निवासस्थान और पैर धोनेके लिये जल—ये सब वस्तुएँ जो प्रतिदिन अतिथिको निष्कपट भावसे अर्पण करता है; वह इहलोक और परलोकमें भी आनन्दका अनुभव करता है। जो दान और स्वाध्याय आदि शुभ कर्मोंके द्वारा अपने प्रत्येक दिनको सफल बनाता है, वह इस जगत्में मनुष्य होकर भी देवता ही है—इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है।

अब मैं साङ्गोपाङ्ग धर्मके साधनभूत उत्तम नियमोंका वर्णन करती हूँ। जो देवताओं और ब्राह्मणोंकी पूजामें संलग्न रहता है, नित्य-निरन्तर शौच, सन्तोष आदि नियमोंका पालन करता है तथा दान, व्रत और सब प्रकारके परोपकारी कार्योंमें योग देता है, उसके इस कार्यको नियम कहा गया है। द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं क्षमाका स्वरूप बतलाती हूँ, सुनिये। दूसरोंद्वारा की हुई अपनी निन्दा सुनकर अथवा किसीके द्वारा मार खाकर भी जो क्रोध नहीं करता और स्वयं मार खाकर भी मारनेवाले व्यक्तिको नहीं मारता, वह क्षमाशील कहलाता है। अब शौचका वर्णन करती हूँ। जो राग-द्वेषसे रहित होकर प्रतिदिन स्नान और आचमन आदिका व्यवहार करता है और इस प्रकार जो बाहर तथा भीतरसे भी शुद्ध है, उसे शौचयुक्त (पवित्र) माना गया है। अब मैं अहिंसाका रूप बतलाती हूँ। विज्ञ पुरुषको किसी विशेष आवश्यकताके बिना एक तिनका भी नहीं तोड़ना चाहिये। संयमके साथ रहकर प्रत्येक जीवकी हिंसासे दूर रहना चाहिये और अपने प्रति जैसे बर्तावकी इच्छा होती है वैसा ही बर्ताव दूसरोंके साथ स्वयं भी करना चाहिये। अब शान्तिके स्वरूपका वर्णन करती हूँ। शान्तिसे सुखकी प्राप्ति होती है। अतः शान्तिपूर्ण आचरण अपना कर्तव्य है। कभी खिन्न नहीं होना चाहिये। प्राणियोंके साथ वैरभावका सर्वथा परित्याग करके मनमें भी कभी वैरका भाव नहीं आने देना चाहिये। अब अस्तेयका स्वरूप बतलाती हूँ। परधन और परस्त्रीका कदापि अपहरण न करे। मन, वाणी तथा शरीरके द्वारा भी कभी किसी दूसरेकी वस्तु लेनेकी चेष्टा न करे। अब दमका वर्णन करती हूँ। इन्द्रियोंका दमन करके मनके द्वारा उन्हें प्रकाश देते रहना और उनकी चञ्चलताका नाश

करना चाहिये। इससे मनुष्यमें चेतनाका विकास होता है। अब मैं शुश्रूषाका स्वरूप बतलाती हूँ। मन, वाणी और शरीरसे गुरुके कार्य-साधनमें लगे रहना शुश्रूषा है। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपसे धर्मका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया। जो मनुष्य ऐसे धर्ममें सदा संलग्न रहता है, उसे संसारमें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता—यह मैं आपसे सच-सच कह रही हूँ। महाप्राज्ञ! यह जानकर आप धर्मका अनुसरण करें।

**सोमशर्माने पूछा**—देवि! तुम्हारा कल्याण हो, तुम इस प्रकार धर्मकी परम पुण्यमयी उत्तम व्याख्या कैसे जानती हो? किसके मुँहसे तुमने यह सब सुना है?

**सुमना बोली**—महामते! मेरे पिताका जन्म भार्गव-वंशमें हुआ है। वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हैं। उनका नाम है महर्षि च्यवन। मैं उन्हींकी कन्या हूँ। वे मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानते थे। जिस-जिस तीर्थ, मुनि-समाज अथवा देवालयमें वे जाते, मैं भी उनके साथ वहाँ जाया करती थी। मेरे पिताजीके एक मित्र हैं, जिनका नाम है वेदशर्मा। कौशिकवंशमें उनका जन्म हुआ है। एक दिन वे घूमते-घामते पिताजीके पास आये। उस समय वे बहुत दुःखी थे और बारंबार चिन्तामग्न हो जाते थे। तब उनसे मेरे पिताने कहा—'सुव्रत! मालूम होता है आप किसी दुःखसे संतप्त हैं। आपको दुःख कैसे प्राप्त हुआ है, मुझे इसका कारण बतलाइये।' यह सुनकर वेदशर्माने कहा—'मेरी स्त्री बड़ी साध्वी और पतिव्रता है, किन्तु अबतक उसे कोई पुत्र नहीं हुआ। मेरा वंश चलानेवाला कोई नहीं है। यही मेरे दुःखका कारण है; आपने पूछा था, इसलिये बताया है।'

इसी बीचमें कोई सिद्ध पुरुष मेरे पिताके आश्रमपर आये। पिताजी और वेदशर्मा दोनोंने खड़े होकर भक्तिपूर्वक सिद्धका पूजन किया। भोजन आदि उपचारों और मीठे वचनोंसे उनका स्वागत किया। फिर आपने पहले जिस प्रकार प्रश्न किया था, उसी प्रकार उन दोनोंने भी सिद्धसे अपने मनकी बात पूछी। तब धर्मात्मा सिद्धने मेरे पिता और उनके मित्रसे इस प्रकार कहा—'धर्मके अनुष्ठानसे ही स्त्री, पुत्र और धन-धान्यकी प्राप्ति होती है।' उनके उपदेशसे वेदशर्माने धर्मका अनुष्ठान पूरा किया। उस धर्मसे उन्हें महान् सुख और सुयोग्य पुत्रकी प्राप्ति हुई। उन सिद्ध महात्माके सत्सङ्गसे ही धर्मके विषयमें मेरी बुद्धिका ऐसा निश्चय हुआ है।

**सोमशर्माने पूछा**—प्रिये! धर्मसे कैसी मृत्यु और कैसा जन्म होता है? शास्त्रके अनुसार उस मृत्यु और जन्मका लक्षण जैसा निश्चित किया गया हो, वह सब मुझे बताओ।

**सुमना बोली**—प्राणनाथ! जिसने सत्य, शौच, क्षमा, शान्ति, तीर्थ और पुण्य आदिके द्वारा धर्मका पालन किया है, उसकी मृत्युका लक्षण बतलाती हूँ। धर्मात्मा पुरुषको मृत्युके समय कोई रोग नहीं होता, उसके शरीरमें कोई पीड़ा नहीं होती; श्रम, ग्लानि, स्वेद और भ्रान्ति आदि उपद्रव भी नहीं होते। गीत-ज्ञान-विशारद दिव्यरूपधारी गन्धर्व और वेदपाठी ब्राह्मण उसके पास आकर मनोहर स्तुति किया करते हैं। वह स्वस्थ रहकर सुखदायक आसनपर विराजमान होता है। अथवा देवपूजामें बैठा होता है। ऐसा भी हुआ करता है कि धर्मपरायण बुद्धिमान् पुरुष [मृत्युकालमें] स्नानके लिये तीर्थ-स्थानमें पहुँचा हो। अग्निहोत्र-गृह, गोशाला, देवमन्दिर, बगीचा, पोखरा, पीपल या बड़का वृक्ष तथा पाकर अथवा बेलका पेड़—ये मृत्युके लिये पवित्र स्थान माने गये हैं। धर्मात्मा पुरुष धर्मराजके दूतोंको प्रत्यक्ष देखता है। वे स्नेहसे युक्त और मुसकराते हुए दिखायी देते हैं। वह मरनेवाला जीव स्वप्न, मोह तथा क्लेशके अधीन नहीं होता। धर्मराजके दूत उससे कहते हैं—'महाभाग! परम बुद्धिमान् धर्मराज आपको बुला रहे हैं।' दूतोंकी यह बात सुनकर उसे मोह और सन्देह नहीं होता। उसका चित्त प्रसन्न हो जाता है। वह ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न हो भगवान् श्रीविष्णुका स्मरण करता है और संतुष्ट एवं हृष्टचित्त होकर उन दूतोंके साथ चला जाता है।

**सोमशर्माने पूछा**—भद्रे! पापियोंकी मृत्यु किन लक्षणोंसे युक्त होती है, इसका विस्तारके साथ वर्णन करो।

**सुमना बोली**—प्राणनाथ! सुनिये, मैं महापातकी मनुष्योंकी मृत्युके स्थान और चेष्टाका वर्णन करती हूँ। दुष्टात्मा पुरुष विष्ठा और मूत्र आदि अपवित्र वस्तुओंसे युक्त और पापियोंसे भरे हुए भूभागमें रहकर बड़े दुःखसे प्राण त्याग करता है। चाण्डालके स्थानपर जाकर दुःखपूर्वक मरता है। गदहोंसे घिरी हुई भूमिमें, वेश्याके भवनमें तथा चमारके घरमें जाकर वह मृत्युको प्राप्त होता है। हड्डी, चमड़े और नखोंसे भरी हुई पृथ्वीपर पहुँचकर दुष्टात्मा पुरुषकी मृत्यु होती है। अब मैं उसे ले जानेकी इच्छासे आये हुए यमदूतोंकी चेष्टाका वर्णन करती हूँ। वे अत्यन्त भयानक, घोर और दारुण रूप धारण किये आते हैं। उनके शरीर अत्यन्त काले, पेट लंबे-लंबे और आँखें कुछ-कुछ पीली होती हैं। कोई पीले, कोई नीले और कोई अत्यन्त सफेद होते हैं। पापी मनुष्य उन्हें देखकर काँप उठता है, उसके शरीरसे बारंबार पसीना छूटने लगता है।

अब मैं दुःखी जीवकी चेष्टा बताती हूँ। लोभ और स्वादसे मोहित होकर पापी पुरुष जो पराये धन और परायी स्त्रियोंका अपहरण किये रहते हैं, पहले दूसरेसे ऋण लेकर बादमें उसे चुका नहीं पाते तथा असत्प्रतिग्रह आदि जो अन्य बड़े-बड़े पाप किये रहते हैं—सारांश यह कि मृत्युसे पहले वे जितने भी पापोंका आचरण किये रहते हैं, वे सभी महापापीके कण्ठमें आकर उसके कफको रोक देते और दुःसह दुःख पहुँचाते हैं। असह्य पीडाओंसे उसका कण्ठ घरघराने लगता है। वह बारंबार रोता और माता, पिता, भाई, पत्नी तथा पुत्रोंका स्मरण करता है। फिर महापापसे मोहित होकर वह सबको भूल जाता है। अत्यन्त पीडासे व्याकुल होनेपर भी उसके प्राण शीघ्रतापूर्वक नहीं निकलते। वह काँपता, तलमलाता और रह-रहकर मूर्छित हो जाता है। इस प्रकार लोभ और मोहसे युक्त मनुष्य सदा मूर्छित होकर ही प्राण त्यागता है। तत्पश्चात् यमराजके दूत उसे यमलोकमें ले जाते हैं।

उस समय उसको जो दुःख भोगना पड़ता है, उसका वर्णन करती हूँ। जहाँ ढेर-के-ढेर अंगारे बिछे होते हैं, उस मार्गपर पापीको घसीटते हुए ले जाया जाता है। वहाँ वह दुष्टात्मा जीव बारंबार आगमें जलता और छटपटाया करता है। जहाँ बारह सूर्योंके तापसे युक्त अत्यन्त तीव्र धूप पड़ती है, उसी मार्गसे उसे पहुँचाया जाता है। वहाँ वह सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे संतप्त और भूख-प्यासमे पीड़ित होता रहता है। यमदूत उसे गदा, डंडे और फरसोंसे मारते, कोड़ोंसे पीटते तथा गालियाँ सुनाते हैं। तदनन्तर वे पापीको उस मार्गपर ले जाते हैं, जहाँ जाड़ा अधिक पड़ता है और ठंडी हवाका झोंका सहना पड़ता है। पापी पुरुष शीतसे पीड़ित होकर उस मार्गको तय करता है; यमदूत उसे घसीटते हुए नाना प्रकारके दुर्गम स्थानोंमें ले जाते हैं। इस प्रकार देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले, सम्पूर्ण पापोंसे युक्त दुष्टात्मा पापी पुरुषको यमराजके दूत यमलोकमें ले जाते हैं।

वहाँ पहुँचकर वह दुष्टात्मा यमराजको काले अञ्जनकी राशिके समान देखता है। वे उग्र, दारुण और भयङ्कर रूप धारण किये भैंसेपर सवार दिखायी देते हैं। अनेकों यमदूत उन्हें घेरे खड़े रहते हैं। उनके साथ सब प्रकारके रोग और चित्रगुप्त भी उपस्थित होते हैं। द्विजश्रेष्ठ! उस समय भगवान् धर्मराजका मुख विकराल दाढ़ोंके कारण अत्यन्त भयानक और कालके समान प्रतीत होता है। यमराज धर्ममें बाधा डालनेवाले उस महापापी दुष्टको देखते और अत्यन्त दुःखदायी, दुस्सह अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा पीडा पहुँचाते हुए उसे कठोर दण्ड देते हैं। वह पापी एक हजार युगोंतक नाना प्रकारकी यातनाओंमें पकाया जाता है। इस प्रकार दुष्ट बुद्धिवाला पापात्मा मनुष्य अपने पापका उपभोग करता है। तत्पश्चात् वह जिन-जिन योनियोंमें जन्म लेता है, उसका भी वर्णन करती हूँ। कुछ कालतक कुत्तेकी योनिमें रहकर वह दुष्टात्मा अपना पाप भोगता है। उसके बाद व्याघ्र और फिर गदहा होता है। तदनन्तर बिलाव, सूअर और साँपकी योनिमें जन्म लेता है। इस तरह अनेक भेदोंवाली सम्पूर्ण पापयोनियोंमें उसे बारंबार जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार मैंने आपसे पापियोंके जन्मका सारा वृत्तान्त भी बतला दिया।

★

## वसिष्ठजीके द्वारा सोमशर्माके पूर्वजन्म-सम्बन्धी शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन तथा उन्हें भगवान्‌के भजनका उपदेश

**सोमशर्माने पूछा**—कल्याणी ! मैं किस प्रकार सर्वज्ञ और गुणवान् पुत्र प्राप्त कर सकूँगा ?

**सुमना बोली**—स्वामिन् ! आप महामुनि वसिष्ठजीके पास जाइये; वे धर्मके ज्ञाता हैं, उन्हींसे प्रार्थना कीजिये। उनसे आपको धर्मज्ञ एवं धर्मवत्सल पुत्रकी प्राप्ति होगी।

**सूतजी कहते हैं**—पत्नीके यों कहनेपर द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा सब बातोंके जाननेवाले, तेजस्वी और तपस्वी महात्मा वसिष्ठजीके पास गये। वे गङ्गाजीके तटपर स्थित अपने पवित्र आश्रममें विराजमान थे। सोमशर्माने बड़ी भक्तिके साथ बारंबार उन्हें दण्डवत्-प्रणाम किया। तब पापरहित महातेजस्वी ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजी उनसे बोले—'महामते ! इस पवित्र आसनपर सुखसे बैठो।' यह कहकर उन योगीश्वरने पूछा—'महाभाग ! तुम्हारे पुण्यकर्म और अग्निहोत्र आदि कार्य कुशलसे हो रहे हैं न ? शरीरसे तो नीरोग रहते हो न ? धर्मका पालन तो सदा करते ही होगे। द्विजश्रेष्ठ ! बताओ, मैं तुम्हारी कौन-सी प्रिय कामना पूर्ण करूँ ?' इस प्रकार संभाषण करके वसिष्ठजी चुप हो गये। तब सोमशर्माने कहा—'तात ! किस पापके कारण मुझे दरिद्रताका कष्ट भोगना पड़ता है ? मुझे पुत्रका सुख क्यों नहीं मिलता, इस बातका मेरे मनमें बड़ा सन्देह है। किस पापसे ऐसा हो रहा है, यह बताइये। महामते ! मैं महान् पापसे मोहित एवं विवेकशून्य हो गया था, अपनी प्यारी पत्नीके समझाने और भेजनेसे आज आपके पास आया हूँ।

**वसिष्ठजीने कहा**—द्विजश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे सामने पुत्रके पवित्र लक्षणका वर्णन करता हूँ। जिसका मन पुण्यमें आसक्त हो, जो सदा सत्यधर्मके पालनमें तत्पर रहता हो और जो बुद्धिमान्, ज्ञानसम्पन्न, तपस्वी, वक्ताओंमें श्रेष्ठ, सब कर्मोंमें कुशल, धीर, वेदाध्ययन-परायण, सम्पूर्ण शास्त्रोंका वक्ता, देवता और ब्राह्मणोंका पुजारी, समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला, ध्यानी, त्यागी, प्रिय वचन बोलनेवाला, भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर, नित्य शान्त, जितेन्द्रिय, सदा जप करनेवाला, पितृभक्तिपरायण, सदा समस्त स्वजनोंपर स्नेह रखनेवाला, कुलका उद्धारक, विद्वान् तथा कुलको सन्तुष्ट करनेवाला हो—ऐसे गुणोंसे युक्त उत्तम पुरुष ही सुख देनेवाला होता है। इसके सिवा दूसरे तरहके पुत्र सम्बन्ध जोड़कर केवल शोक और सन्ताप देते हैं। ऐसा पुत्र किस कामका। उसके होनेसे कोई लाभ नहीं है। महाप्राज्ञ ! तुम पूर्वजन्ममें शूद्र थे। तुम्हें धर्माधर्मका ज्ञान नहीं था, तुम बड़े लोभी थे। तुम्हारे एक स्त्री और बहुत-से पुत्र थे। तुम दूसरोंके साथ सदा द्वेष रखते थे। तुमने सत्यका कभी श्रवण नहीं किया था। तीर्थोंकी यात्रा नहीं की थी। महामते ! तुमने एक ही काम किया था—खेती करना। बार-बार तुम उसीमें लगे रहते थे। द्विजश्रेष्ठ ! तुम पशुओंका पालन भी करते थे। पहले गाय पालते थे, फिर भैंस और घोड़ोंको भी पालने लगे। तुमने अन्नको बहुत महँगा कर रखा था। तुम इतने निर्दयी थे कि कभी किसीको किञ्चित् भी दान नहीं किया। देवताओंकी पूजा नहीं की। पर्व आनेपर ब्राह्मणोंको धन नहीं दिया तथा श्राद्धकाल उपस्थित होनेपर भी तुमने श्रद्धापूर्वक कुछ नहीं किया। तुम्हारी साध्वी स्त्री कहती थी—'आज श्राद्धका दिन है। यह श्वशुरके श्राद्धका समय है और यह सासके।' महामते ! उसकी ये बातें सुनकर तुम घर छोड़ कहीं अन्यत्र भाग जाते थे। तुमने धर्मका मार्ग न कभी देखा था, न सुना ही था। लोभ ही तुम्हारी माता, लोभ ही पिता, लोभ ही भ्राता और लोभ ही स्वजन एवं बन्धु था। तुमने सदाके लिये धर्मको तिलाञ्जलि देकर एकमात्र लोभका ही आश्रय लिया था; इसीलिये तुम दुःखी और गरीबीसे पीड़ित हुए हो।

तुम्हारे हृदयमें प्रतिदिन महातृष्णा बढ़ती जाती थी। रातमें सो जानेपर भी तुम सदा धनकी ही चिन्तामें लगे

रहते थे। इस प्रकार क्रमशः हजार, लाख, करोड़, अरब, खरब और दस खरब सोनेकी मुहरें तुम्हें प्राप्त हो गयीं; फिर भी तृष्णा तुम्हारा पिंड नहीं छोड़ती थी। वह सदा बढ़ती ही रहती थी। तुमने कभी दान, होम या धनका उपभोग भी नहीं किया। जितना कमाया, सब जमीनके अंदर गाड़ दिया। तुम्हारे पुत्रोंको भी उस गड़े हुए धनका पता न था। तुम्हारे हृदयमें तृष्णाकी आग प्रज्वलित होती रहती थी। उसीके दुःखसे तुम्हें कभी सुख नहीं मिलता था। तृष्णाकी आगसे संतप्त होकर तुम हाहाकार मचाते और अचेत रहते थे। विप्रवर! इस प्रकार मोहमें पड़े-पड़े ही तुम कालके अधीन हो गये। स्त्री और पुत्र पूछते ही रह गये; किन्तु तुमने उन्हें न तो उस धनका पता बताया और न उन्हें दिया ही। तुम प्राण त्यागकर यमलोकमें चले गये। इस प्रकार मैंने तुम्हारे पूर्वजन्मका सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

विप्रवर! उसी कर्मके कारण तुम निर्धन और दरिद्र हो। जिसके ऊपर भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं, उसीके घरमें सदा सुशील, ज्ञानी और सत्यधर्मपरायण पुत्र होते हैं। संसारमें जिसको भक्तिमान् श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्ति हुई है, वह भगवान्‌का कृपापात्र है। भगवान् श्रीविष्णुकी कृपाके बिना कोई भी स्त्री, पुत्र, उत्तम जन्म तथा उत्तम कुलको और श्रीविष्णुके परम धामको नहीं पा सकता।

**सोमशर्माने पूछा**—ज्ञान-विज्ञानके पण्डित विप्रवर वसिष्ठजी! यदि ऐसी बात है तो मुझे ब्राह्मण-वंशमें जन्म कैसे मिला? इसका सारा कारण बतलाइये।

**वसिष्ठजी बोले**—ब्रह्मन्! पूर्वजन्ममें तुम्हारे द्वारा एक धर्मसम्बन्धी कार्य भी बन गया था, उसे बताता हूँ; उन दिनों एक निष्पाप, सदाचारी, अच्छे विद्वान्, विष्णुभक्त और धर्मात्मा ब्राह्मण थे, जो तीर्थ-यात्राके व्याजसे समूची पृथ्वीपर अकेले विचरण किया करते थे। एक दिन वे महामुनि घूमते-घामते तुम्हारे घरपर आये। द्विजश्रेष्ठ! उस समय उन्होंने अपने ठहरनेके लिये तुमसे कोई स्थान माँगा। तुम बड़ी प्रसन्नताके साथ बोले—'विद्वन्! अहा, आज मैं धन्य हो गया। आज मैंने पावन तीर्थकी यात्रा कर ली तथा इस समय मुझे आपके दर्शनसे तीर्थसेवनका फल प्राप्त हो गया।' यह कहकर तुमने उन्हें ठहरनेके लिये परम पवित्र गोशालाका स्थान दिखलाया और वहाँ ठहराकर उनके शरीरकी सेवा करके दोनों पैरोंको भी दबाया। फिर उनके चरणोंको जलसे धोकर चरणोदकसे अपने मस्तकका अभिषेक किया। तत्पश्चात् तुरंत ही दूध, दही, घी और मट्ठेके साथ उन ब्राह्मण-देवताको अन्न अर्पण किया।

महामते! इस प्रकार अपनी स्त्रीसहित सेवा करके तुमने ब्राह्मणको बहुत सन्तुष्ट कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल अत्यन्त शुभकारक पुण्य दिवस आया। उस दिन शुद्ध आषाढ मासकी शुक्ला द्वादशी थी, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है; उसी तिथिको भगवान् श्रीविष्णु योगनिद्राका आश्रय लेते हैं। वह तिथि आनेपर बुद्धिमान् और विद्वान् पुरुष घरके सारे काम छोड़कर भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें संलग्न हो गये। गीत और मङ्गलवाद्योंके द्वारा परम उत्सव मनाने लगे। समस्त ब्राह्मण वेदके सूक्तों और मङ्गलमय स्तोत्रोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति करने लगे। ऐसे महोत्सवका अवसर पाकर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण उस दिन वहीं ठहर गये। उन्होंने एकादशीका व्रत किया और उसका माहात्म्य भी पढ़कर सुनाया। तुमने अपनी स्त्री और पुत्रोंके साथ एकादशीसे होनेवाले उत्तम पुण्यका वर्णन सुना। उस महापुण्यमय प्रसङ्गको सुनकर स्त्री और पुत्रोंसे प्रेरित हो ब्राह्मणके संसर्गसे तुमने भी एकादशी-व्रतका आचरण किया। स्त्री और पुत्रोंके साथ जाकर प्रातःकाल स्नान किया और प्रसन्न मनसे गन्ध-पुष्प आदि पवित्र उपचारों तथा सब प्रकारके नैवेद्योंद्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजा की। फिर नृत्य और गीत आदिके द्वारा उत्सव मनाते हुए रात्रिमें जागरण किया। तत्पश्चात् भगवान्‌को स्नान कराकर भक्तिके साथ बारंबार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और महात्मा ब्राह्मणके दिये हुए भगवान्‌के चरणोदकका पान किया, जो परम शान्ति प्रदान करनेवाला है। इसके बाद ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके तुमने उन्हें उत्तम दक्षिणा दी और पुत्र एवं पत्नी आदिके साथ व्रतका पारण किया। इस प्रकार भक्ति और सद्भावके द्वारा तुमने ब्राह्मणको

भलीभाँति प्रसन्न कर लिया। अतः ब्राह्मणके सङ्ग और भगवान् श्रीविष्णुके प्रसादसे सत्यधर्ममें स्थित होनेके कारण तुम्हें ब्राह्मणका शरीर प्राप्त हुआ है।

तुमने धनके लालचमें आकर पुत्रका स्नेह त्याग दिया। उसी पापका यह फल है कि तुम पुत्रहीन हो गये। विप्रवर! उत्तम पुत्र, उत्तम कुल, धन, धान्य, पृथ्वी, स्त्री, उत्तम जन्म, श्रेष्ठ मृत्यु, सुन्दर भोग, सुख, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष आदि जो-जो दुर्लभ वस्तुएँ हैं, वे सभी परमात्मा भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे प्राप्त होती हैं। इसलिये अबसे भगवान् नारायणकी आराधना करके तुम उस उत्कृष्ट पदको प्राप्त कर सकोगे, जो श्रीविष्णुका परमपद कहलाता है। महाभाग! यह जानकर तुम श्रीनारायणके भजनमें लग जाओ।

**सूतजी कहते हैं**—वसिष्ठजीके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर वे महानुभाव ब्राह्मण हर्षमें भर गये और भक्तिपूर्वक महर्षि वसिष्ठके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले अपने घरको पधारे। वहाँ पहुँचकर अपनी स्त्री सुमनासे प्रसन्नतापूर्वक बोले—'प्रिये! तुम्हारी कृपासे ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीके द्वारा ही मुझे अपने पूर्वजन्मकी सारी चेष्टाएँ ज्ञात हो गयीं।

★

## सोमशर्माके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना, भगवान्‌का उन्हें दर्शन देना तथा सोमशर्माका उनकी स्तुति करना

**सूतजी कहते हैं**—तदनन्तर, सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् सोमशर्मा अपनी स्त्री सुमनाके साथ नर्मदाके अत्यन्त पुण्यदायक तटपर गये और कपिला-संगम नामक पुण्यतीर्थमें नहाकर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करके शान्तचित्तसे भगवान् नारायणके मङ्गलमय नामका जप करते हुए तपस्या करने लगे। महामना सोमशर्मा द्वादशाक्षर मन्त्रका जप और भगवान्‌का ध्यान करते थे। वे सदा निश्चिन्त होकर बैठने, सोने, चलने और स्वप्नके समय भी केवल भगवान् श्रीविष्णुकी ओर ही दृष्टि रखते थे। उन्होंने काम-क्रोधका परित्याग कर दिया था। साथ ही पातिव्रत्य-धर्ममें तत्पर रहनेवाली परम सौभाग्यवती सती-साध्वी सुमना भी अपने तपस्वी पतिकी सेवामें लगी रहती थी। सोमशर्मा जब भगवान्‌का ध्यान करने लगे, उस समय अनेक प्रकारके विघ्नोंने सामने आकर उन्हें भय दिखाया। भयंकर विषवाले काले साँप उनके पास पहुँच जाते थे। सिंह, बाघ और हाथी उनकी दृष्टिमें आकर भय उत्पन्न करते थे। इस प्रकार बड़े-बड़े विघ्नोंसे घिरे रहनेपर भी वे महाबुद्धिमान् धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानसे कभी विचलित नहीं होते थे।

एक दिनकी बात है, एक महाभयानक सिंह भयंकर गर्जना करता हुआ वहाँ आया; उसे देखकर

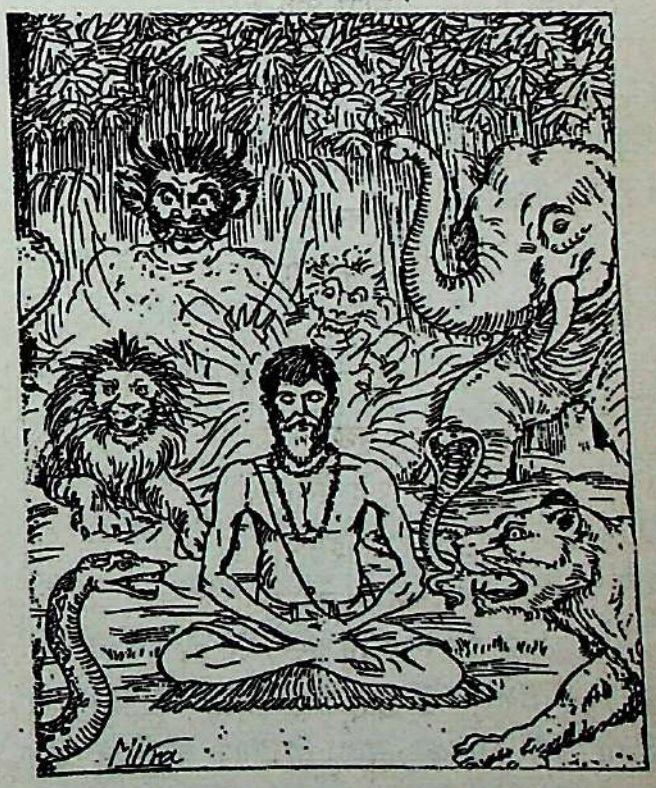

सोमशर्मा भयसे थर्रा उठे और भगवान् श्रीनरसिंह (विष्णु)का ध्यान करने लगे। इन्द्रनीलमणिके समान श्याम विग्रहपर पीताम्बर शोभा पा रहा है। श्रीभगवान्‌का बल और तेज महान् है। वे अपने चारों हाथोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये

हुए हैं। मोतियोंका विशाल हार चन्द्रमाकी भाँति चमक रहा है। उसके साथ ही कौस्तुभमणि भी भगवान्‌के श्रीविग्रहको उद्भासित कर रही है। श्रीवत्सका चिह्न वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा रहा है। श्रीभगवान् सब प्रकारके आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न हैं। कमलके समान खिले हुए नेत्र, मुखपर मुसकानकी मनोहर छटा, स्वाभाविक प्रसन्नता और रत्नमयं हार उनकी शोभाको दुगुनी कर रहे हैं। इस प्रकार परम शोभायमान भगवान् श्रीविष्णुकी मनोहर झाँकीका सोमशर्माने ध्यान किया।

तत्पश्चात् वे उनकी स्तुति करने लगे—'शरणागत-वत्सल श्रीकृष्ण! आप ही मुझे शरण देनेवाले हैं। देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। जिन परमात्माके उदरमें तीनों लोक और सात भुवन स्थित हैं, उन्हींकी शरणमें मैं आ पड़ा हूँ, भय मेरा क्या करेगा। कृत्या आदि प्रबल विघ्न भी जिनसे भय मानते हैं तथा जो सबको दण्ड देनेमें समर्थ हैं, उन भगवान्‌के मैं शरणागत हूँ। जो समस्त देवताओं, महाकाय दानवों तथा क्लेश उठानेवाले भक्तोंके भी आश्रय हैं, उन भगवान्‌की मैं शरणमें आया हूँ। जो भयका नाश करनेके लिये अभयरूप बने हुए हैं और पापोंके नाशके लिये ज्ञानवान् हैं तथा जो ब्रह्मरूपसे एक—अद्वितीय हैं, उन भगवान्‌की मैं शरणमें हूँ। जो रोगोंका नाश करनेके लिये औषधरूप हैं, जिनमें रोग-शोकका नाम भी नहीं है, जो लौकिक आनन्दसे भी शून्य हैं, उन भगवान्‌की मैं शरणमें हूँ। जो अविचल लोकोंको भी विचलित कर सकते हैं, उन भगवान्‌की मैं शरणमें आया हूँ; भय मेरा क्या करेगा। जो समस्त साधुओंका पालन करनेवाले हैं, जिनकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति हुई है तथा जो विश्वात्मा इस विश्वकी सदा ही रक्षा करते हैं, उन भगवान्‌की मैं शरणमें आया हूँ।

'जो सिंहके रूपमें मेरे सामने उपस्थित होकर भय दिखा रहे हैं, उन भक्तभयहारी भगवान् श्रीनरसिंहजीकी मैं शरणमें आया हूँ। ग्राहसे युद्ध करते समय आपत्तिमें पड़ा हुआ विशालकाय गजराज जिनकी शरणमें आया था और जो गजेन्द्रमोक्षकी लीलामें स्वयं उपस्थित हुए थे, उन शरणागतवत्सल प्रभुकी मैं शरणमें आया हूँ। हिरण्याक्षका वध करनेवाले भगवान् श्रीवराहकी मैं शरणमें हूँ। ये सब जीव मृत्युका रूप धारण करके मुझे भय दिखा रहे हैं, किन्तु मैं अमृतकी शरणमें पड़ा हूँ। श्रीहरि वेदोंका ज्ञान प्रदान करनेवाले, ब्राह्मण-भक्त, ब्रह्मा तथा ब्रह्मज्ञानस्वरूप हैं; मैं उनकी शरणमें पड़ा हूँ। जो निर्भय, संसारका भय दूर करनेवाले और भयदाता हैं, उन भयरूप भगवान्‌की मैं शरणमें हूँ; भय मेरा क्या करेगा। जो समस्त पुण्यात्माओंका उद्धार और सम्पूर्ण पापियोंका विनाश करनेवाले हैं, उन धर्मरूप भगवान् श्रीविष्णुकी मैं शरणमें पड़ा हूँ।

'यह परम प्रचण्ड आँधी मेरे शरीरको अत्यन्त पीड़ा दे रही है, मैं इसे भी भगवान्‌का ही स्वरूप मानकर इसकी शरणमें हूँ, अतः ये भगवान् वायु मुझे सदा ही आश्रय प्रदान करें। अत्यन्त शीत, अधिक वर्षा और दुःसह ताप देनेवाली धूप—इन सबके रूपमें जिन भगवान्‌का साक्षात्कार हो रहा है, मैं उन्हींकी शरणमें आया हूँ। ये जो कालरूपधारी जीव यहाँ आकर मुझे भय देते हुए विचलित कर रहे हैं, सब-के-सब भगवान् श्रीविष्णुके स्वरूप हैं; मैं सर्वदा इनकी शरणमें हूँ। जिन्हें सर्वदेवस्वरूप, परमेश्वर, केवल, ज्ञानमय और प्रधानरूप बतलाते हैं, उन सिद्धोंके स्वामी आदिसिद्ध भगवान् श्रीनारायणकी मैं शरणमें हूँ।'

इस प्रकार प्रतिदिन भगवान् श्रीकेशवका ध्यान और स्तवन करते हुए सोमशर्माने अपनी भक्तिके बलसे भगवान्‌को हृदयमें बिठा लिया। उनका उद्यम और पुरुषार्थ देखकर भगवान् श्रीहृषीकेश प्रकट हो गये और उन्हें हर्ष प्रदान करते हुए बोले—'महाप्राज्ञ सोमशर्मन्! अपनी पत्नीके साथ मेरी बात सुनो; विप्रवर! मैं वासुदेव हूँ, सुव्रत! तुम मुझसे कोई उत्तम वर माँगो।' श्रीभगवान्‌का यह कथन सुनकर द्विजश्रेष्ठ सोमशर्माने अपने नेत्र खोले; देखा तो विश्वके स्वामी श्रीभगवान् दिव्यरूप धारण किये सामने खड़े हैं। उनके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्याम है, वे महान् अभ्युदयशाली और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं। सम्पूर्ण

आयुध उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। उनका श्रीविग्रह दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न है। नेत्र खिले हुए कमलके समान हैं। पीतवस्त्र श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहा है। देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णु शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये गरुड़पर विराजमान हैं। वे इस जगत् तथा ब्रह्मा आदिके भी भलीभाँति भरण-पोषण करनेवाले हैं। यह विश्व उन्हींका स्वरूप है। वे सनातन रूप धारण करनेवाले हैं। वे विश्वसे अतीत, निराकार परमात्मा हैं।

भगवान् श्रीजनार्दनको इस रूपमें उपस्थित देख विप्रवर सोमशर्मा महान् हर्षमें भर गये और करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी एवं लक्ष्मीसहित शोभा पानेवाले श्रीभगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़े अपनी स्त्री सुमनाके साथ उनकी स्तुति करने लगे—'देव! जगन्नाथ! आपकी जय हो, सबको सम्मान देनेवाले लक्ष्मीपते! आपकी जय हो। योगियोंके स्वामिन्! योगीन्द्र! आपकी जय हो। यज्ञके स्वामी हरे! आपकी जय हो। विष्णुरूपसे यज्ञेश्वर! और शिवरूपसे यज्ञविध्वंसक! सनातन और सर्वव्यापक परमेश्वर! आपकी जय हो, जय हो। सर्वेश्वर! अनन्त! आपकी जय हो। जयस्वरूप प्रभो! आपको मेरा प्रणाम है। ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ! आपकी जय हो। ज्ञाननायक! आपकी जय हो। सब कुछ देनेवाले सर्वज्ञ परमेश्वर! आपकी जय हो। सत्त्वगुणको उत्पन्न करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो।

'यज्ञव्यापी परमेश्वर! आप प्रज्ञास्वरूप हैं, आपकी जय हो। प्राण प्रदान करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। पापनाशक! पुण्येश्वर! आपकी जय हो। पुण्यपालक हरे! आपकी जय हो। ज्ञानस्वरूप ईश्वर! आपकी जय हो। आप ज्ञानगम्य हैं, आपको नमस्कार है। कमललोचन! आपकी जय हो। आपकी नाभिसे कमलका प्रादुर्भाव हुआ था; अतः पद्मनाभ नामसे प्रसिद्ध! आपको प्रणाम है। गोविन्द! आपकी जय हो। गोपाल! आपकी जय हो। शङ्ख धारण करनेवाले निर्मलस्वरूप परमात्मन्! आपकी जय हो। चक्र धारण करनेवाले अव्यक्तरूप परमेश्वर! व्यक्तरूपधारी आपको नमस्कार है। प्रभो! आपके अङ्ग पराक्रमसे शोभा पा रहे हैं, आपकी जय हो। विक्रम-नायक! आपकी जय हो। विद्यासे विलसित रूपवाले देवेश्वर! आपकी जय हो। वेदमय परमेश्वर! आपको नमस्कार है। पराक्रमसे सुशोभित अङ्गोंवाले प्रभो! आपकी जय हो। उद्यम प्रदान करनेवाले देव! आपकी जय हो। आप ही उद्यमके योग्य समय और उद्यमरूप हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। भगवन्! आप उद्यममें समर्थ हैं, आपकी जय हो। उद्यम करानेवाले भी आप ही हैं, आपकी जय हो। युद्धोद्योगमें प्रवृत्त होनेवाले आप सर्वात्माको नमस्कार है।

'सुवर्ण आपका तेज है, आपको नमस्कार है। आप विजयी वीर हैं, आपको नमस्कार है। आप अत्यन्त तेजःस्वरूप और सर्वतेजोमय हैं, आपको प्रणाम है। आप दैत्य-तेजके विनाशक और पापमय तेजका अपहरण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। गौओं और ब्राह्मणोंका हित-साधन करनेवाले आप परमात्माको प्रणाम है। आप हविष्य-भोजी तथा हव्य और कव्यका वहन करनेवाले अग्नि हैं, आप ही स्वधारूप हैं; आपको नमस्कार है। आप स्वाहारूप, यज्ञस्वरूप और योगके बीज हैं; आपको नमस्कार है। हाथमें शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले, आप पापहारी हरिको प्रणाम है।

'कार्य-कारण-रूप जगत्‌को प्रेरित करनेवाले विज्ञानशाली परमेश्वरको नमस्कार है। वेदस्वरूप भगवान्‌को प्रणाम है। सबको पवित्र करनेवाले प्रभुको नमस्कार है। सबके क्लेशोंका अपहरण करनेवाले, हरित केशोंसे युक्त श्रीभगवान्‌को प्रणाम है। विश्वके आधारभूत परमात्मा केशवको नमस्कार है। कृपामय और आनन्दमय ईश्वरको नमस्कार है। क्लेशोंका नाश करनेवाले नित्यशुद्ध भगवान् श्रीअनन्तको नमस्कार है। जिनका स्वरूप नित्य आनन्दमय है, जो दिव्य होनेके साथ ही दिव्यरूप धारण करते हैं, ग्यारह रुद्र जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं तथा ब्रह्माजी भी जिनके सामने मस्तक झुकाते हैं, उन भगवान्‌को प्रणाम है। प्रभो! देवता और असुरोंके स्वामी भी आपके चरणकमलोंमें

माथा टेकते हैं। आप देवेश, अमृत और अमृतात्मा हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। आप क्षीरसागरमें निवास करनेवाले और लक्ष्मीके प्रियतम हैं, आपको नमस्कार है। आप ओंकार, विशुद्ध तथा अविचलरूप हैं; आपको बारंबार प्रणाम है। आप व्यापी, व्यापक और सब प्रकारके दुःखोंको दूर करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है।

'वराहरूपधारी आपको प्रणाम है। महाकच्छपके रूपमें आपको नमस्कार है। वामन और नृसिंहका रूप धारण करनेवाले आप परमात्माको प्रणाम है। सर्वज्ञ मत्स्यभगवान्‌को प्रणाम है। श्रीराम, कृष्ण, ब्राह्मणश्रेष्ठ कपिल और हयग्रीवके रूपमें अवतीर्ण हुए आप भगवान्‌को प्रणाम है।'

इस प्रकार इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीजनार्दनका स्तवन करके सोमशर्माने फिर कहा—'प्रभो! ब्रह्माजी भी आपके पावन गुणोंकी सीमाको नहीं जानते तथा सर्वेश्वर! रुद्र और इन्द्र भी आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं; फिर दूसरा कौन आपके गुणोंका वर्णन कर सकता है। मुझमें बुद्धि ही कौन-सी है, जो मैं आपकी स्तुति कर सकूँ। केशव! मैंने अपनी छोटी बुद्धिके अनुसार आपके निर्गुण और सगुण रूपोंका स्तवन किया है। सर्वेश! मैं जन्म-जन्मसे आपका ही दास हूँ। लोकेश! मुझपर दया कीजिये।'

★

## श्रीभगवान्‌के वरदानसे सोमशर्माको सुव्रत नामक पुत्रकी प्राप्ति तथा सुव्रतका तपस्यासे माता-पितासहित वैकुण्ठलोकमें जाना

**श्रीहरि बोले**—ब्रह्मन्! मैं तुम्हारी इस तपस्या, पुण्य, सत्य तथा पावन स्तोत्रसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। मुझसे कोई वर माँगो।

**सोमशर्माने कहा**—प्रभो! पहले तो आप मुझे भलीभाँति निश्चित किया हुआ एक वर यह दीजिये कि मैं प्रत्येक जन्ममें आपकी भक्ति करता रहूँ। दूसरा यह कि मुझे मोक्ष प्रदान करनेवाले अपने अविचल परमधामका दर्शन कराइये। तीसरे वरके रूपमें मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये, जो अपने वंशका उद्धारक, दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न, विष्णुभक्तिपरायण, मेरे कुलको धारण करनेवाला, सर्वज्ञ, सर्वस्व—दान करनेवाला, जितेन्द्रिय, तप और तेजसे युक्त, देवता, ब्राह्मण तथा इस जगत्‌का पालन करनेवाला, श्रीभगवान् (आप)का पुजारी और शुभ सङ्कल्पवाला हो। इसके सिवा, श्रीकेशव! आप मेरी दरिद्रता हर लीजिये।

**श्रीहरि बोले**—द्विजश्रेष्ठ! ऐसा ही होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मेरे प्रसादसे तुमको सुयोग्य पुत्रकी प्राप्ति होगी, जो तुम्हारे वंशका उद्धार करनेवाला होगा। तुम इस मनुष्यलोकमें भी परम उत्तम दिव्य एवं मनुष्योचित भोगोंका उपभोग करोगे। तदनन्तर तुम परमगतिको प्राप्त होगे।

इस प्रकार भगवान् श्रीहरि स्त्रीसहित ब्राह्मणको वरदान देकर अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा अपनी पत्नी सुमनाके साथ नर्मदाके पुण्यदायक तटपर उस परमपावन उत्तम तीर्थ अमरकण्टकमें रहकर दान-पुण्य करने लगे। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जानेपर एक दिन सोमशर्मा कपिला और नर्मदाके सङ्गममें स्नान करके निकले और घर आकर ब्राह्मणोचित कर्ममें लग गये। उस दिन व्रतसे शोभा पानेवाली परम सौभाग्यवती सुमनाने पतिके सहवाससे गर्भ धारण किया। समय आनेपर उस बड़भागिनीने देवताओंके समान कान्तिमान् उत्तम पुत्रको जन्म दिया, जिसके शरीरसे तेजोमयी किरणें छिटक रही थीं। उसके जन्मके समय आकाशमें बारंबार देवताओंके नगारे बजने लगे। तत्पश्चात् ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर वहाँ आये और स्वस्थ चित्तसे उस बालकका नाम उन्होंने 'सुव्रत' रखा। नामकरण करके महाबली देवता स्वर्गको चले गये।

उनके जानेके पश्चात् द्विजश्रेष्ठ सोमशर्माने

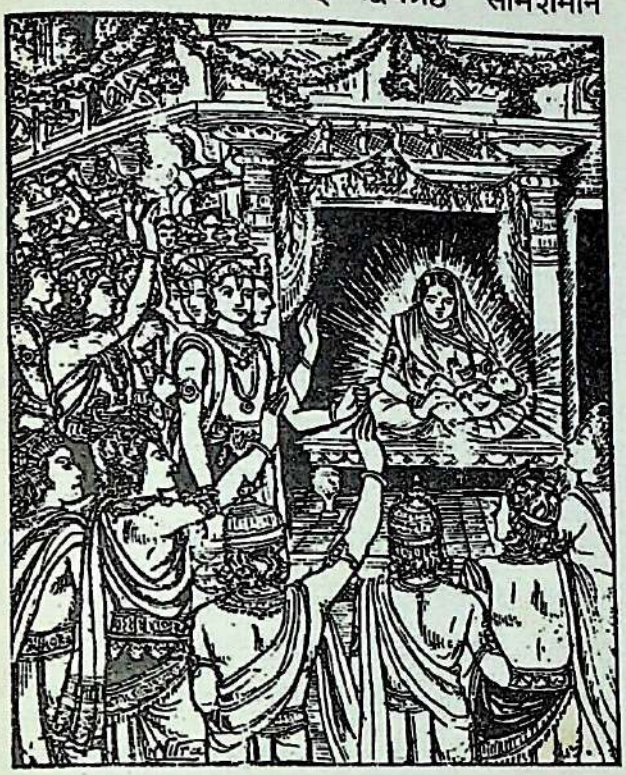

बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये। उस बड़भागी पुत्र सुव्रतके, जो भगवान्‌की कृपासे प्राप्त हुआ था, जन्म लेनेपर ब्राह्मणके घरमें धन-धान्यसे परिपूर्ण महालक्ष्मी निवास करने लगी। हाथी, घोड़े, भैंसे, गौएँ, सोने और रत्न आदि किसी भी वस्तुकी कमी न रही। सोमशर्माका घर रत्नराशिसे कुबेर-भवनकी भाँति शोभा पाने लगा। ब्राह्मणने दान-पुण्य आदि धर्मोंका अनुष्ठान किया। तीर्थोंमें जाकर वे नाना प्रकारके पुण्योंमें लगे रहे और भी जो-जो दान-पुण्य हो सकते हैं, उन सबका उन्होंने अनुष्ठान किया। मेधावी सोमशर्माका सारा जीवन ही ज्ञान और पुण्यके उपार्जनमें लगा रहा। उन्होंने बड़े हर्षके साथ पुत्रका विवाह किया। फिर पुत्रके भी पुत्र उत्पन्न हुए, जो बड़े ही पुण्यात्मा और उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थे। वे भी सदा सत्यवादी, धर्मात्मा, तपस्वी तथा दान-धर्ममें संलग्न थे। उन पौत्रोंके भी पुण्यसंस्कार सोमशर्माने ही सम्पन्न किये। सुमना और सोमशर्मा दोनों ही सौभाग्यशाली थे। वे महान् अभ्युदयसे युक्त होकर सदा हर्षमें भरे रहते थे।

**सूतजी कहते हैं**—एक समय महर्षि व्यासने अत्यन्त विस्मित होकर लोकनाथ ब्रह्माजीसे सुव्रतका सारा उपाख्यान पूछा।

**ब्रह्माजीने कहा**—सुव्रत बड़ा मेधावी बालक था। वह बाल्यकालसे ही भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करने लगा। उसने गर्भमें ही पुरुषोत्तम भगवान् श्रीनारायणका दर्शन किया था। पूर्वकर्मोंके प्रभावसे वह सदा भगवान्‌के ध्यानमें लगा रहता था। वह गान, विद्याभ्यास और अध्यापन करते समय भी शङ्ख-चक्रधारी, उत्तम पुण्यदायी भगवान् श्रीपद्मनाभका ध्यान और चिन्तन किया करता था। इस प्रकार वह द्विजश्रेष्ठ सदा श्रीभगवान्‌का ध्यान करते हुए ही बच्चोंके साथ खेला करता था। वह मेधावी, पुण्यात्मा और पुण्यमें प्रेम रखनेवाला था। उसने अपने साथी बालकोंका नाम अपनी ओरसे परमात्मा श्रीहरिके नामपर ही रख दिया था। वह महामुनि था और भगवान्‌के ही नामसे अपने मित्रोंको भी पुकारा करता था। 'ओ केशव! यहाँ आओ, चक्रधारी माधव! बचाओ, पुरुषोत्तम! तुम्हीं मेरे साथ खेलो, मधुसूदन! हम दोनोंको वनमें ही चलना चाहिये।' इस प्रकार श्रीहरिके नाम ले-लेकर वह ब्राह्मणबालक मित्रोंको बुलाया करता था। खेलने, पढ़ने, हँसने, सोने, गीत गाने, देखने, चलने, बैठने, ध्यान करने, सलाह करने, ज्ञान अर्जन करने तथा शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेके समय भी वह श्रीभगवान्‌को ही देखता और जगन्नाथ, जनार्दन आदि नामोंका उच्चारण किया करता था। विश्वके एकमात्र स्वामी श्रीपरमेश्वरका ध्यान करता रहता था। तृण, काष्ठ, पत्थर तथा सूखे और गीले सभी पदार्थोंमें वह धर्मात्मा बालक श्रीकेशवको ही देखता, कमललोचन श्रीगोविन्दका ही साक्षात्कार किया करता था। सुमनाका पुत्र ब्राह्मण सुव्रत बड़ा बुद्धिमान् था; वह आकाशमें, पृथ्वीपर, पर्वतोंमें, वनोंमें, जल, थल और पाषाणमें तथा सम्पूर्ण जीवोंके भीतर भी भगवान् श्रीनरसिंहका ही दर्शन करता था।*

* क्रीडने पठने हास्ये शयने गीतप्रेक्षणे। याने च ह्यासने ध्याने मन्त्रे ज्ञाने सुकर्मसु॥

इस प्रकार बालकोंके साथ खेलमें सम्मिलित होकर वह प्रतिदिन खेलता तथा मधुर अक्षर और उत्तम रागसे युक्त गीतोंद्वारा श्रीकृष्णका गुणगान किया करता था। उसके गीत-ताल, लय, उत्तम स्वर और मूर्च्छनासे युक्त होते थे। सुव्रत कहता—'सम्पूर्ण देवता सदा भगवान् श्रीमुरारिका ध्यान करते हैं। जिनके श्रीअङ्गोंके भीतर सम्पूर्ण जगत् स्थित है, जो योगके स्वामी, पापोंका नाश करनेवाले और शरणागतोंके रक्षक हैं, उन भगवान् श्रीमधुसूदनका मैं भजन करता हूँ।* जो सम्पूर्ण जगत्के भीतर सदा जागते और व्याप्त रहते हैं, जिनमें समस्त गुणवानोंका निवास है तथा जो सब दोषोंसे रहित हैं, उन परमेश्वरका चिन्तन करके मैं सदा उनके युगल चरणोंमें मस्तक झुकाता हूँ। जो गुणोंके अधिष्ठान हैं, जिनके पराक्रमका अन्त नहीं है, वेदान्तज्ञानसे विशुद्ध बुद्धिवाले पुरुष जिनका सदा स्तवन किया करते हैं, इस अपार, अनन्त और दुर्गम संसारसागरसे पार होनेके लिये जो नौकाके समान हैं, उन सर्वस्वरूप भगवान् श्रीनारायणकी मैं शरण लेता हूँ। मैं श्रीभगवान्के उन निर्मल युगल चरणोंको प्रणाम करता हूँ, जो योगीश्वरोंके हृदयमें निवास करते हैं, जिनका शुद्ध एवं पूर्ण प्रभाव सदा और सर्वत्र विख्यात है। देव ! मैं दीन हूँ, आप अशुभके भयसे मेरी रक्षा कीजिये।† संसारका पालन करनेके लिये जिन्होंने धर्मको अङ्गीकार किया है, जो सत्यसे युक्त, सम्पूर्ण लोकोंके गुरु, देवताओंके स्वामी, लक्ष्मीजीके एकमात्र निवासस्थान, सर्वस्वरूप और सम्पूर्ण विश्वके आराध्य हैं; उन भगवान्के सुयशका मैं सुमधुर रससे युक्त संगीत एवं ताल-लयके साथ गान करता हूँ। मैं अखिल भुवनके स्वामी भगवान् श्रीविष्णुका ध्यान करता हूँ, जो इस लोकमें दुःखरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये चन्द्रमाके समान हैं। जो अज्ञानमय तिमिरका ध्वंस करनेके लिये साक्षात् सूर्यके तुल्य हैं तथा आनन्दके अखण्ड मूल और महिमासे सुशोभित हैं, जो अमृतमय आनन्दसे परिपूर्ण, समस्त कलाओंके आधार तथा गीतके कौशल हैं, उन श्रीभगवान्का मैं अनन्य अनुरागसे गान करता हूँ। जो उत्तम योगके साधनोंसे युक्त हैं, जिनकी दृष्टि परमार्थकी ओर लगी रहती है, जो सम्पूर्ण चराचर जगत्को एक साथ देखते रहते हैं तथा पापी लोगोंको जिनके स्वरूपका दर्शन नहीं होता, उन एकमात्र भगवान् श्रीकेशवकी मैं सदाके लिये शरण लेता हूँ।'

इस प्रकार सुमनाका पुत्र सुव्रत दोनों हाथोंसे ताली बजाकर ताल देते हुए श्रीकृष्णके सुयशका गान करता और बालकोंके साथ सदा प्रसन्न रहता था। प्रतिदिन बालस्वभावके अनुसार खेलता और भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें लगा रहता था। अपने सुलक्षण पुत्र सुव्रतको खेलते देख माता सुमना कहती—'बेटा ! आ, कुछ भोजन कर ले; तुझे भूख सता रही होगी।' यह सुनकर वह बुद्धिमान् बालक सुमनाको उत्तर देता—'माँ ! भगवान्का ध्यान महान् अमृतके तुल्य है, मैं उसीसे तृप्त रहता हूँ—मुझे भूख नहीं सताती।' भोजनके आसनपर बैठकर जब वह अपने सामने मिष्टान्न परोसा हुआ

---

पश्यत्येवं वदत्येवं जगन्नाथं जनार्दनम्। स ध्यायते तमेकं हि विश्वनाथं महेश्वरम्॥
तृणे काष्ठे च पाषाणे शुष्के सार्द्रे ही केशवम्। पश्यत्येवं स धर्मात्मा गोविन्दं कमलेक्षणम्॥
आकाशे भूमिमध्ये तु पर्वतेषु वनेषु च। जले स्थले च पाषाणे जीवेषु च महामतिः॥
नृसिंहं पश्यते विप्रः सुव्रतः सुमनासुतः।

(२०। ११—१५)

* ध्यायन्ति देवाः सततं मुरारिं यस्याङ्गमध्ये सकलं निविष्टम्। योगेश्वरं पापविनाशनं च भजे शरण्यं मधुसूदनाख्यम्॥

(२०। १७)

† नारायणं गुणनिधानमनन्तवीर्यं वेदान्तशुद्धमतयः प्रपठन्ति नित्यम्। संसारसागरमपारमनन्तदुर्गमुत्तारणार्थमखिलं शरणं प्रपद्ये॥
योगीन्द्रमानससरोवरराजहंसं शुद्धं प्रभावमखिलं सततं हि यस्य। तस्यैव पादयुगलं ह्यमलं नमामि दीनस्य मेऽशुभभयात् कुरु देव रक्षाम्॥

(२०। १९-२०)

देखता, तब कहता—'इस अन्नसे भगवान् श्रीविष्णु तृप्त हों।' वह धर्मात्मा बालक जब सोनेके लिये जाता, तब वहाँ भी श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए कहता—'मैं योगनिद्रापरायण भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आया हूँ।' इस प्रकार भोजन करते, वस्त्र पहनते, बैठते और सोते समय भी वह श्रीवासुदेवका चिन्तन करता और उन्हींको सब वस्तुएँ समर्पित कर देता था। धर्मात्मा सुव्रत युवावस्था आनेपर काम-भोगका परित्याग करके वैडूर्य पर्वतपर जा भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें लग गया। वहीं उस मेधावीने श्रीविष्णुका चिन्तन करते हुए तपस्या आरम्भ कर दी। उस श्रेष्ठ पर्वतपर सिद्धेश्वर नामक स्थानके पास वह निर्जन वनमें रहता और काम-क्रोध आदि सम्पूर्ण दोषोंका परित्याग करके इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए तपस्या करता था। उसने अपने मनको एकाग्र करके भगवान् श्रीविष्णुके साथ जोड़ दिया। इस प्रकार परमात्माके ध्यानमें सौ वर्षोंतक लगे रहनेपर उसके ऊपर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीजगन्नाथ बहुत प्रसन्न हुए तथा लक्ष्मीजीके साथ उसके सामने प्रकट होकर बोले—'धर्मात्मा सुव्रत! अब ध्यानसे उठो, तुम्हारा कल्याण हो; मैं विष्णु तुम्हारे पास आया हूँ, मुझसे वर माँगो।' मेधावी सुव्रत भगवान् श्रीविष्णुके ये उत्तम वचन सुनकर अत्यन्त हर्षमें भर गये। उन्होंने आँख खोलकर देखा, जनार्दन सामने खड़े हैं; फिर तो दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने श्रीभगवान्‌को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे।

सुव्रत बोले—

**संसारसागरमतीव गभीरपारं**
**दुःखोर्मिभिर्विविधमोहमयैस्तरङ्गैः ।**
**सम्पूर्णमस्ति निजदोषगुणैस्तु प्राप्तं**
**तस्मात् समुद्धर जनार्दन मां सुदीनम् ॥**

जनार्दन! यह संसार-समुद्र अत्यन्त गहरा है, इसका पार पाना कठिन है। यह दुःखमयी लहरों और मोहमयी भाँति-भाँतिकी तरङ्गोंसे भरा है। मैं अत्यन्त दीन हूँ और अपने ही दोषों तथा गुणोंसे—पाप-पुण्योंसे प्रेरित होकर इसमें आ फँसा हूँ; अतः आप मेरा इससे उद्धार कीजिये।

**कर्माम्बुदे महति गर्जति वर्षतीव**
**विद्युल्लतोल्लसति पातकसञ्चयैर्मे ।**
**मोहान्धकारपटलैर्मम नष्टदृष्टे-**
**र्दीनस्य तस्य मधुसूदन देहि हस्तम् ॥**

कर्मरूपी बादलोंकी भारी घटा घिरी हुई है, जो गरजती और बरसती भी है। मेरे पातकोंकी राशि विद्युल्लताकी भाँति उसमें थिरक रही है। मोहरूपी अन्धकार-समूहसे मेरी दृष्टि—विवेकशक्ति नष्ट हो गयी है, मैं अत्यन्त दीन हो रहा हूँ; मधुसूदन! मुझे अपने हाथका सहारा दीजिये।

**संसारकाननवरं बहुदुःखवृक्षैः**
**संसेव्यमानमपि मोहमयैश्च सिंहैः ।**
**संदीप्तमस्ति करुणाबहुवह्नितेजः**
**संतप्यमानमनसं परिपाहि कृष्ण ॥**

यह संसार एक महान् वन है, इसमें बहुत-से दुःख ही वृक्षरूपमें स्थित हैं। मोहरूपी सिंह इसमें निर्भय होकर निवास करते हैं; इसके भीतर शोकरूपी प्रचण्ड दावानल प्रज्वलित हो रहा है, जिसकी आँचसे मेरा चित्त सन्तप्त हो उठा है। कृष्ण! इससे मुझे बचाइये।

**संसारवृक्षमतिजीर्णमपीह उच्चं**
**मायासुकन्दकरुणाबहुदुःखशाखम् ।**
**जायादिसङ्घछदनं फलितं मुरारे**
**तं चाधिरूढपतितं भगवन् हि रक्ष ॥**

संसार एक वृक्षके समान है, यह अत्यन्त पुराना होनेके साथ बहुत ऊँचा भी है; माया इसकी जड़ है, शोक तथा नाना प्रकारके दुःख इसकी शाखाएँ हैं, पत्नी आदि परिवारके लोग पत्ते हैं और इसमें अनेक प्रकारके फल लगे हैं। मुरारे! मैं इस संसार-वृक्षपर चढ़कर गिर रहा हूँ; भगवन्! इस समय मेरी रक्षा कीजिये—मुझे बचाइये।

**दुःखानलैर्विविधमोहमयैः सुधूमैः**
**शोकैर्वियोगमरणान्तकसंनिभैश्च ।**
**दग्धोऽस्मि कृष्ण सततं मम देहि मोक्षं**
**ज्ञानाम्बुनाथ परिषिच्य सदैव मां त्वम् ॥**

कृष्ण! मैं दुःखरूपी अग्नि, विविध प्रकारके मोहरूपी धुएँ तथा वियोग, मृत्यु और कालके समान

शोकोंसे जल रहा हूँ; आप सर्वदा ज्ञानरूपी जलसे सींचकर मुझे सदाके लिये संसार-बन्धनसे छुड़ा दीजिये।

**मोहान्धकारपटले महतीव गर्ते**
**संसारनाम्नि सततं पतितं हि कृष्ण।**
**कृत्वा तरीं मम हि दीनभयातुरस्य**
**तस्माद् विकृष्य शरणं नय मामितस्त्वम्॥**

कृष्ण! मैं मोहरूपी अन्धकार-राशिसे भरे हुए संसार नामक महान् गड्ढेमें सदासे गिरा हुआ हूँ, दीन हूँ और भयसे अत्यन्त व्याकुल हूँ; आप मेरे लिये नौका बनाकर मुझे उस गड्ढेसे निकालिये, वहाँसे खींचकर अपनी शरणमें ले लीजिये।

**त्वामेव ये नियतमानसभावयुक्ता**
**ध्यायन्त्यनन्यमनसा पदवीं लभन्ते।**
**नत्वैव पादयुगलं च महत्सुपुण्यं**
**ये देवकिन्नरगणाः परिचिन्तयन्ति॥**

जो संयमशील हृदयके भावसे युक्त होकर अनन्य चित्तसे आपका ध्यान करते हैं। वे आपकी पदवीको प्राप्त हो जाते हैं। तथा जो देवता और किन्नरगण आपके दोनों परम पवित्र चरणोंको प्रणाम करके उनका चिन्तन करते हैं, वे भी आपकी पदवीको प्राप्त होते हैं।

**नान्यं वदामि न भजामि न चिन्तयामि**
**त्वत्पादपद्मयुगलं सततं नमामि।**
**एवं हि मामुपगतं शरणं च रक्ष**
**दूरेण यान्तु मम पातकसञ्चयास्ते।**
**दासोऽस्मि भृत्यवदहं तव जन्म जन्म**
**त्वत्पादपद्मयुगलं सततं नमामि॥**

(२१। २०—२७)

मैं न तो दूसरेका नाम लेता हूँ न दूसरेको भजता हूँ और न दूसरेका चिन्तन ही करता हूँ; नित्य-निरन्तर आपके युगल चरणोंको प्रणाम करता रहता हूँ। इस प्रकार मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें, मेरे पातकसमूह शीघ्र दूर हो जायँ। मैं नौकरकी भाँति जन्म-जन्म आपका दास बना रहूँ। भगवन्! आपके युगल चरण-कमलोंको सदा प्रणाम करता हूँ।

श्रीकृष्ण! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मुझे यह उत्तम वरदान दीजिये—मेरे माता-पिताको सशरीर अपने परमधाममें पहुँचाइये। मेरे ही साथ मेरी पत्नीको भी अपने लोकमें ले चलिये।

**श्रीहरि बोले**—ब्रह्मन्! तुम्हारी यह उत्तम कामना अवश्य पूर्ण होगी।

इस प्रकार सुव्रतकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर भगवान् श्रीविष्णु उन्हें उत्तम वरदान दे दाह और प्रलयसे रहित वैष्णवधामको चले गये। सुव्रतके साथ ही सुमना और सोमशर्मा भी वैकुण्ठधामको प्राप्त हुए।

★

## राजा पृथुके जन्म और चरित्रका वर्णन

**ऋषियोंने कहा**—महाभाग सूतजी! आप महात्मा राजा पृथुके जन्मका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये। हम उनकी कथा सुननेके लिये उत्सुक हैं। महाराज पृथुने जिस प्रकार इस पृथ्वीका दोहन किया तथा देवताओं, पितरों और तत्त्ववेत्ता मुनियोंने भी जिस प्रकार उसको दुहा था, वह सब प्रसङ्ग मुझे सुनाइये।

**सूतजी बोले**—द्विजवरो! मैं वेनकुमार पृथुके जन्म, पराक्रम और क्षत्रियोचित पुरुषार्थका विस्तारके साथ वर्णन करूँगा। ऋषियोंने जो रहस्यकी बातें कही हैं, उन्हें भी बताऊँगा। जो प्रतिदिन वेननन्दन पृथुकी कथाको विस्तारपूर्वक कहेगा, उसके सात जन्मके पाप नष्ट हो जायँगे। पृथुका जन्म-वृत्तान्त तथा सम्पूर्ण चरित्र ही पापोंका नाश करनेवाला और पवित्र है।

पूर्वकालमें अङ्ग नामके प्रजापति थे, जिनका जन्म अत्रिवंशमें हुआ था। वे अत्रिके समान ही प्रभावशाली, धर्मके रक्षक, परम बुद्धिमान् तथा वेद और शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ थे। उन्होंने ही सम्पूर्ण धर्मोंकी सृष्टि की थी। मृत्युकी एक परम सौभाग्यवती कन्या थी, जिसका नाम था सुनीथा। महाभाग अङ्गने उसीके साथ विवाह किया और उसके गर्भसे वेननामक पुत्रको जन्म दिया, जो

धर्मका नाश करनेवाला था। राजा वेन वेदोक्त सदाचाररूप धर्मका परित्याग करके काम, लोभ और महामोहवश पापका ही आचरण करता था। मद और मात्सर्यसे मोहित होकर पापके ही रास्ते चलता था। उस समय सम्पूर्ण द्विज वेदाध्ययनसे विमुख हो गये। वेनके राजा होनेपर प्रजाजनोंमें स्वाध्याय और यज्ञका नाम भी नहीं सुनायी पड़ता था। यज्ञमें आये हुए देवता यजमानके द्वारा अर्पण किये हुए सोमरसका पान नहीं करते थे। वह दुष्टात्मा राजा ब्राह्मणोंसे प्रतिदिन यही कहता था कि 'स्वाध्याय न करो, होम करना छोड़ दो, दान न दो और यज्ञ भी न करो।' प्रजापति वेनका विनाशकाल उपस्थित था; इसीलिये उसने यह क्रूर घोषणा की थी। वह सदा यही कहा करता था कि 'मैं ही यजन करनेके योग्य देवता, मैं ही यज्ञ करनेवाला यजमान तथा मैं ही यज्ञ-कर्म हूँ। मेरे ही उद्देश्यसे यज्ञ और होमका अनुष्ठान होना चाहिये। मैं ही सनातन विष्णु, मैं ही ब्रह्मा, मैं ही रुद्र, मैं ही इन्द्र तथा सूर्य और वायु हूँ। हव्य और कव्यका भोक्ता भी सदा मैं ही हूँ। मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है।'

यह सुनकर महान् शक्तिशाली मुनियोंको वेनके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। वे सब एकत्रित हो उस पापबुद्धि राजाके पास जाकर बोले—राजाको धर्मका मूर्तिमान् स्वरूप माना गया है। इसलिये प्रत्येक राजाका यह कर्तव्य है कि वह धर्मकी रक्षा करे। हमलोग बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाले यज्ञकी दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं। तुम अधर्म न करो; क्योंकि ऐसा करना सत्पुरुषोंका धर्म नहीं है। महाराज ! तुमने यह प्रतिज्ञा की है कि 'मैं राजा होकर धर्मका पालन करूँगा, अतः उस प्रतिज्ञाके अनुसार धर्म करो और सत्य एवं पुण्यको आचरणमें लाओ।'

ऋषियोंकी उपर्युक्त बातें सुनकर वह क्रोधसे आगबबूला हो उठा और उनकी ओर दृष्टिपात करके द्वितीय यमराजकी भाँति बोला—'अरे ! तुमलोग मूर्ख हो, तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है। अतः निश्चय ही तुमलोग मुझे नहीं जानते। भला ज्ञान, पराक्रम, तपस्या और सत्यके द्वारा मेरी समानता करनेवाला इस पृथ्वीपर दूसरा कौन है। मैं ही सम्पूर्ण भूतों और विशेषतः सब धर्मोंकी उत्पत्तिका कारण हूँ। यदि चाहूँ तो इस पृथ्वीको जला सकता हूँ, जलमें डुबा सकता हूँ तथा पृथ्वी और आकाशको रूँध सकता हूँ।'

जब वेनको किसी प्रकार भी अधर्म-मार्गसे हटाया न जा सका, तब महर्षियोंने क्रोधमें भरकर उसे बल-पूर्वक पकड़ लिया। वह विवश होकर छटपटाने लगा। उधर क्रोधमें भरे हुए ऋषियोंने राजा वेनकी बायीं जाँघको मथना आरम्भ किया। उससे काले अञ्जनकी राशिके समान एक नाटे कदका मनुष्य प्रकट हुआ। उसकी आकृति विलक्षण थी। लंबा मुँह, विकराल आँखें, नीले कवचके समान काला रंग, मोटे और चौड़े कान, बेडौल बढ़ी हुई बाँहें और विशाल भद्दा-सा पेट—यही उसका हुलिया था। ऋषियोंने उसकी ओर देखा और कहा—'निषीद (बैठ जाओ)।' उनकी बात सुनकर वह भयसे व्याकुल हो बैठ गया। [ऋषियोंने 'निषीद' कहकर उसे बैठनेकी आज्ञा दी थी; इसलिये उसका नाम 'निषाद' पड़ गया।] पर्वतों और वनोंमें ही उसके वंशकी प्रतिष्ठा हुई। निषाद, किरात, भील, नाहलक, भ्रमर, पुलिन्द तथा और जितने भी म्लेच्छजातिके पापाचारी मनुष्य हैं, वे सब वेनके उसी अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं।

तब यह जानकर कि राजा वेनका पाप निकल गया, समस्त ऋषियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। अब उन्होंने राजाके दाहिने हाथका मन्थन आरम्भ किया। उससे पहले तो पसीना प्रकट हुआ; किन्तु जब पुनः जोरसे मन्थन किया गया, तब वेनके उस सुन्दर हाथसे एक पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ, जो बारह आदित्योंके समान तेजस्वी थे। उनके मस्तकपर सूर्यके समान चमचमाता हुआ मुकुट और कानोंमें कुण्डल शोभा पा रहे थे। उन महाबली राजकुमारने आजगव नामका आदि धनुष, दिव्य बाण और रक्षाके लिये कान्तिमान्, कवच धारण कर रखे थे। उनका नाम 'पृथु' हुआ। वे बड़े सौभाग्यशाली, वीर और महात्मा थे। उनके जन्म लेते ही सम्पूर्ण प्राणियोंमें हर्ष छा गया। उस समय समस्त

ब्राह्मणोंने मिलकर पृथुका राज्याभिषेक किया। तदनन्तर ब्रह्माजी, सब देवता तथा नाना प्रकारके स्थावर-जङ्गम प्राणियोंने महाराज पृथुका अभिषेक किया। उनके पिताने कभी भी सम्पूर्ण प्रजाको प्रसन्न नहीं किया था। किन्तु पृथुने सबका मनोरञ्जन किया। इसलिये सारी प्रजा सुखी होकर आनन्दका अनुभव करने लगी। प्रजाका अनुरञ्जन करनेके कारण ही वीर पृथुका नाम 'राजराज' हो गया।

द्विजवरो! उन महात्मा नरेशके भयसे समुद्रका जल भी शान्त रहता था। जब उनका रथ चलता, उस समय पर्वत दुर्गम मार्गको छिपाकर उन्हें उत्तम मार्ग देते थे। पृथ्वी बिना जोते ही अनाज तैयार करके देती थी। सर्वत्र गौएँ कामधेनु हो गयी थीं। मेघ प्रजाकी इच्छाके अनुसार वर्षा करता था। सम्पूर्ण ब्राह्मण और क्षत्रिय देवयज्ञ तथा बड़े-बड़े उत्सव किया करते थे। राजा पृथुके शासनकालमें वृक्ष इच्छानुसार फलते थे, उनके पास जानेसे सबकी इच्छा पूर्ण होती थी। देशमें न कभी अकाल पड़ता, न कोई बीमारी फैलती और न मनुष्योंकी अकाल मृत्यु ही होती थी। सब लोग सुखसे जीवन बिताते और धर्मानुष्ठानमें लगे रहते थे।*

ब्राह्मणो! प्रजाओंने अपनी जीवन-रक्षाके लिये पहले जो अन्नका बीज बो रखा था, उसे एक बार यह पृथ्वी पचाकर स्थिर हो गयी। उस समय सारी प्रजा राजा पृथुके पास दौड़ी गयी और मुनियोंके कथनानुसार बोली—'राजन्! हमारे लिये उत्तम जीविकाका प्रबन्ध कीजिये।' राजाओंमें श्रेष्ठ पृथुने देखा—प्रजाके ऊपर बहुत बड़ा भय उपस्थित हुआ है। यह देखकर तथा महर्षियोंकी बात मानकर महाराज पृथुने धनुष और बाण हाथमें लिया और क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे पृथ्वीके ऊपर धावा किया। पृथ्वी गायका रूप धारण करके तीव्र गतिसे स्वर्गकी ओर भागी। फिर क्रमशः ब्रह्माजी, भगवान् श्रीविष्णु तथा रुद्र आदि देवताओंकी शरणमें गयी; किन्तु कहीं भी उसे अपने बचावका स्थान न मिला। अन्तमें अपनी रक्षाका कोई उपाय न देखकर वह वेनकुमार पृथुकी ही शरणमें आयी और बाणोंके आघातसे व्याकुल हो उन्हींके पास खड़ी हो गयी। उसने नमस्कार करके राजा पृथुसे कहा—

'महाराज! रक्षा करो' रक्षा करो। महाप्राज्ञ! मैं

धारण करनेवाली भूमि हूँ। मेरे ही आधारपर सब लोग टिके हुए हैं। राजन्! यदि मैं मारी गयी तो सातों लोक नष्ट हो जायँगे। गौओंकी हत्यामें बहुत बड़ा पाप है, इस बातका श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। मेरा नाश होनेपर सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। राजन्! यदि मैं न रही तो तुम प्रजाको कैसे धारण कर सकोगे। अतः यदि तुम प्रजाका कल्याण करना चाहते हो तो मुझे मारनेका विचार छोड़ दो। भूपाल! मैं तुम्हें हितकी बात बताती हूँ, सुनो। अपने क्रोधका नियन्त्रण करो, मैं अन्नमयी हो जाऊँगी, समस्त प्रजाको धारण करूँगी। मैं स्त्री हूँ। स्त्री अवध्य मानी गयी है। मुझे मारकर तुम्हें प्रायश्चित्तका भागी होना पड़ेगा।

**राजा पृथु बोले**—यदि किसी एक महापापी एवं

* न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणाम्। सर्वे सुखेन जीवन्ति लोका धर्मपरायणाः॥ (२७। ६४)

दुराचारीका वध कर डालनेपर सब लोग सुखसे जी सकें, तथा पुण्यदर्शी साधु पुरुषोंको सुख मिलता हो तो एक पापिष्ठ पुरुषका विनाश करना कर्तव्य माना गया है। वसुधे ! तुमने भी प्रजाके सम्पूर्ण स्वार्थोंका विनाश किया है। इस समय जितने भी बीज थे, उन सबको तुम पचा गयीं। बीजोंको हड़पकर स्वयं तो स्थिर हो गयीं और प्रजाको मार रही हो। ऐसी दशामें [मेरे हाथसे बचकर] अब कहाँ जाओगी। वसुन्धरे ! संसारके हितके लिये मेरा यह कार्य उत्तम ही माना जायगा। तुमने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है, इसलिये इन तीखे बाणोंसे मारकर मैं तुम्हें मौतके घाट उतार दूँगा। तुम्हारे न रहनेपर मैं त्रिलोकीमें रहनेवाली पावन प्रजाको अपने ही तेज और धर्मके बलसे धारण करूँगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वसुन्धरे ! मेरा शासन धर्मके अनुकूल है, अतः इसे मानकर मेरी आज्ञासे तुम प्रजाके जीवनकी सदा ही रक्षा करो। भद्रे ! यदि इस प्रकार आज ही मेरी आज्ञा मान लोगी तो मैं प्रसन्न होकर सदा तुम्हारी रखवाली करूँगा।

पृथ्वी देवी गौके रूपमें खड़ी थीं। उनका शरीर बाणोंसे आच्छादित हो रहा था। उन्होंने धर्मात्मा और परम बुद्धिमान् राजा पृथुसे कहा—'महाराज ! तुम्हारी आज्ञा सत्य और पुण्यसे युक्त है। अतः प्रजाके लिये मैं उसका विशेषरूपसे पालन करूँगी। राजेन्द्र ! तुम स्वयं ही कोई उपाय सोचो, जिससे तुम्हारे सत्यका पालन हो सके और तुम इन प्रजाओंको भी धारण कर सको। मैं भी जिस प्रकार समूची प्रजाकी वृद्धि कर सकूँ—ऐसा कोई उपाय बताओ। महाराज ! मेरे शरीरमें तुम्हारे उत्तम बाण धँसे हुए हैं, उन्हें निकाल दो और सब ओरसे मुझे समतल बना दो, जिससे मेरे भीतर दुग्ध स्थिर रह सके।'

**सूतजी कहते हैं**—ब्राह्मणो ! पृथ्वीकी बात सुनकर राजा पृथुने अपने धनुषके अग्रभागसे विभिन्न रूपवाले भारी-भारी पर्वतोंको उखाड़ डाला और भूमिको समतल बना दिया। राजकुमार पृथुने पृथ्वीके शरीरसे अपने बाणोंको स्वयं ही निकाल लिया। उनके आविर्भावसे पहले केवल प्रजाओंकी ही उत्पत्ति हुई थी। कोई सच्चा राजा नहीं हुआ था। उन दिनों यह सारी प्रजा कहीं भूमिमें गुफा बनाकर, कहीं पर्वतपर, कहीं नदीके किनारे, जंगली झाड़ियोंमें, सम्पूर्ण तीर्थोंमें तथा समुद्रके किनारोंपर निवास करती थी। सब लोग पुण्य-कर्मोंमें लगे रहते थे। फल, फूल और मधु—यही उनका आहार था। वेनकुमार पृथुने प्रजाके इस कष्टको देखा और उसे दूर करनेके लिये स्वायम्भुव मनुको बछड़ा तथा अपने हाथको ही दुग्धपात्र बनाकर पृथ्वीसे सब प्रकारके धान्य और गुणकारी अन्नमय दूधका दोहन किया। सुधाके समान लाभ पहुँचानेवाले उस पवित्र अन्नसे प्रजा पितरों तथा ब्रह्मा आदि देवताओंका यजन पूजन करने लगी। द्विजवरो ! उस समयकी सारी प्रजा पुण्यकर्ममें संलग्न रहती थी; अतः देवताओं, पितरों, विशेषतः ब्राह्मणों और अतिथियोंको अन्न देकर पश्चात् स्वयं भोजन करती थी। उसी अन्नसे अन्यान्य यज्ञोंका अनुष्ठान करके वह देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुका यजन और तर्पण करती तथा उसी अन्नके द्वारा सम्पूर्ण देवता तृप्त होते थे। फिर श्रीभगवान्‌की प्रेरणासे मेघ पानी बरसाता और उससे पवित्र अन्न आदि उत्पन्न होता था।

तदनन्तर समस्त ऋषियों, महामना ब्राह्मणों तथा सत्यवादी देवताओंने भी इस पृथ्वीका दोहन किया। अब मैं यह बताता हूँ कि पितर आदिने किस प्रकार बछड़ोंकी कल्पना करके पूर्वकालमें वसुधाको दुहा था। द्विजोत्तमो ! पितरोंने चाँदीका दोहन-पात्र बनाकर यमको बछड़ा बनाया, अन्तकने दुहनेवाले ग्वालेका काम किया और 'स्वधा' रूपी दुग्धको दुहा। इसके बाद सर्पों और नागोंने तक्षकको बछड़ा बनाकर तूँबीका पात्र हाथमें ले विषरूपी दूध दुहा। वे महाबली और महाकाय भयानक सर्प उस विषसे ही जीवन धारण करते हैं। विष ही उनका आधार, विष ही आचार, विष ही बल और विष ही पराक्रम है। इसी प्रकार समस्त असुरों और दानवोंने भी अन्नके अनुरूप लोहेका पात्र बनाकर सम्पूर्ण कामनाओंके साधनभूत मायामय दूधका दोहन किया, जो उनके समस्त शत्रुओंका विनाश करनेवाला है। वही उनका बल और पुरुषार्थ है, उसीसे दानव जीवन धारण

करते हैं। उसीको पाकर आज भी समस्त दानव मायामें प्रवीण देखे जाते हैं। इसके बाद गन्धर्वों और अप्सराओंने पृथ्वीका दोहन किया। नृत्य और संगीतकी विद्या ही उनका दूध थी। उसीसे गन्धर्व, यक्ष और अप्सराओंकी जीविका चलती है। परम पुण्यमय पर्वतोंने भी इस पृथ्वीसे नाना प्रकारके रत्न और अमृतके समान ओषधियोंका दोहन किया। वृक्षोंने पत्तोंके पात्रमें पृथ्वीका दूध दुहा। जलने और कटनेके बाद भी फिरसे अङ्कुर निकल आना—यही उनका दूध था। उस समय पाकरका पेड़ बछड़ा बना था और शालके पवित्र वृक्षने दुहनेका काम किया था।

गुह्यक, चारण, सिद्ध और विद्याधरोंने भी सबको धारण करनेवाली इस पृथ्वीको दुहा था। उस समय यह वसुन्धरा सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थोंको देनेवाली कामधेनु बन गयी थी। जो लोग जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करते थे, उन्हें भिन्न-भिन्न पात्र और बछड़ोंके द्वारा वह वस्तु यह दूधके रूपमें प्रदान करती थी। यह धात्री (धारण करनेवाली) और विधात्री (उत्पन्न करनेवाली) है। यह श्रेष्ठ वसुन्धरा है, यह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली धेनु है तथा यह पुण्योंसे अलङ्कृत, परम पावन, पुण्यदायिनी, पुण्यमयी और सब प्रकारके धान्योंको अङ्कुरित करनेवाली है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत्की प्रतिष्ठा और योनि (उत्पत्तिस्थान) है। यही महालक्ष्मी और सब प्रकारके कल्याणकी जननी है। यही पाँचों भूतोंका प्रकाश और रूप है। यह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पहले 'मेदिनी'के नामसे प्रसिद्ध थी। फिर अपनेको वेनकुमार राजा पृथुकी पुत्री स्वीकार करनेके कारण यह 'पृथ्वी' कहलाने लगी।

ब्राह्मणो! पृथुके प्रयत्नसे इस पृथ्वीपर घर और गाँवोंकी नींव पड़ी। फिर बड़े-बड़े कस्बे और शहर इसकी शोभा बढ़ाने लगे। यह धन-धान्यसे सम्पन्न हुई और सब प्रकारके तीर्थ इसके ऊपर प्रकट हुए। इस वसुमती देवीकी ऐसी ही महिमा बतलायी गयी है। यह सर्वदा सर्वलोकमयी मानी गयी है। वेनकुमार महाराज पृथुका ऐसा ही प्रभाव पुराणोंमें वर्णित है। ये महाभाग नरेश सम्पूर्ण धर्मोंके प्रकाशक, वर्णों और आश्रमोंके संस्थापक तथा समस्त लोकोंके धारण-पोषण करनेवाले थे। जो सौभाग्यशाली राजा इस लोकमें वास्तविक राजपद प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें परम प्रतापी राजा वेनकुमार पृथुको नमस्कार करना चाहिये। जो धनुर्वेदका ज्ञान और युद्धमें सदा ही विजय प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें भी महाराज पृथुको प्रणाम करना चाहिये। सम्राट् पृथु राजा-महाराजाओंको भी जीविका प्रदान करनेवाले थे। द्विजवरो! यह प्रसङ्ग धन, यश, आरोग्य और पुण्य प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य महाराज पृथुके चरित्रका श्रवण करता है, उसे प्रतिदिन गङ्गास्नानका फल मिलता है तथा वह सब पापोंसे शुद्ध होकर भगवान् श्रीविष्णुके परमधामको जाता है।

═══★═══

## मृत्युकन्या सुनीथाको गन्धर्वकुमारका शाप, अङ्गकी तपस्या और भगवान्से वर-प्राप्ति

**ऋषियोंने पूछा**—सूतजी! पापाचारपूर्ण बर्ताव करनेवाले जिस राजा वेनका आपने परिचय दिया है, उस पापीको उस व्यवहारका कैसा फल मिला?

**सूतजी बोले**—ब्राह्मणो! पृथु-जैसे सौभाग्यशाली और महात्मा पुत्रके जन्म लेनेपर राजा वेन पापरहित हो गया। उसे धर्मका फल प्राप्त हुआ। जिन नरेशोंने समस्त महापापोंका उपार्जन किया है, उनके वे पाप तीर्थयात्रासे नष्ट हो जाते हैं और संतोंका सङ्ग प्राप्त होनेसे पुण्यकी ही वृद्धि होती रहती है। पापियोंसे बातचीत करने, उन्हें देखने, स्पर्श करने, उनके साथ बैठने, भोजन करने तथा उनके सङ्गमें रहनेसे पापका संचार होता है और पुण्यात्माओंके सङ्गसे केवल पुण्यका ही प्रसार होता है, जिससे सारे पाप धुल जानेके कारण मनुष्य पुण्य-गतिको ही प्राप्त करते हैं।

**ऋषियोंने पूछा**—महामते! पापी मनुष्योंको परम सिद्धिकी प्राप्ति कैसे होती है, यह बात [भी] हमें

विस्तारके साथ बतलाइये।

**सूतजी बोले**—नर्मदा, यमुना और गङ्गा—इन नदियोंकी धाराके आस-पास जो महापापी रहते हैं, वे जान-बूझकर या बिना जाने भी इनके जलमें नहाते और क्रीड़ा करते हैं; अतः महानदीके संसर्गसे उन्हें परम गतिकी प्राप्ति हो जाती है। द्विजवरो! महानदीके सम्पर्कसे अथवा अन्यान्य नदियोंके परम पवित्र जलका दर्शन, स्पर्श और पान करनेसे पापियोंका पाप नष्ट हो जाता है। तीर्थोंके प्रभाव तथा संतोंके सङ्गसे पापियोंका पाप उसी प्रकार नष्ट होता है, जैसे आग ईंधनको जला डालती है। महात्मा ऋषियोंके संसर्ग, उनके साथ वार्तालाप करनेसे, दर्शन और स्पर्शसे तथा पूर्वकालमें सत्सङ्ग प्राप्त होनेसे राजा वेनका सारा पाप नष्ट हो गया था। पुण्यका संसर्ग हो जानेपर अत्यन्त भयङ्कर पापका भी संचार नहीं होता।

पूर्वकालमें मृत्युके एक सौभाग्यशालिनी कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम सुनीथा रखा गया था। वह पिताके कार्योंको देखती और खेल-कूदमें सदा उन्हींका अनुकरण किया करती थी। एक दिन सुनीथा अपनी सखियोंके साथ खेलती हुई वनमें गयी। वहाँ गीतकी ध्वनि उसके कानोंमें पड़ी। तब सुनीथाने उस ओर दृष्टिपात किया। देखा, गन्धर्वकुमार महाभाग सुशङ्ख भारी तपस्यामें लगा हुआ है। उसके सारे अङ्ग बड़े ही मनोहर थे। सुनीथा प्रतिदिन वहाँ जाकर उस तपस्वीको सताने लगी। सुशङ्ख रोज-रोज उसके अपराधको क्षमा कर देता और कहता—'जाओ, चली जाओ यहाँसे।' उसके यों कहनेपर वह बालिका कुपित हो जाती और बेचारे तपस्वीको पीटने लगती थी। उसका यह बर्ताव देखकर एक दिन सुशङ्ख क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा और बोला—'कल्याणी! श्रेष्ठ पुरुष मारनेके बदले न तो मारते हैं और न किसीके गाली देनेपर क्रोध ही करते हैं; यही धर्मकी मर्यादा है।' पाप करनेवाली सुनीथासे ऐसा कहकर वह धर्मात्मा गन्धर्व क्रोधसे निवृत्त हो रहा और उसे अबला स्त्री जानकर बिना कुछ दण्ड दिये लौट गया।

सुनीथाने पिताके पास जाकर कहा—'तात! मैंने वनमें जाकर एक गन्धर्वकुमारको पीटा है, वह काम-क्रोधसे रहित हो तपस्या कर रहा था। मेरे पीटनेपर उस धर्मात्माने कहा है—मारनेवालेको मारना और गाली देनेवालेको गाली देना उचित नहीं है। पिताजी! बताइये, उसके इस कथनका क्या कारण है?' सुनीथाके इस प्रकार पूछनेपर धर्मात्मा मृत्युने उससे कुछ भी नहीं कहा। उसके प्रश्नका उत्तर ही नहीं दिया। तदनन्तर वह फिर वनमें गयी। सुशङ्ख तपस्यामें लगा था। दुष्ट स्वभाववाली सुनीथाने उस श्रेष्ठ तपस्वीके पास जाकर उसे कोड़ोंसे पीटना आरम्भ किया। अब वह महातेजस्वी

गन्धर्व अपने क्रोधको न रोक सका। उस सुन्दरी बालिकाको शाप देते हुए बोला—'गृहस्थ-धर्ममें प्रवेश करनेपर जब तुम्हारा अपने पतिके साथ सम्पर्क होगा, तब तुम्हारे गर्भसे देवताओं और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला, पापाचारी, सब प्रकारके पापोंमें आसक्त और दुष्ट पुत्र उत्पन्न होगा।' इस प्रकार शाप दे वह पुनः जाकर तपस्यामें ही लग गया।

महाभाग गन्धर्वकुमारके चले जानेपर सुनीथा अपने घर आयी। वहाँ उसने पितासे सारा वृत्तान्त कह

सुनाया। मृत्युने कहा—'अरी ! उस निर्दोष तपस्वीको तुमने क्यों मारा है ? भद्रे ! तपस्यामें लगे हुए पुरुषको मारना—यह तुम्हारे द्वारा उचित कार्य नहीं हुआ।' धर्मात्मा मृत्यु ऐसा कहकर बहुत दुःखी हो गये।

**सूतजी कहते हैं**—एक समयकी बात है, महर्षि अत्रिके पुत्र महातेजस्वी राजा अङ्ग नन्दन-वनमें गये थे। वहाँ उन्होंने गन्धर्वों, किन्नरों और अप्सराओंके साथ देवराज इन्द्रका दर्शन किया। उनके वैभव, उनके भोगविलास और उनकी लीला देखकर धर्मात्मा अङ्ग सोचने लगे—'किस उपायसे मुझे इन्द्रके समान पुत्रकी प्राप्ति हो ?' क्षणभर इस बातका विचार करके राजा अङ्ग खिन्न हो उठे। नन्दन-वनसे जब वे घर लौटे तो अपने पिता अत्रिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर बोले—'पिताजी ! आप ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ और पुत्रपर स्नेह रखनेवाले हैं। मुझे इन्द्रके समान वैभवशाली पुत्र कैसे प्राप्त हो, इसका कोई उपाय बताइये।'

**अत्रिने कहा**—साधुश्रेष्ठ ! भक्ति करने और श्रद्धापूर्वक ध्यान लगानेसे भगवान् श्रीविष्णु संतुष्ट होते हैं और संतुष्ट होनेपर वे सदा सब कुछ देते रहते हैं। भगवान् श्रीगोविन्द सब वस्तुओंके दाता, सबकी उत्पत्तिके कारण, सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, सर्वेश्वर और परमपुरुष हैं। इसलिये तुम उन्हींकी आराधना करो। बेटा ! तुम जो-जो चाहते हो, वह सब उनसे प्राप्त होगा। भगवान् श्रीविष्णु सुख, परमार्थ और मोक्ष देनेवाले तथा इस जगत्के ईश्वर हैं। अतः जाओ, उनकी आराधना करो; उनसे तुम्हें इन्द्रके समान पुत्र प्राप्त होगा।

ब्रह्माजीके पुत्र अङ्गके पिता महर्षि अत्रि ब्रह्माके समान ही तेजस्वी थे। उनसे आज्ञा लेकर अङ्गने प्रस्थान किया। वे सुवर्ण और रत्नमय शिखरोंसे सुशोभित मेरुगिरिके मनोहर शिखरपर चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गङ्गाजीके पवित्र तटपर एकान्तमें स्थित रत्नमय कन्दरामें प्रवेश किया। महामुनि अङ्ग बड़े मेधावी और धर्मात्मा थे। वे काम-क्रोधका त्याग करके सम्पूर्ण इन्द्रियोंको काबूमें रखकर भगवान्के मनोमय स्वरूपका ध्यान करने लगे। क्लेशहारी भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते-करते वे ऐसे तन्मय हो गये कि बैठने, सोने, चलने तथा चिन्तन करनेके समय भी उन्हें नित्य-निरन्तर

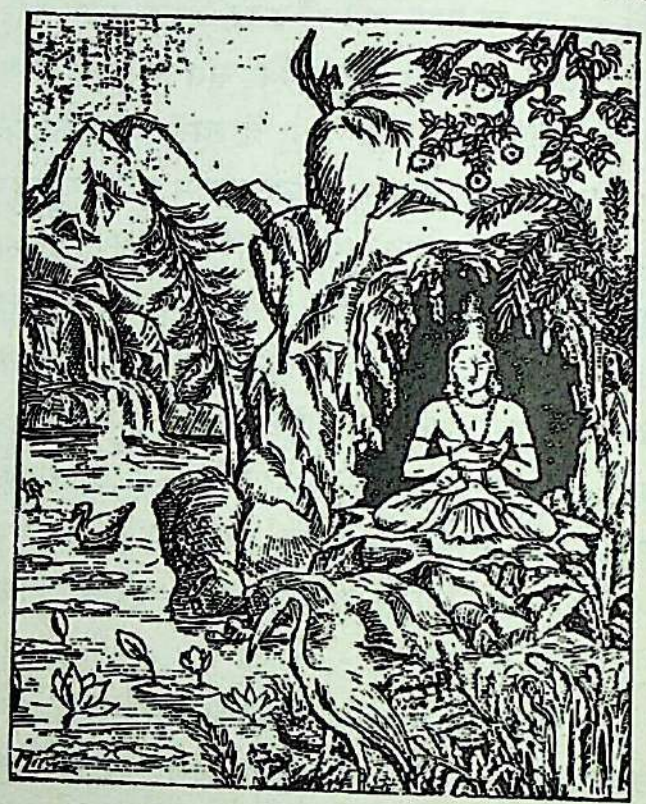

भगवान् श्रीमधुसूदन ही दिखायी देते थे। उनका मन भगवान्में लग गया था। वे योगयुक्त और जितेन्द्रिय होकर चराचर जीवों तथा सूखे और गीले आदि समस्त पदार्थोंमें केवल भगवान् श्रीविष्णुका ही दर्शन करते थे। इस प्रकार तपस्या करते उन्हें सौ वर्ष बीत गये। नियम, संयम तथा उपवासके कारण उनका सारा शरीर दुर्बल हो गया था; तो भी वे अपने तेजसे सूर्य और अग्निके समान देदीप्यमान दिखायी दे रहे थे। इस तरह तपस्यामें प्रवृत्त हो ध्यानमें लगे हुए राजा अङ्गके सामने भगवान् श्रीविष्णु प्रकट हुए और बोले—'मानद ! वर माँगो, इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीवासुदेवको उपस्थित देख राजा अङ्गको बड़ा हर्ष हुआ, उनका चित्त प्रसन्न हो गया। वे भगवान्को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।

**अङ्ग बोले**—भूतभावन ! आप ही सम्पूर्ण भूतोंकी गति हैं। पावन परमेश्वर ! आप प्राणियोंके आत्मा, सब भूतोंके ईश्वर और सगुण स्वरूप धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। आप गुणस्वरूप,

गुह्य तथा गुणातीत हैं; आपको नमस्कार है। गुण, गुणकर्ता, गुणसम्पन्न और गुणात्मा भगवान्‌को प्रणाम है। आप भव (संसाररूप), भवकर्ता तथा भक्तोंके संसार-बन्धनका अपहरण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। भवकी उत्पत्तिके कारण होनेसे आपका नाम 'भव' है; इस भवमें आप अव्यक्तरूपसे छिपे हुए हैं, इसलिये आपको 'भवगुह्य' कहा गया है तथा आप रुद्ररूपसे इस भव—संसारका विनाश करते हैं, इससे आपका नाम भव-विनाशी है। आपको प्रणाम है। आप यज्ञ, यज्ञरूप, यज्ञेश्वर और यज्ञकर्ममें संलग्न हैं; आपको नमस्कार है। शङ्ख धारण करनेवाले भगवान्‌को प्रणाम है। सोनेके समान वर्णवाले परमात्माको नमस्कार है। चक्रधारी श्रीविष्णुको प्रणाम है। सत्य, सत्यभाव, सर्वसत्यमय, धर्म, धर्मकर्ता और सर्वविधाता आप भगवान्‌को प्रणाम है। धर्म आपका अङ्ग है, आप श्रेष्ठ वीर और धर्मके आधारभूत हैं; आपको नमस्कार है। आप माया-मोहके नाशक होते हुए भी सब प्रकारकी मायाओंके उत्पादक हैं; आपको नमस्कार है। आप मायाधारी, मूर्त (साकार) और अमूर्त (निराकार) भी हैं; आपको प्रणाम है। आप सब प्रकारकी मूर्तियोंको धारण करनेवाले और कल्याणकारी हैं, आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, ब्रह्मरूप और परब्रह्मस्वरूप आप परमात्माको प्रणाम है। आप सबके धाम तथा धामधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप श्रीमान्, श्रीनिवास, श्रीधर, क्षीरसागरवासी और अमृत-स्वरूप हैं; आपको प्रणाम है। [संसाररूपी रोगके लिये] महान् औषध, दुष्टोंके लिये घोररूपधारी, महाप्रज्ञापरायण, अक्रूर (सौम्य), प्रमेध्य (परम पवित्र) तथा मेध्यों (पावन वस्तुओं) के स्वामी आप परमेश्वरको नमस्कार है। आपका कहीं अन्त नहीं है, आप अशेष (पूर्ण) और अनघ (पापरहित) हैं; आपको प्रणाम है। आकाशको प्रकाशित करनेवाले सूर्य-चन्द्रस्वरूप आपको नमस्कार है। आप हवनकर्म, हुतभोजी अग्नि तथा हविष्यरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप बुद्ध (ज्ञानी), बुध (विद्वान्) तथा सदा बुद्ध (नित्यज्ञानी) हैं; आपको प्रणाम है।

स्वाहाकार, शुद्ध अव्यक्त, महात्मा, व्यास (वेदोंका विस्तार करनेवाले), वासव (वसुपुत्र इन्द्र) तथा वसुस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप वासुदेव, विश्वरूप और वह्निस्वरूप हैं; आपको प्रणाम है। हरि, कैवल्यरूप तथा वामनभगवान्‌को नमस्कार है। सत्त्वगुणकी रक्षा करनेवाले भगवान् नृसिंहदेवको प्रणाम है। गोविन्द एवं गोपालको नमस्कार है। भगवन्! आप एकाक्षर (प्रणव), सर्वाक्षर (वर्णरूप) और हंसस्वरूप हैं; आपको प्रणाम है। तीन, पाँच और पचीस तत्त्व आपके ही रूप हैं; आप समस्त तत्त्वोंके आधार हैं। आपको नमस्कार है। आप कृष्ण (सच्चिदानन्दस्वरूप), कृष्णरूप (श्यामविग्रह) तथा लक्ष्मीनाथ हैं; आपको प्रणाम है। कमललोचन! आप परमानन्दमय प्रभुको नमस्कार है। आप विश्वके भरण-पोषण करनेवाले तथा पापोंके नाशक हैं, आपको प्रणाम है। पुण्योंमें भी उत्तम पुण्य तथा सत्यधर्मरूप आप परमात्माको नमस्कार है। शाश्वत, अविनाशी एवं पूर्ण आकाशस्वरूप परमेश्वरको प्रणाम है। महेश्वर श्रीपद्मनाभको नमस्कार है। केशव! आपके चरणकमलोंमें मैं प्रणाम करता हूँ। आनन्दकन्द! कमलाप्रिय! वासुदेव! सर्वेश्वर! ईश! मधुसूधन! मुझे अपनी दासता प्रदान कीजिये। शङ्ख धारण करनेवाले शान्तिदायी केशव! आपके चरणोंमें मस्तक झुकाता हूँ। प्रत्येक जन्ममें मुझपर कृपा कीजिये। मेरे स्वामी पद्मनाभ! संसाररूपी दुःसह अग्निके तापसे मैं दग्ध हो रहा हूँ; आप ज्ञानरूपी मेघकी धारासे मेरे तापको शान्त कीजिये तथा मुझ दीनके लिये शरणरूप हो जाइये।

अङ्गके मुखसे यह स्तोत्र सुनकर भगवान्‌ने अङ्गको अपने श्रीविग्रहका दर्शन कराया। उनका मेघके समान श्याम वर्ण तथा महान् ओजस्वी शरीर था तथा हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा दे रहे थे। सब ओर महान् प्रकाश छा रहा था। श्रीभगवान् गरुड़की पीठपर बैठे थे। अङ्गोंमें सब प्रकारके आभूषण शोभा पा रहे थे। हार, कङ्कण और कुण्डलोंसे सुशोभित तथा वनमालासे उज्ज्वल उनका अत्यन्त दिव्यरूप बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। भगवान् श्रीजनार्दन अङ्गके सामने विराजमान थे। श्रीवत्स नामक चिह्न और पुण्यमय

कौस्तुभमणिसे उनकी अपूर्व शोभा हो रही थी। वे सर्वदेवमय श्रीहरि समस्त अलङ्कारोंकी शोभासे सम्पन्न अपने श्रीविग्रहकी झाँकी कराकर ऋषिश्रेष्ठ अङ्गसे बोले—'महाभाग ! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ, तुम कोई उत्तम वर माँग लो।'

अङ्गने भगवान्‌के चरणकमलोंमें बारंबार प्रणाम किया और अत्यन्त हर्षमें भरकर कहा—'देवेश्वर ! मैं आपका दास हूँ; यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो जैसी शोभा स्वर्गमें सम्पूर्ण तेजसे सम्पन्न इन्द्रकी है, वैसी ही शोभा पानेवाला एक सुन्दर पुत्र मुझे देनेकी कृपा करें। वह पुत्र सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेवाला होना चाहिये। इतना ही नहीं, वह बालक समस्त देवताओंका प्रिय, ब्राह्मण-भक्त, दानी, त्रिलोकीका रक्षक, सत्यधर्मका निरन्तर पालन करनेवाला, यजमानोंमें श्रेष्ठ, त्रिभुवनकी शोभा बढ़ानेवाला, अद्वितीय शूरवीर, वेदोंका विद्वान्, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, शान्त, तपस्वी और सर्वशास्त्रविशारद हो। प्रभो ! यदि आप वर देनेके लिये उत्सुक हों तो मुझे ऐसा ही पुत्र होनेका वरदान दीजिये।'

**भगवान् वासुदेव बोले**—महामते ! तुम्हें इन सद्गुणोंसे युक्त उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होगी, वह अत्रिवंशका रक्षक और सम्पूर्ण विश्वका पालन करनेवाला होगा। तुम भी मेरे परम धामको प्राप्त होगे।

इस प्रकार वरदान देकर भगवान् श्रीविष्णु अन्तर्धान हो गये।

★

## सुनीथाका तपस्याके लिये वनमें जाना, रम्भा आदि सखियोंका वहाँ पहुँचकर उसे मोहिनी विद्या सिखाना, अङ्गके साथ उसका गान्धर्वविवाह, वेनका जन्म और उसे राज्यकी प्राप्ति

**ऋषियोंने पूछा**—सूतजी ! गन्धर्वश्रेष्ठ सुशङ्खने जब सुनीथाको शाप दे दिया, तब वह शाप उसके ऊपर किस प्रकार लागू हुआ ? उसके बाद सुनीथाने कौन-कौन-सा कार्य किया ? और उसको कैसा पुत्र प्राप्त हुआ ?

**सूतजी बोले**—ब्राह्मणो ! हम पहले बता आये हैं कि सुशङ्खके शाप देनेपर सुनीथा दुःखसे पीड़ित हो अपने पिताके निवासस्थानपर आयी और वहाँ उसने पितासे अपनी सारी करतूतें कह सुनायीं। मृत्युने सब बातें सुनकर अपनी पुत्री सुनीथासे कहा—'बेटी ! तूने बड़ा भारी पाप किया है। तेरा यह कार्य धर्म और तेजका नाश करनेवाला है। काम-क्रोधसे रहित, परम शान्त, धर्मवत्सल और परब्रह्ममें स्थित तपस्वीको जो चोट पहुँचाता है, उसके पापात्मा पुत्र होता है तथा उसे उस पापका फल भोगना पड़ता है। वही जितेन्द्रिय और शान्त है, जो मारनेवालेको भी नहीं मारता। किन्तु तूने निर्दोष होनेपर भी उन्हें मारा है; अतः तेरे द्वारा यह महान् पाप हो गया है। पहले तूने ही अपराध किया है; फिर उन्होंने भी शाप दे दिया। इसलिये अब तू पुण्यकर्मोंका आचरण कर, सदा साधु पुरुषोंके सङ्गमें रहकर जीवन व्यतीत कर। प्रतिदिन योग, ध्यान और दानके द्वारा काल-यापन करती रह।

बाले ! सत्सङ्ग महान् पुण्यदायक और परम कल्याणकारक होता है। सत्सङ्गका जो गुण है, उसके विषयमें एक सुन्दर दृष्टान्त देख। जल एक सद्वस्तु है; उसके स्पर्शसे, उसमें स्नान करनेसे, उसे पीनेसे तथा उसका दर्शन करनेसे भी बाहर और भीतरके दोष धुल जानेके कारण मुनिलोग सिद्धि प्राप्त करते हैं। तथा समस्त चराचर प्राणी भी जल पीते रहनेसे दीर्घायु होते हैं। [इसी प्रकार संतोंके सङ्गसे मनुष्य शुद्ध एवं सफलमनोरथ होते हैं।] पुत्री ! सत्सङ्गसे मनुष्य संतोषी, मृदुगामी, सबका प्रिय करनेवाला, शुद्ध, सरस, पुण्यबलसे सम्पन्न, शारीरिक और मानसिक मलोंको दूर करनेवाला, शान्तस्वभाव तथा सबको सुख देनेवाला होता है। जैसे सुवर्ण अग्निके सम्पर्कमें आनेपर मैल त्याग देता है, उसी प्रकार मनुष्य संतोंके सङ्गसे पापका

परित्याग कर देता है।* जिसमें सत्यकी अग्नि प्रज्वलित रहती है, वह अपने पुण्यमय तेजसे प्रकाशमान होता रहता है। जिसमें सत्यकी दीप्ति है, जो ज्ञानके द्वारा भी अत्यन्त निर्मल हो गया है तथा ध्यानके द्वारा अत्यन्त तेजस्वी प्रतीत होता है, पापसे पैदा हुए मनुष्य उसका स्पर्श नहीं कर सकते। सत्यरूपी अग्निसे महात्मा पुरुष पापरूपी ईंधनको भस्म कर डालना चाहता है। इसलिये बेटी! तुझे सत्यका संसर्ग करना चाहिये, असत्यका नहीं। महाभागे! जाओ, भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करो; पापभावको छोड़कर केवल पुण्यका आश्रय लो।'

पिताके इस प्रकार समझानेपर दुःखमें पड़ी हुई सुनीथा उनके चरणोंमें प्रणाम करके निर्जन वनमें चली गयी और वहाँ एकान्तमें रहकर तपस्या करने लगी। उसने काम, क्रोध, बालोचित चपलता, मोह, द्रोह और

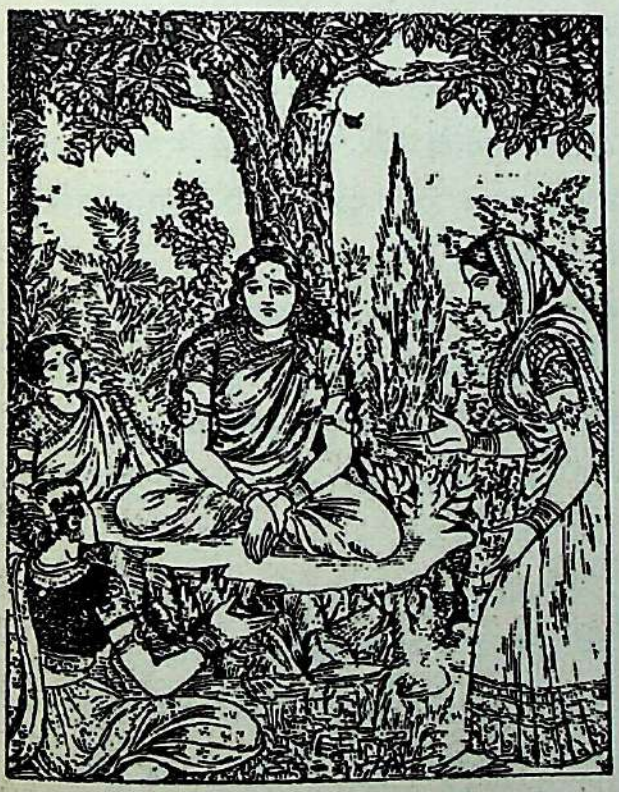

मायाको त्याग दिया। एक दिन उसके पास उसकी रम्भा आदि सखियाँ, जो तपःशक्तिसे सम्पन्न थीं, आयीं उन्होंने देखा, सुनीथा दुःखका अनुभव कर रही है। ध्यानके ही साथ उसे चिन्ता करते देख वहाँ आयी हुई सलेहियोंने कहा—'सखी! तुम्हारा कल्याण हो, तुम चिन्ता किसलिये करती हो? इस चिन्तामें क्यों डूबी हुई हो? अपने सन्तापका कारण बताओ। चिन्ता तो केवल दुःख देनेवाली होती है। एक ही चिन्ता सार्थक मानी गयी है, जो धर्मके लिये की जाती है। धर्मनन्दिनी! दूसरी चिन्ता जो योगियोंके हृदयमें होती है, [जिसके द्वारा वे ब्रह्मका चिन्तन करते हैं] वह भी सार्थक है। इनके सिवा और जितनी भी चिन्ताएँ हैं, सब निरर्थक हैं। उसकी कल्पना भी नहीं करनी चाहिये। चिन्ता शरीर, बल और तेजका नाश करनेवाली है; वह सारे सुखोंको नष्ट कर डालती है। साथ ही रूपको भी हानि पहुँचाती है। चिन्ता तृष्णा, मोह और लोभ—इन तीन दोषोंको ले आती है तथा प्रतिदिन उसीमें घुलते रहनेपर वह पापको भी उत्पन्न करती है। चिन्ता रोगोंकी उत्पत्ति और नरककी प्राप्तिका कारण है। अतः चिन्ताको छोड़ो जीव पूर्वजन्ममें अपने कर्मोंद्वारा जिन शुभाशुभ भोगोंका उपार्जन करता है, उन्हींका वह दूसरे जन्ममें उपभोग करता है। अतः समझदारको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम चिन्ता छोड़कर अपने सुख-दुःख आदिकी ही बात बताओ।

सखियोंके ये वचन सुनकर सुनीथाने अपना वृत्तान्त कहना आरम्भ किया। पहले सुशङ्खने उसे वनमें जिस प्रकार शाप दिया था, वह सारी घटना उसने सहेलियोंसे कह सुनायी। उसने अपने अपराधोंका भी वर्णन किया। उस समय महाभागा सुनीथा मानसिक दुःखसे बड़ा कष्ट

---

* सतां सङ्गो महापुण्यो बहुक्षेमप्रदायकः। बाले पश्य सुदृष्टान्तं सतां सङ्गस्य यद्गुणम्॥
अपां संस्पर्शनात्स्नानात्पानाद् दर्शनतोऽपि वा॥
मुनयः सिद्धिमायान्ति बाह्याभ्यन्तरक्षालिताः। आयुष्मन्तो भवन्त्येते लोकाः सर्वे चराचराः॥
अपि सन्तोषशीलश्च मृदुगामी प्रियङ्करः। निर्मलो रसवांश्चासौ पुण्यवीर्यो मलापहः॥
तथा शान्तो भवेत् पुत्रि सर्वसौख्यप्रदायकः। यथा वह्निप्रसङ्गाच्च मलं त्यजति काञ्चनम्॥
तथा सतां हि संसर्गात् पापं त्यजति मानवः॥ (३२। १४—१९)

पा रही थी। उसका सारा वृत्तान्त सुनकर सखियोंने कहा—'महाभागे ! तुम्हें दुःखको तो त्याग ही देना चाहिये, क्योंकि वह शरीरका नाश करनेवाला है। शुभे ! तुम्हारे अङ्गोंमें सती स्त्रियोंके जो उत्तम गुण हैं, उन्हें हम अन्यत्र कहीं नहीं देखतीं। उत्तम स्त्रियोंका पहला आभूषण रूप है, दूसरा शील, तीसरा सत्य, चौथा आर्यता (सदाचार), पाँचवाँ धर्म, छठा सतीत्व, सातवाँ दृढ़ता, आठवाँ साहस (कार्य करनेका उत्साह), नवाँ मङ्गलगान, दसवाँ कार्य-कुशलता, ग्यारहवाँ कामभावका आधिक्य और बारहवाँ गुण मीठे वचन बोलना है। बाले ! इन संभी गुणोंने तुम्हारा सम्मान बढ़ाया है; अतः देवि ! तुम तनिक भी भय न करो। वरानने ! जिस उपायसे तुम्हें धर्मात्मा पतिकी प्राप्ति होगी, उसे हम जानती हैं। तुम्हारा काम तो हमलोग ही सिद्ध कर देंगी। महाभागे ! अब तुम स्वस्थ एवं निश्चिन्त हो जाओ। हम तुम्हें एक ऐसी विद्या प्रदान करेंगी, जो पुरुषोंको मोहित कर लेती है।

यह कहकर सखियोंने सुनीथाको वह सुखदायक विद्याबल प्रदान किया और कहा—'कल्याणी ! तुम देवता आदिमेंसे जिस-जिस पुरुषको मोहित करना चाहो, उसे-उसे तत्काल मोहित कर सकती हो।' सखियोंके यों कहनेपर सुनीथाने उस विद्याका अभ्यास किया। जब वह विद्या भलीभाँति सिद्ध हो गयी, तब सुनीथा बड़ी प्रसन्न हुई। वह सखियोंके साथ ही पुरुषोंको देखती हुई वनमें घूमने लगी। तदनन्तर उसने गङ्गाजीके तटपर एक रूपवान् ब्राह्मणको देखा, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और सूर्यके समान तेजस्वी थे। वे तपस्या कर रहे थे। उनका प्रभाव दिव्य था। उन तपस्वी महर्षिका रूप देखकर सुनीथाका मन मोह गया। उसने अपनी सखी रम्भासे पूछा—'ये देवताओंसे भी श्रेष्ठ महात्मा कौन हैं?' रम्भा बोली—'सखी ! अव्यक्त परमेश्वरसे ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई है। उनसे प्रजापति अत्रिका जन्म हुआ, जो बड़े धर्मात्मा हैं। ये महामना तपस्वी उन्हींके पुत्र हैं, इनका नाम अङ्ग है। भद्रे ! ये नन्दनवनमें आये थे। वहाँ नाना प्रकारके तेजसे सम्पन्न इन्द्रका वैभव देखकर इन्होंने भी उनके समान पद पानेकी अभिलाषा की। सोचा—जब मुझे भी वंशको बढ़ानेवाला ऐसा ही पुत्र प्राप्त हो, तब मेरा जन्म कल्याणकारी हो सकता है, साथ ही यश और कीर्ति भी मिल सकती है।' ऐसा विचार करके इन्होंने तपस्या और नियमोंके द्वारा भगवान् हृषीकेशकी आराधना की है। जब भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर इनके सामने प्रकट हुए, तब इन महर्षिने इस प्रकार वर माँगा—'मधुसूदन ! मुझे इन्द्रके समान वैभवशाली तथा अपने समान तेजस्वी एवं पराक्रमी पुत्र प्रदान कीजिये। वह पुत्र आपका भक्त एवं सब पापोंका नाश करनेवाला होना चाहिये।' श्रीभगवान्ने कहा—'महात्मन् ! मैंने तुम्हें ऐसा पुत्र होनेका वर दिया। वह सबका पालन करनेवाला होगा।' [यों कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।] तबसे विप्रवर अङ्ग किसी पवित्र कन्याकी तलाशमें हैं। जैसी तुम सब अङ्गोंसे मनोहर हो, वैसे ही कन्या वे चाहते हैं; अतः इन्हींको पतिरूपमें प्राप्त करो। इनसे तुम्हें पुण्यात्मा पुत्रकी प्राप्ति होगी। ये महाभाग तपस्वी और पुण्यबलसे सम्पन्न हैं। इनके वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र इन्हींकी गुणसम्पत्तिसे युक्त, महातेजस्वी, समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, परम सौभाग्यशाली, युक्तात्मा और योगतत्त्वका ज्ञाता होगा।'

**सुनीथा बोली**—भद्रे ! तुमने ठीक कहा है, मैं ऐसा ही करूँगी। इस विद्यासे ब्राह्मणको मोहमें डालूँगी। तुम मुझे सहायता प्रदान करो; जिससे इस समय मैं उनके पास जाऊँ।

**रम्भाने कहा**—'मैं तुम्हारी सहायता करूँगी, तुम मुझे आज्ञा दो।' सुनीथाके नेत्र बड़े-बड़े थे। वह रूप और यौवनसे शोभा पा रही थी। उसने सद्भावनापूर्वक मायासे दिव्यरूप धारण किया। उसका मुख बड़ा ही मनोहर था। संसारमें उसके सुन्दर रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। वह तीनों लोकोंको मोहित करने लगी। सुन्दरी सुनीथा झूलेपर जा बैठी और वीणा बजाती हुई मधुर स्वरमें गीत गाने लगी। उसका स्वर बड़ा मोहक था। उस समय महर्षि अङ्ग अपनी पवित्र गुफाके भीतर एकान्तमें ध्यान लगाये बैठे थे। वे काम-क्रोधसे रहित

होकर भगवान् श्रीजनार्दनका चिन्तन कर रहे थे। उत्तम ताल-स्वरके साथ गाया हुआ वह मधुर और मनोहर गीत सुनकर अङ्गका चित्त ध्यानसे विचलित हो गया। उस मायामय सङ्गीतने उन्हें मोह लिया था। वे तुरंत ही आसनसे उठे और बारंबार इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने लगे। मायासे उनका मन चञ्चल हो उठा था। वे बड़े वेगसे बाहर निकले और झूलेपर बैठी हुई वीणाधारिणी स्त्रीकी ओर देखा। वह मुसकराती हुई गा रही थी। महायशस्वी अङ्ग उसके गीत और रूप दोनोंपर मुग्ध हो गये। तत्पश्चात् वे महान् मोहके वशीभूत हो उस तरुणीके पास गये। विशाल नेत्र और मनोहर मुसकानवाली मृत्युकी यशस्विनी कन्या सुनीथाको देखकर अङ्गने पूछा—'सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? सखियोंसे घिरी हुई यहाँ किस कामसे आयी हो ? किसने तुम्हें इस वनमें भेजा है ?'

परम बुद्धिमान् अङ्गका यह महत्त्वपूर्ण वचन सुनकर सुनीथा उनसे कुछ न बोली। उसने केवल सखीके मुखकी ओर देखा। रम्भाने इशारेसे कुछ कहकर सुनीथाको समझा दिया और वह स्वयं ही उन श्रेष्ठ ब्राह्मणसे आदरपूर्वक बोली—'महर्षे ! यह मृत्युकी परम सौभाग्यवती कन्या है, लोकमें इसकी सुनीथाके नामसे प्रसिद्धि है। यह सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है। इस समय यह बाला अपने लिये धर्मात्मा, तपस्वी, शान्त, जितेन्द्रिय, महाप्राज्ञ और वेदविद्या-विशारद पतिकी खोजमें है।'

यह सुनकर अङ्गने अप्सराओंमें श्रेष्ठ रम्भासे कहा—'भद्रे ! मैंने सर्वविश्वमय भगवान् श्रीहरिकी आराधना की है; उन्होंने मुझे पुत्र होनेका वरदान दिया है, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंका दाता है। अतः इस वरदानकी सफलताके निमित्त—उत्तम पुत्रकी प्राप्तिके लिये मैं किसी पुण्यबलसे सम्पन्न महापुरुषकी कन्याके साथ विवाहका विचार कर रहा था; किन्तु कहीं भी अपने लिये परम मङ्गलमयी कन्या नहीं पा सका। यह धर्मकी सुमुखी कन्या धर्माचारपरायणा है। यदि वास्तवमें यह पतिकी ही तलाशमें है तो मुझे ही स्वीकार करे। इसकी प्राप्तिके लिये मैं अदेय वस्तु भी दे सकता हूँ।'

**रम्भा बोली**—'द्विजश्रेष्ठ ! आपको इसी प्रकार उदारतापूर्वक इसकी अभीष्ट वस्तु इसे देनी चाहिये। यह सदाके लिये आपकी धर्मपत्नी हो रही है; आप कभी इसका परित्याग न करें। इसके दोष-गुणोंपर कभी आपको ध्यान नहीं देना चाहिये। विप्रवर ! इस विषयमें आप मुझे प्रत्यक्ष विश्वास दिलाइये। सत्यकी प्रतीति दिलानेवाला अपना हाथ इसके हाथमें दीजिये।' अङ्गने कहा—'एवमस्तु। निश्चय ही अपना हाथ मैंने इसे दे दिया।'

इस प्रकार सत्यका विश्वास करानेवाला सम्बन्ध करके अङ्गने सुनीथाको गान्धर्व-विवाहकी प्रणालीके अनुसार ग्रहण किया। सुनीथाको उन्हें सौंपकर रम्भाके हृदयमें बड़ा हर्ष हुआ। वह अपनी सखीसे आज्ञा लेकर घरको चली गयी। दूसरी-दूसरी सखियोंने भी प्रसन्न होकर अपने-अपने घरकी राह ली। उन सब सहेलियोंके चले जानेपर द्विजश्रेष्ठ अङ्ग अपनी प्यारी पत्नीके साथ विहार करने लगे। उसके गर्भसे उन्होंने एक सर्वलक्षण-सम्पन्न पुत्र उत्पन्न किया और उसका नाम वेन रखा। सुनीथाका वह महातेजस्वी बालक दिनोंदिन बढ़ने लगा और वेद-शास्त्र तथा उपकारी धनुर्वेदका अध्ययन करके समस्त विद्याओंका पारगामी विद्वान् हो गया। क्योंकि वह बड़ा मेधावी था। अङ्गकुमार वेन सज्जनोचित आचारसे रहता था। वह क्षत्रियधर्मका पालन करने लगा। वैवस्वत मन्वन्तर आनेपर संसारकी सारी प्रजा राजाके बिना निरन्तर कष्ट पाने लगी। उस समय सब लोगोंने वेनको ही सब लक्षणोंसे सम्पन्न देखा। तब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने उन्हें प्रजापतिके पदपर अभिषिक्त कर दिया। तत्पश्चात् समस्त ऋषि अपने-अपने तपोवनमें चले गये। उन सबके जानेके पश्चात् अकेले वेन ही राज्यका पालन करने लगे। इस प्रकार वेन भूमण्डलके प्रजापालक हुए। उनके समयमें सब लोग सुखसे जीवन बिताते थे। प्रजा उनके धर्मसे प्रसन्न रहती थी। वेनके राज्यका प्रभाव ऐसा ही था। उनके शासनकालमें सर्वत्र धर्मका प्रभाव छा रहा था।

★

## छद्मवेषधारी पुरुषके द्वारा जैन-धर्मका वर्णन, उसके बहकावेमें आकर वेनकी पापमें प्रवृत्ति और सप्तर्षियोंद्वारा उसकी भुजाओंका मन्थन

**ऋषियोंने पूछा**—सूतजी ! जब इस प्रकार राजा वेनकी उत्पत्ति ही महात्मा पुरुषसे हुई थी, तब उन्होंने धर्ममय आचरणका परित्याग करके पापमें कैसे मन लगाया ?

**सूतजी बोले**—वेनकी जिस प्रकार पापाचारमें प्रवृत्ति हुई, वह सब बात मैं बता रहा हूँ। धर्मके ज्ञाता प्रजापालक राजा वेन जब शासन कर रहे थे, उस समय कोई पुरुष छद्मवेष धारण किये उनके दरबारमें आया। उसका नंग-धड़ंग रूप, विशाल शरीर और सफेद सिर था। वह बड़ा कान्तिमान् जान पड़ता था। काँखमें मोरपंखकी बनी हुई मार्जनी (ओघा) दबाये और एक हाथमें नारियलका जलपात्र (कमण्डलु) धारण किये वह वेद-शास्त्रोंको दूषित करनेवाले शास्त्रका पाठ कर रहा था। जहाँ महाराज वेन बैठे थे, उसी स्थानपर वह बड़ी उतावलीके साथ पहुँचा। उसे आया देख वेनने पूछा—'आप कौन हैं, जो ऐसा अद्भुत रूप धारण किये यहाँ आये हैं ? मेरे सामने सब बातें सच-सच बताइये।'

वेनका वचन सुनकर उस पुरुषने उत्तर दिया—'तुम इस प्रकार धर्मके पचड़ेमें पड़कर जो राज्य चला रहे हो, वह सब व्यर्थ है। तुम बड़े मूढ़ जान पड़ते हो। [मेरा परिचय जानना चाहते हो तो सुनो] मैं देवताओंका परम पूज्य हूँ। मैं ही ज्ञान, मैं ही सत्य और मैं ही सनातन ब्रह्म हूँ। मोक्ष भी मैं ही हूँ। मैं ब्रह्माजीके देहसे उत्पन्न सत्यप्रतिज्ञ पुरुष हूँ। मुझे जिनस्वरूप जानो। सत्य और धर्म ही मेरा कलेवर है। ज्ञानपरायण योगी मेरे ही स्वरूपका ध्यान करते हैं।

**वेनने पूछा**—आपका धर्म कैसा है ? आपका शास्त्र क्या है ? तथा आप किस आचारका पालन करते हैं ? ये सब बातें बताइये।

**जिन बोला**—जहाँ 'अर्हन्' देवता, निर्ग्रन्थ गुरु और दयाको ही परम धर्म बताया गया है, वहीं मोक्ष देखा जाता है। यही जैन-दर्शन है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अब मैं अपने आचार बतला रहा हूँ। मेरे मतमें यजन-याजन और वेदाध्ययन नहीं है। सन्ध्योपासन भी नहीं है। तपस्या, दान, स्वधा (श्राद्ध) और स्वाहा (अग्निहोत्र)का भी परित्याग किया गया है। हव्य-कव्य आदिकी भी आवश्यकता नहीं है। यज्ञ-यागादि क्रियाओंका भी अभाव है। पितरोंका तर्पण, अतिथियोंका सत्कार तथा बलिवैश्वदेव आदि कर्मोंका भी विधान नहीं किया गया है। केवल 'अर्हन्' का ध्यान ही उत्तम माना गया है। जैन-मार्गमें प्रायः ऐसे धर्मका आचरण ही दृष्टिगोचर होता है।

प्राणियोंका यह शरीर पाँचों तत्त्वोंसे ही बनता और परिपुष्ट होता है। आत्मा वायुस्वरूप है; अतः श्राद्ध और यज्ञ आदि क्रियाओंकी कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे पानीमें जल-जन्तुओंका समागम होता है तथा जिस प्रकार बुलबुले पैदा होते और विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार संसारमें समस्त प्राणियोंका आवागमन होता

रहता है। अन्तकाल आनेपर वायुरूप आत्मा शरीर छोड़कर चला जाता है और पञ्चतत्त्व पाँचों भूतोंमें मिल जाते हैं। फिर मोहसे मुग्ध मनुष्य परस्पर मिलकर मरे हुए जीवके लिये श्राद्ध आदि पारलौकिक कृत्य करते हैं। मोहवश क्षयाह तिथिको पितरोंका तर्पण करते हैं। भला, मरा हुआ मनुष्य कहाँ रहता है? किस रूपमें आकर श्राद्ध आदिका उपभोग करता है? मिष्टान्न खाकर तो ब्राह्मणलोग तृप्त होते हैं। [मृतात्माको क्या मिलता है?] इसी प्रकार दानकी भी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। दान क्यों दिया जाता है? दान देना उत्कृष्ट कर्म नहीं समझना चाहिये। यदि अन्नका भोजन किया जाय तो इसीमें उसकी सार्थकता है। यदि दान ही देना हो तो दयाका दान देना चाहिये, दयापरायण होकर प्रतिदिन जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष चाण्डाल हो या शूद्र, उसे ब्राह्मण ही कहा गया है। दानका भी कोई फल नहीं है, इसलिये दान नहीं देना चाहिये। जैसा श्राद्ध, वैसा दान; दोनोंका एक ही उद्देश्य है। केवल भगवान् जिनका बताया हुआ धर्म ही भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मैं तुम्हारे सामने उसीका वर्णन करता हूँ। वह बहुत पुण्यदायक है। पहले शान्त-चित्तसे सबपर दया करनी चाहिये। फिर हृदयसे—मनके शुद्ध भावसे चराचरस्वरूप एकमात्र जिनकी आराधना करनी चाहिये। उन्हींको नमस्कार करना उचित है। नृपश्रेष्ठ वेन! माता-पिताके चरणोंमें भी कभी मस्तक नहीं झुकाना चाहिये; फिर औरोंकी तो बात ही क्या है?

**वेनने पूछा**—ये ब्राह्मण तथा आचार्यगण गङ्गा आदि नदियोंको पुण्यतीर्थ बतलाते हैं; इनका कहना है, ये तीर्थ महान् पुण्य प्रदान करनेवाले हैं। इसमें कहाँतक सत्य है, यह बतानेकी कृपा कीजिये।

**जिन बोला**—महाराज! आकाशसे बादल एक ही समय जो पानी बरसाते हैं, वह पृथ्वी और पर्वत—सभी स्थानोंमें गिरता है। वही बहकर नदियोंमें एकत्रित होता है और वहाँसे सर्वत्र जाता है। नदियाँ तो जल बहानेवाली हैं ही, उनमें तीर्थ कैसा। सरोवर और समुद्र—सभी जलके आश्रय हैं, पृथ्वीको धारण करनेवाले पर्वत भी केवल पत्थरकी राशि हैं, इनमें तीर्थ नामकी कोई वस्तु नहीं है। यदि समुद्र आदिमें स्नान करनेसे सिद्धि मिलती है तो मछलियोंको सबसे पहले सिद्ध होना चाहिये; पर ऐसा नहीं देखा जाता। राजेन्द्र! एकमात्र भगवान् जिन ही सर्वमय हैं, उनसे बढ़कर न कोई धर्म है न तीर्थ। संसारमें जिन ही सर्वश्रेष्ठ हैं; अतः उन्हींका ध्यान करो, इससे तुम्हें नित्य सुखकी प्राप्ति होगी।

इस प्रकार उस पुरुषने वेद, दान, पुण्य तथा यज्ञरूप समस्त धर्मोंकी निन्दा करके अङ्ग-कुमार राजा वेनको पापके भावोंद्वारा बहुत कुछ समझाया-बुझाया। उसके इस प्रकार समझानेपर वेनके हृदयमें पापभावका उदय हो गया। वेन उसकी बातोंसे मोहित हो गया। उसने उसके चरणोंमें प्रणाम करके वैदिक धर्म तथा सत्य-धर्म आदिकी क्रियाओंको त्याग दिया। पापात्मा वेनके शासनसे संसार पापमय हो गया—उसमें सब तरहके पाप होने लगे। वेनने वेद, यज्ञ और उत्तम धर्मशास्त्रोंका अध्ययन बंद करा दिया। उसके शासनमें ब्राह्मणलोग न दान करने पाते थे न स्वाध्याय। इस प्रकार धर्मका सर्वथा लोप हो गया और सब ओर महान् पाप छा गया। वेन अपने पिता अङ्गके मना करनेपर भी उनकी आज्ञाके विपरीत ही आचरण करता था। वह दुरात्मा न पिताके चरणोंमें प्रणाम करता था न माताके। वह पुण्य, तीर्थ-स्नान और दान आदि भी नहीं करता था। उसके महायशस्वी पिताने अपने भाव और स्वरूपपर बहुत कालतक विचार किया, किन्तु किसी तरह उनकी समझमें यह बात नहीं आयी कि वेन पापी कैसे हो गया।

तदनन्तर एक दिन सप्तर्षि अङ्ग-कुमार वेनके पास आये और उसे आश्वासन देते हुए बोले—'वेन! दुःसाहस न करो, तुम यहाँ समस्त प्रजाके रक्षक बनाये गये हो; यह सारा जगत् तुमपर ही अवलम्बित है, धर्माधर्मरूप सम्पूर्ण विश्वका भार तुम्हारे ही ऊपर है। अतः पाप-कर्म छोड़कर धर्मका आचरण करो।'

सप्तर्षियोंके यों कहनेपर वेन हँसकर बोला—'मैं ही परम धर्म हूँ और मैं ही सनातन देवता अर्हन् हूँ। धाता,

रक्षक और सत्य भी मैं ही हूँ। मैं परम पुण्यमय सनातन जैनधर्म हूँ। ब्राह्मणो! मुझ धर्मरूपी देवताका ही तुमलोग अपने कर्मोंद्वारा भजन करो।'

**ऋषि बोले**—राजेन्द्र! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण द्विजाति कहलाते हैं। इन सभी वर्णोंके लिये सनातन श्रुति ही परम प्रमाण है। समस्त प्राणी वैदिक आचारसे ही रहते हैं और उसीसे जीविका चलाते हैं। राजाके पुण्यसे प्रजा सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह करती है और राजाके पापसे उसका नाश हो जाता है; इसलिये तुम सत्यका आचरण करो। यह जैनधर्म सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका धर्म नहीं है; कलियुगका प्रवेश होनेपर ही कुछ मनुष्य इसका आश्रय लेंगे। जैनधर्म ग्रहण करके सब मनुष्य पापसे मोहित हो जायँगे; वे वैदिक आचारका त्याग करके पाप बटोरेंगे। भगवान् श्रीगोविन्द सब पापोंके हरनेवाले हैं। वे ही कलियुगमें पापोंका संहार करेंगे। पापियोंके एकत्रित होनेपर म्लेच्छोंका नाश करनेके लिये साक्षात् भगवान् श्रीविष्णु ही कल्किरूपमें अवतीर्ण होंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः वेन! तुम कलियुगके व्यवहारको त्याग दो और पुण्यका आश्रय लो।

**वेनने कहा**—ब्राह्मणो! मैं ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हूँ, विश्वका ज्ञान मेरा ही ज्ञान है। जो मेरी आज्ञाके विपरीत बर्ताव करता है, वह निश्चय ही दण्डका पात्र है।

पापबुद्धि राजा वेनको बहुत बढ़-बढ़कर बातें करते देख ब्रह्माजीके पुत्र महात्मा सप्तर्षि कुपित हो उठे। उनके शापके भयसे वेन एक बाँबीमें घुस गया; किन्तु वे ब्रह्मर्षि उस क्रूर पापीको वहाँसे बलपूर्वक पकड़ लाये और क्रोधमें भरकर राजाके बायें हाथका मन्थन करने लगे। उससे एक नीच जातिका मनुष्य पैदा हुआ, जो बहुत ही नाटा, काला और भयङ्कर था। वह निषादों और विशेषतः म्लेच्छोंका धारण-पोषण करनेवाला राजा हुआ। तत्पश्चात् ऋषियोंने दुरात्मा वेनके दाहिने हाथका मन्थन किया। उससे महात्मा राजा पृथुका जन्म हुआ, जिन्होंने वसुन्धराका दोहन किया था। उन्हींके पुण्य-प्रसादसे राजा वेन धर्म और अर्थका ज्ञाता हुआ।

★

## वेनकी तपस्या और भगवान् श्रीविष्णुके द्वारा उसे दान-तीर्थ आदिका उपदेश

**सूतजी कहते हैं**—द्विजवरो! ऋषियोंके पुण्यमय संसर्गसे, उनके साथ वार्तालाप करनेसे तथा उनके द्वारा शरीरका मन्थन होनेसे, वेनका पाप निकल गया। तत्पश्चात् उसने नर्मदाके दक्षिण तटपर रहकर तपस्या आरम्भ की। तृणविन्दु ऋषिके पापनाशक आश्रमपर निवास करते हुए वेनने काम-क्रोधसे रहित हो सौ वर्षोंसे कुछ अधिक कालतक तप किया। राजा वेन निष्पाप हो गया था। अतः उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और प्रसन्नतापूर्वक कहा—'राजन्! तुम मुझसे कोई उत्तम वर माँगो।'

**वेनने कहा**—देवेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे

यह उत्तम वर दीजिये। मैं पिता और माताके साथ इसी शरीरसे आपके परमपदको प्राप्त करना चाहता हूँ। देव ! आपके ही तेजसे आपके परमधाममें जाना चाहता हूँ।

**भगवान् श्रीविष्णु बोले**—महाभाग ! पूर्वकालमें तुम्हारे महात्मा पिता अङ्गने भी मेरी आराधना की थी। उसी समय मैंने उन्हें वरदान दिया था कि तुम अपने पुण्यकर्मसे मेरे परम उत्तम धामको प्राप्त होगे। वेन ! मैं तुम्हें पहलेका वृत्तान्त बतला रहा हूँ। तुम्हारी माता सुनीथाको बाल्यकालमें सुशङ्खने कुपित होकर शाप दिया था। तदनन्तर तुम्हारा उद्धार करनेकी इच्छासे मैंने ही राजा अङ्गको वरदान दिया कि 'तुम्हें सुयोग्य पुत्रकी प्राप्ति होगी।' गुणवत्सल ! तुम्हारे पितासे तो मैं ऐसा कह ही चुका था, इस समय तुम्हारे शरीरसे भी मैं ही [पृथुके रूपमें] प्रकट होकर लोकका पालन कर रहा हूँ। पुत्र अपना ही रूप होता है—यह श्रुति सत्य है। अतः राजन् ! मेरे वरदानसे तुम्हें उत्तम गति मिलेगी। अब तुम एकमात्र दान-धर्मका अनुष्ठान करो। दान ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है; इसलिये तुम दान दिया करो। दानसे पुण्य होता है, दानसे पाप नष्ट हो जाता है, उत्तम दानसे कीर्ति होती है और सुख मिलता है। जो श्रद्धायुक्त चित्तसे सुपात्र ब्राह्मणको गौ, भूमि, सोने और अन्न आदिका महादान देता है, वह अपने मनसे जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब मैं उसे देता हूँ।

**वेनने कहा**—जगन्नाथ ! मुझे दानोपयोगी कालका लक्षण बतलाइये, साथ ही तीर्थका स्वरूप और पात्रके उत्तम लक्षणका भी वर्णन कीजिये। दानकी विधिको विस्तारके साथ बतलानेकी कृपा कीजिये। मेरे मनमें यह सब सुननेकी बड़ी श्रद्धा है।

**भगवान् श्रीविष्णु बोले**—राजन् ! मैं दानका समय बताता हूँ। महाराज ! नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये दानकालके तीन भेद हैं। चौथा भेद प्रायिक (मृत्यु) सम्बन्धी कहलाता है। भूपाल ! मेरे अंशभूत सूर्यको उदय होते देख जो जलमात्र भी अर्पण करता है, उसके पुण्यवर्द्धक नित्यकर्मकी कहाँतक प्रशंसा की जाय। उस उत्तम बेलाके प्राप्त होनेपर जो श्रद्धा और भक्तिके साथ स्नान करता तथा पितरों और देवताओंका पूजन करके दान देता है, जो अपनी शक्ति और प्रभावके अनुसार दयार्द्र-चित्तसे अन्न-जल, फल-फूल, वस्त्र, पान, आभूषण, सुवर्ण आदि वस्तुएँ दान करता है, उसका पुण्य अनन्त होता है। राजन् ! मध्याह्न और तीसरे पहरमें भी जो मेरे उद्देश्यसे खान-पान आदि वस्तुएँ दान करता है, उसके पुण्यका भी अन्त नहीं है। अतः जो अपना कल्याण चाहता है, उस पुरुषको तीनों समय निश्चय ही दान करना चाहिये। अपना कोई भी दिन दानसे खाली नहीं जाने देना चाहिये। राजन् ! दानके प्रभावसे मनुष्य बहुत बड़ा बुद्धिमान्, अधिक सामर्थ्यशाली, धनाढ्य और गुणवान् होता है। यदि एक पक्ष या एक मासतक मनुष्य अन्नका दान नहीं करता तो मैं उसे भी उतने ही समयतक भूखा रखता हूँ। उत्तम दान न देनेवाला मनुष्य अपने मलका भक्षण करता है। मैं उसके शरीरमें ऐसा रोग उत्पन्न कर देता हूँ, जिससे उसके सब भोगोंका निवारण हो जाता है। जो तीनों कालोंमें ब्राह्मणों और देवताओंको दान नहीं देता तथा स्वयं ही मिष्टान्न खाता है, उसने महान् पाप किया है। महाराज ! शरीरको सुखा देनेवाले उपवास आदि भयंकर प्रायश्चित्तोंके द्वारा उसको अपने देहका शोषण करना चाहिये।

नरश्रेष्ठ ! अब मैं तुम्हारे सामने नैमित्तिक पुण्यकालका वर्णन करता हूँ, मन लगाकर सुनो। महाराज ! अमावास्या, पूर्णिमा, एकादशी, संक्रान्ति, व्यतीपात और वैधृति नामक योग तथा माघ, आषाढ़, वैशाख और कार्तिककी पूर्णिमा, सोमवती अमावास्या, मन्वादि एवं युगादि तिथियाँ, गजच्छाया (आश्विन कृष्णा त्रयोदशी) तथा पिताकी क्षयाह तिथि दानके नैमित्तिक काल बताये गये हैं। नृपश्रेष्ठ ! जो मेरे उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दान देता है, उसे मैं निश्चयपूर्वक महान् सुख और स्वर्ग, मोक्ष आदि बहुत कुछ प्रदान करता हूँ।

अब दानका फल देनेवाले काम्य-कालका वर्णन करता हूँ। समस्त व्रतों और देवता आदिके निमित्त जब सकामभावसे दान दिया जाता है, उसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने

दानका काम्यकाल बताया है। राजन्! मैं तुमसे आभ्युदयिक कालका भी वर्णन करता हूँ। सम्पूर्ण शुभकर्मोंका अवसर, उत्तम वैवाहिक उत्सव, नवजात पुत्रके जातकर्म आदि संस्कार तथा चूड़ाकर्म और उपनयन आदिका समय, मन्दिर, ध्वजा, देवता, बावली, कुआँ, सरोवर और बगीचे आदिकी प्रतिष्ठाका शुभ अवसर—इन सबको आभ्युदयिक काल कहा गया है। उस समय जो दान दिया जाता है, वह सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला होता है।

नृपश्रेष्ठ! अब मैं पाप और पीड़ाका निवारण करनेवाले अन्य कालका वर्णन करता हूँ। मृत्युकाल प्राप्त होनेपर अपने शरीरके नाशको समझकर दान देना चाहिये। वह दान यमलोकके मार्गमें सुख पहुँचानेवाला होता है। महाराज! नित्य, नैमित्तिक और काम्याभ्युदयिक कालसे भिन्न अन्त्यकाल (मृत्युसम्बन्धी काल)का तुम्हें परिचय दिया गया। ये सभी काल अपने कर्मोंका फल देनेवाले बताये गये हैं।

राजन्! अब मैं तुम्हें तीर्थका लक्षण बताता हूँ। उत्तम तीर्थोंमें ये गङ्गाजी बड़ी पावन जान पड़ती हैं इनके सिवा सरस्वती, नर्मदा, यमुना, तापी (ताप्ती), चर्मण्वती, सरयू, घाघरा और वेणा नदी भी पुण्यमयी तथा पापोंका नाश करनेवाली हैं। कावेरी, कपिला, विशाला, गोदावरी और तुङ्गभद्रा—ये भी जगत्को पवित्र करनेवाली मानी गयी हैं। भीमरथी नदी सदा पापोंको भय देनेवाली बतायी गयी है। वेदिका, कृष्णगङ्गा तथा अन्यान्य श्रेष्ठ नदियाँ भी उत्तम हैं। पुण्यपर्वके अवसरपर स्नान करनेके लिये इनसे सम्बद्ध अनेक तीर्थ हैं। गाँव अथवा जंगलमें—जहाँ भी नदियाँ हों, सर्वत्र ही वे पावन मानी गयी हैं। अतः वहाँ जाकर स्नान, दान आदि कर्म करने चाहिये। यदि नदियोंके तीर्थका नाम ज्ञात न हो तो उसका 'विष्णुतीर्थ' नाम रख लेना चाहिये। सभी तीर्थोंमें मैं ही देवता हूँ। तीर्थ भी मुझसे भिन्न नहीं हैं—यह निश्चित बात है। जो साधक तीर्थ-देवताओंके पास जाकर मेरे ही नामका उच्चारण करता है, उसे मेरे नामके अनुसार ही पुण्य-फल प्राप्त होता है। नृपनन्दन! अज्ञात तीर्थों और देवताओंकी संनिधिमें स्नान-दान आदि करते हुए मेरे ही नामका उच्चारण करना चाहिये। विधाताने तीर्थोंका नाम ही ऐसा रखा है।

भूमण्डलपर सात सिन्धु परम पवित्र और सर्वत्र स्थित हैं। जहाँ कहीं भी उत्तम तीर्थ प्राप्त हो, वहाँ स्नान-दान आदि कर्म करना चाहिये। उत्तम तीर्थोंके प्रभावसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। राजन्! मानस आदि सरोवर भी पावन तीर्थ बताये गये हैं तथा जो छोटी-छोटी नदियाँ हैं, उनमें भी तीर्थ प्रतिष्ठित है। कुएँको छोड़कर जितने भी खोदे हुए जलाशय हैं, उनमें तीर्थकी प्रतिष्ठा है। भूतलपर जो मेरु आदि पर्वत हैं, वे भी तीर्थरूप हैं। यज्ञभूमि, यज्ञ और अग्निहोत्रमें भी तीर्थकी प्रतिष्ठा है। शुद्ध श्राद्धभूमि, देवमन्दिर, होमशाला, वैदिक स्वाध्यायमन्दिर, घरका पवित्र-स्थान और गोशाला—ये सभी उत्तम तीर्थ हैं। जहाँ सोमयाजी ब्राह्मण निवास करता हो, वहाँ भी तीर्थकी प्रतिष्ठा है। जहाँ पवित्र बगीचे हों, जहाँ पीपल, ब्रह्मवृक्ष (पाकर) और बरगदका वृक्ष हो तथा जहाँ अन्य जंगली वृक्षोंका समुदाय हो, उन सब स्थानोंपर तीर्थका निवास है। इस प्रकार इन तीर्थोंका वर्णन किया गया। जहाँ पिता और माता रहते हैं, जहाँ पुराणोंका पाठ होता है, जहाँ गुरुका निवास है तथा जहाँ सती स्त्री रहती है वह स्थान निस्संदेह तीर्थ है। जहाँ श्रेष्ठ पिता और सुयोग्य पुत्र निवास करते हैं, वहाँ भी तीर्थ है। ये सभी स्थान तीर्थ माने गये हैं।

महाप्राज्ञ! अब तुम दानके उत्तम पात्रका लक्षण सुनो। दान श्रद्धापूर्वक देना चाहिये। उत्तम कुलमें उत्पन्न, वेदाध्ययनमें तत्पर, शान्त, जितेन्द्रिय, दयालु, शुद्ध, बुद्धिमान्, ज्ञानवान्, देवपूजापरायण, तपस्वी, विष्णुभक्त, ज्ञानी, धर्मज्ञ, सुशील और पाखण्डियोंके संगसे रहित ब्राह्मण ही दानका श्रेष्ठ पात्र है। ऐसे पात्रको पाकर अवश्य दान देना चाहिये। अब मैं दूसरे दान-पात्रोंको बताता हूँ। उपर्युक्त गुणोंसे युक्त बहिनके पुत्र (भानजे) को तथा पुत्रीके पुत्र (दौहित्र) को भी दानका उत्तम पात्र समझो। इन्हीं भावोंसे युक्त दामाद, गुरु और यज्ञकी

दीक्षा लेनेवाला पुरुष भी उत्तम पात्र है। नरश्रेष्ठ ! ये दान देनेयोग्य श्रेष्ठ पात्र बताये गये हैं। जो वेदोक्त आचारसे युक्त हो, वह भी दान-पात्र है। धूर्त और काने ब्राह्मणको दान न दे। जिसकी स्त्री अन्याययुक्त दुष्कर्ममें प्रवृत्त हो, जो स्त्रीके वशीभूत रहता हो, उसे दान देना निषिद्ध है। चोरको भी दान नहीं देना चाहिये। उसे दान देनेवाला मनुष्य तत्काल चोरके समान हो जाता है। अत्यन्त जड और विशेषतः शठ ब्राह्मणको भी दान देना उचित नहीं है। वेद-शास्त्रका ज्ञाता होनेपर भी जो सदाचारसे रहित हो, वह श्राद्ध और दानमें सम्मिलित करनेयोग्य कदापि नहीं है। श्रद्धापूर्वक उत्तम कालमें, उत्तम तीर्थमें और उत्तम पात्रको दान देनेसे उत्तम फल मिलता है। राजन् ! संसारमें प्राणियोंके लिये श्रद्धाके समान पुण्य, श्रद्धाके समान सुख और श्रद्धाके समान तीर्थ नहीं है।* नृपश्रेष्ठ ! श्रद्धा-भावसे युक्त होकर मनुष्य पहले मेरा स्मरण करे, उसके बाद सुपात्रके हाथमें द्रव्यका दान दे। इस प्रकार विधिवत् दान करनेका जो अनन्त फल है, उसे मनुष्य पा जाता है और मेरी कृपासे सुखी होता है।

═══★═══

## श्रीविष्णुद्वारा नैमित्तिक और आभ्युदयिक आदि दानोंका वर्णन और पत्नीतीर्थके प्रसङ्गमें सती सुकलाकी कथा

**भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं**—नृपश्रेष्ठ ! अब मैं पुनः नैमित्तिक दानका वर्णन करता हूँ। जो सत्पात्रको हाथी, घोड़ा और रथ दान करता है, वह भृत्योंसहित पुण्यमय प्रदेशका राजा होता है। राजा होनेके साथ ही वह धर्मात्मा, विवेकी, बलवान्, उत्तम बुद्धिसे युक्त, सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये अजेय और महान् तेजस्वी होता है। महाराज ! जो महान् पर्व आनेपर भूमिदान अथवा गोदान करता है, वह सब भोगोंका अधीश्वर होता है। जो पर्व आनेपर तीर्थमें गुप्त दान देता है, उसे शीघ्र ही अक्षय निधियोंकी प्राप्ति होती है। जो तीर्थोंमें महापर्वके प्राप्त होनेपर ब्राह्मणको सुन्दर वस्त्र और सुवर्णका महादान देता है, उसके बहुत-से सद्गुणी और वेदोंके पारगामी पुत्र उत्पन्न होते हैं। वे सभी आयुष्मान्, पुत्रवान्, यशस्वी, पुण्यात्मा, यज्ञ करनेवाले तथा तत्त्वज्ञानी होते हैं। महामते ! दान करनेवालेको सुख, पुण्य एवं धनकी प्राप्ति होती है। महाराज ! कपिला गौका दान करनेवाले पुरुष महान् सुख भोगते हैं; ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वे भी ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। सुशील ब्राह्मणको वस्त्रसहित सुवर्णका दान देकर मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी होता है और अपनी इच्छाके अनुसार वैकुण्ठ-धाममें निवास करता है।

अब आभ्युदयिक दानका वर्णन करता हूँ। नृपश्रेष्ठ ! यज्ञ आदिमें जो दान दिया जाता है, वह यदि शुद्धभावसे दिया गया हो तो उससे मनुष्यकी बुद्धि बढ़ती है तथा दाताको कभी दुःख नहीं उठाना पड़ता। वह जीवनभर सुख भोगता है और मृत्युके पश्चात् दिव्य गतिको प्राप्त होकर इन्द्रलोकके भोगोंका अनुभव करता है। इतना ही नहीं, वह हजार कल्पोंतकके लिये अपने कुलको स्वर्गमें ले जाता है। अब दूसरे प्रकारका दान बताता हूँ। शरीरको बुढ़ापेसे पीड़ित और क्षीण जानकर मनुष्यको [अपने कल्याणके लिये] दान अवश्य करना चाहिये, उसे किसीकी भी आशा नहीं रखनी चाहिये। 'मेरे मर जानेपर ये मेरे पुत्र तथा अन्यान्य स्वजन-सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव कैसे रहेंगे; मेरे बिना मेरे मित्रोंकी क्या दशा होगी ?' इत्यादि बातें सोचकर उनके मोहसे मुग्ध हुआ मनुष्य कुछ भी दान नहीं कर पाता। ऐसा जीव यमलोकके मार्गमें पहुँचकर बहुत दुःखी हो जाता है; वह भूख-प्याससे व्याकुल तथा नाना प्रकारके दुःखोंसे पीड़ित रहता है। संसारमें कोई भी किसीका नहीं है; अतः जीते-जी स्वयं ही अपने लिये दान करना

* नास्ति श्रद्धासमं पुण्यं नास्ति श्रद्धासमं सुखम्। नास्ति श्रद्धासमं तीर्थं संसारे प्राणिनां नृप॥ (३९। ७८)

चाहिये। अन्न, जल, सोना, बछड़ेसहित उत्तम गौ, भूमि तथा नाना प्रकारके फल दान करने चाहिये। यदि अधिक शुभ फलकी इच्छा हो तो पैरोंको आराम देनेवाले जूते भी दान देने चाहिये।

**वेनने पूछा**—भगवन्! पुत्र, पत्नी, माता, पिता और गुरु—ये सब तीर्थ कैसे हैं—इस विषयका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

**भगवान् श्रीविष्णु बोले**—[राजन्! पहले इस बातको सुनो कि पत्नी कैसे तीर्थ है।] काशी नामकी एक बहुत बड़ी पुरी है, जो गङ्गासे सटकर बसी होनेके कारण बहुत सुन्दर दिखायी देती है। उसमें एक वैश्य रहते थे, जिनका नाम था कृकल। उनकी पत्नी परम साध्वी तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। वह सदा धर्माचरणमें रत और पतिव्रता थी। उसका नाम था सुकला। सुकलाके अङ्ग पवित्र थे। वह सुयोग्य पुत्रोंकी जननी, सुन्दरी, मङ्गलमयी, सत्यवादिनी, शुभा और शुद्ध स्वभाववाली थी। उसकी आकृति देखनेमें बड़ी मनोहर थी। व्रतोंका पालन करना उसे अत्यन्त प्रिय था। इस प्रकार वह मनोहर मुसकानवाली सुन्दरी अनेक गुणोंसे युक्त थी। वे वैश्य भी उत्तम वक्ता, धर्मज्ञ, विवेक-सम्पन्न और गुणी थे। वैदिक तथा पौराणिक धर्मोंके श्रवणमें उनकी बड़ी लगन थी। उन्होंने तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें यह बात सुनी थी कि 'तीर्थोंका सेवन बहुत पुण्यदायक है, वहाँ जानेसे पुण्यके साथ ही मनुष्यका कल्याण भी होता है।' इस बातपर उनके मनमें श्रद्धा तो थी ही, ब्राह्मणों और व्यापारियोंका साथ भी मिल गया। इससे वे धर्मके मार्गपर चल दिये। उन्हें जाते देख उनकी पतिव्रता पत्नी पतिके स्नेहसे मुग्ध होकर बोली।

**सुकलाने कहा**—प्राणनाथ! मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ, अतः आपके साथ रहकर पुण्य करनेका मेरा अधिकार है। मैं आपके मार्गपर चलती हूँ। इस सद्भावके कारण मैं कभी आपको अपनेसे अलग नहीं कर सकती। आपकी छायाका आश्रय लेकर मैं पातिव्रत्यके उत्तम व्रतका पालन करूँगी, जो नारियोंके पापका नाशक और उन्हें सद्गति प्रदान करनेवाला है। जो स्त्री पतिपरायणा होती है, वह संसारमें पुण्यमयी कहलाती है। युवतियोंके लिये पतिके सिवा दूसरा कोई ऐसा तीर्थ नहीं है, जो इस लोकमें सुखद और परलोकमें स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला हो। साधुश्रेष्ठ! स्वामीके दाहिने चरणको प्रयाग समझिये और बायेंको पुष्कर। जो स्त्री ऐसा मानती है तथा इसी भावनाके अनुसार पतिके चरणोदकसे स्नान करती है, उसे उन तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि स्त्रियोंके लिये पतिके चरणोदकका अभिषेक प्रयाग और पुष्करतीर्थमें स्नान करनेके समान है। पति समस्त तीर्थोंके समान है। पति सम्पूर्ण धर्मोंका स्वरूप है। यज्ञकी दीक्षा लेनेवाले पुरुषको यज्ञोंके अनुष्ठानसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य साध्वी स्त्री अपने पतिकी पूजा करके तत्काल प्राप्त कर लेती है।* अतः प्रियतम! मैं भी आपकी सेवा करती हुई तीर्थोंमें चलूँगी और आपकी ही छायाका अनुसरण करती हुई लौट आऊँगी।

कृकलने अपनी पत्नीके रूप, शील, गुण भक्ति और सुकुमारता देखकर बारंबार उसपर विचार किया—'यदि मैं अपनी पत्नीको साथ ले लूँ तो मैं तो अत्यन्त दुःखदायी दुर्गम मार्गपर भी चल सकूँगा, किन्तु वहाँ सर्दी और धूपके कारण इस बेचारीका तो हुलिया ही

---

* सव्यं पादं स्वभर्तुश्च प्रयागं विद्धि सत्तम। वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत्॥
तस्य पादोदकस्नानात्तत्पुण्यं परिजायते। प्रयागपुष्करसमं स्नानं स्त्रीणां न संशयः॥
सर्वतीर्थसमो भर्ता सर्वधर्ममयः पतिः। मखानां यजनात् पुण्यं यद् वै भवति दीक्षिते।
तत् पुण्यं समवाप्नोति भर्तुश्चैव हि साम्प्रतम्॥

(४१। १३—१५)

बिगड़ जायगा। रास्तेमें कठोर पत्थरोंसे ठोकर खाकर इसके कोमल चरणोंको बड़ी पीड़ा होगी। उस अवस्थामें इसका चलना असम्भव हो जायगा। भूख-प्याससे जब इसके शरीरको कष्ट पहुँचेगा तो न जाने इसकी क्या दशा होगी। यह सदा मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है तथा नित्य-निरन्तर मेरे गार्हस्थ्यधर्मका यही एक आधार है। यह बाला यदि मर गयी तो मेरा तो सर्वनाश ही हो जायगा। यही मेरे जीवनका अवलम्बन है, यही मेरे प्राणोंकी अधीश्वरी है। अतः मैं इसे तीर्थोंमें नहीं ले जाऊँगा, अकेला ही यात्रा करूँगा।'

यह सोचकर उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—मैं तेरा कभी त्याग नहीं करूँगा। पता दिये बिना ही वे चुपकेसे साथियोंके साथ चले गये। महाभाग कृकल बड़े पुण्यात्मा थे; उनके चले जानेपर सुन्दरी सुकला देवाराधनकी बेलामें पुण्यमय प्रभातके समय जब सोकर उठी, तब उसने स्वामीको घरमें नहीं देखा। फिर तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठी और अत्यन्त शोकसे पीड़ित होकर रोने लगी। वह बाला अपने पतिके साथियोंके पास जा-जाकर पूछने लगी— 'महाभागगण ! आपलोग मेरे बन्धु हैं, मेरे प्राणनाथ कृकल मुझे छोड़कर कहीं चले गये हैं; यदि आपने उन्हें देखा हो तो बताइये। जिन महात्माओंने मेरे पुण्यात्मा स्वामीको देखा हो, वे मुझे बतानेकी कृपा करें।' उसकी बात सुनकर जानकार लोगोंने उससे परम बुद्धिमान् कृकलके विषयमें इस प्रकार कहा—'शुभे ! तुम्हारे स्वामी कृकल धार्मिक यात्राके प्रसङ्गसे तीर्थसेवनके लिये गये हैं। तुम शोक क्यों करती हो ? भद्रे ! वे बड़े-बड़े तीर्थोंकी यात्रा पूरी करके फिर लौट आयेंगे।'

राजन् ! विश्वासी पुरुषोंके द्वारा इस प्रकार विश्वास दिलाये जानेपर सुकला पुनः अपने घरमें गयी और करुण स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगी। वह पतिपरायणा नारी थी। उसने यह निश्चय कर लिया कि 'जबतक मेरे स्वामी लौटकर नहीं आयेंगे, तबतक मैं भूमिपर चटाई बिछाकर सोऊँगी। घी, तेल और दूध-दही नहीं खाऊँगी। पान और नमकका भी त्याग कर दूँगी। गुड़ आदि मीठी वस्तुओंको भी छोड़ दूँगी। जबतक मेरे स्वामीका पुनः यहाँ आगमन नहीं होगा, तबतक एक समय भोजन करूँगी अथवा उपवास करके रह जाऊँगी।'

इस प्रकार नियम लेकर सुकला बड़े दुःखसे दिन बिताने लगी। उसने एक वेणी धारण करना आरम्भ कर दिया। एक ही अँगियासे वह अपने शरीरको ढकने लगी। उसका वेष मलिन हो गया। वह एक ही मलिन वस्त्र धारण करके रहती और अत्यन्त दुःखित हो लंबी साँस खींचती हुई हाहाकार किया करती थी। विरहाग्निसे दग्ध होनेके कारण उसका शरीर काला पड़ गया। उसपर मैल जम गया। इस तरह दुःखमय आचारका पालन करनेसे वह अत्यन्त दुबली हो गयी। निरन्तर पतिके लिये व्याकुल रहने लगी। दिन-रात रोती रहती थी। रातको उसे कभी नींद नहीं आती थी और न भूख ही लगती थी।

सुकलाकी यह अवस्था देख उसकी सहेलियोंने आकर पूछा—'सखी सुकला ! तुम इस समय रो क्यों रही हो ? सुमुखि ! हमें अपने दुःखका कारण बताओ।'

**सुकला बोली**—सखियो ! मेरे धर्मपरायण स्वामी मुझे छोड़कर धर्म कमाने गये हैं। मैं निर्दोष, साध्वी, सदाचार-परायणा और पतिव्रता हूँ। फिर भी मेरे प्राणाधार मेरा त्याग करके तीर्थ-यात्रा कर रहे हैं; इसीसे मैं दुःखी हूँ। उनके वियोगसे मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है। सखी ! प्राण त्याग देना अच्छा है, किन्तु प्राणाधार स्वामीका त्यागना कदापि अच्छा नहीं है। प्रतिदिनका यह दारुण वियोग अब मुझसे नहीं सहा जाता। सखियो ! यही मेरे दुःखका कारण है। नित्यके विरहसे ही मैं कष्ट पा रही हूँ।

**सखियोंने कहा**—बहिन ! तुम्हारे पति तीर्थ-यात्राके लिये गये हैं। यात्रा पूरी होनेपर वे घर लौट आयेंगे। तुम व्यर्थ ही शोक कर रही हो। वृथा ही अपने शरीरको सुखा रही हो तथा अकारण ही भोगोंका परित्याग कर रही हो। अरी ! मौजसे खाओ-पीयो; क्यों कष्ट उठाती हो। कौन किसका स्वामी, कौन किसके पुत्र और कौन किसके सगे-सम्बन्धी हैं ? संसारमें कोई किसीका नहीं है। किसीके साथ भी नित्य सम्बन्ध नहीं है। बाले !

खाना-पीना और मौज उड़ाना, यही इस संसारका फल है। मनुष्यके मर जानेपर कौन इस फलका उपभोग करता है और कौन उसे देखने आता है।

**सुकला बोली**—सखियो ! तुमलोगोंने जो बात कही है, वह वेदोंको मान्य नहीं है। जो नारी अपने स्वामीसे पृथक् होकर सदा अकेली रहती है, उसे पापिनी समझा जाता है। श्रेष्ठ पुरुष उसका आदर नहीं करते। वेदोंमें सदा यही बात देखी गयी है कि पतिके साथ नारीका सम्बन्ध पुण्यके संसर्गसे ही होता है और किसी कारणसे नहीं। [अतः उसे सदा पतिके ही साथ रहना चाहिये।] शास्त्रोंका वचन है कि पति ही सदा नारियोंके लिये तीर्थ है। इसलिये स्त्रीको उचित है कि वह सच्चे भावसे पति-सेवामें प्रवृत्त होकर प्रतिदिन मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा पतिका ही आवाहन करे और सदा पतिका ही पूजन करे। पति स्त्रीका दक्षिण अङ्ग है। उसका वाम पार्श्व ही पत्नीके लिये महान् तीर्थ है। गृहस्थ नारी पतिके वाम भागमें बैठकर जो दान-पुण्य और यज्ञ करती है, उसका बहुत बड़ा फल बताया गया है; काशीकी गङ्गा, पुष्कर तीर्थ, द्वारकापुरी, उज्जैन तथा केदार नामसे प्रसिद्ध महादेवजीके तीर्थमें स्नान करनेसे भी वैसा फल नहीं मिल सकता। यदि स्त्री अपने पतिको साथ लिये बिना ही कोई यज्ञ करती है, तो उसे उसका फल नहीं मिलता। पतिव्रता स्त्री उत्तम सुख, पुत्रका सौभाग्य, स्नान, पान, वस्त्र, आभूषण, सौभाग्य, रूप, तेज, फल, यश, कीर्ति और उत्तम गुण प्राप्त करती है। पतिकी प्रसन्नतासे उसे सब कुछ मिल जाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो स्त्री पतिके रहते हुए उसकी सेवाको छोड़कर दूसरे किसी धर्मका अनुष्ठान करती है, उसका वह कार्य निष्फल होता है तथा लोकमें वह व्यभिचारिणी कही जाती है।* नारियोंका यौवन, रूप और जन्म—सब कुछ पतिके लिये होते हैं; इस भूमण्डलमें नारीकी प्रत्येक वस्तु उसके पतिकी आवश्यकता-पूर्तिका ही साधन है। जब स्त्री पतिहीन हो जाती है, तब उसे भूतलपर सुख, रूप, यश, कीर्ति और पुत्र कहाँ मिलते हैं। वह तो संसारमें परम दुर्भाग्य और महान् दुःख भोगती है। पापका भोग ही उसके हिस्सेमें पड़ता है। उसे सदा दुःखमय आचारका पालन करना पड़ता है। पतिके संतुष्ट रहनेपर समस्त देवता स्त्रीसे संतुष्ट रहते हैं। ऋषि और मनुष्य भी प्रसन्न रहते हैं। राजन् ! पति ही स्त्रीका स्वामी, पति ही गुरु, पति ही देवताओं-सहित उसका इष्टदेव और पति ही तीर्थ एवं पुण्य है।† पतिके बाहर चले जानेपर यदि स्त्री शृङ्गार करती है तो उसका रूप, वर्ण—सब कुछ भाररूप हो जाता है। पृथ्वीपर लोग उसे देखकर कहते हैं कि यह निश्चय ही व्यभिचारिणी है, इसलिये किसी भी पत्नीको अपने सनातन धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। सखियो ! इस विषयमें एक पुराना इतिहास सुना जाता है, जिसमें रानी सुदेवाके पापनाशक एवं पवित्र चरित्रका वर्णन है।

---

* स्वभर्तुर्वा पृथग्भूता तिष्ठत्येका सदैव हि। पापरूपा भवेन्नारी तां न मन्यन्ति सज्जनाः॥
भर्तुः सार्द्धं सदा सख्यो दृष्टो वेदेषु सर्वदा। सम्बन्धः पुण्यसंसर्गाज्जायते नान्यकारणात्॥
नारीणां च सदा तीर्थं भर्त्ता शास्त्रेषु पठ्यते। यमेवावाहयेन्नित्यं वाचा कायेन कर्मभिः॥
मनसा पूजयेन्नित्यं सत्यभावेन तत्परा। एतत्पार्श्वं महातीर्थं दक्षिणाङ्गं सदैव हि॥
तमाश्रित्य यदा नारी गृहस्था परिवर्तते। यजते दानपुण्यैश्च तस्य दानस्य यत्फलम्॥
वाराणस्यां च गङ्गायां यत्फलं न च पुष्करे। द्वारकायां न चावन्त्यां केदारे शशिभूषणे॥
लभते नैव सा नारी यजमाना सदा किल। तादृशं फलमेवं सा न प्राप्नोति कदा सखि॥
सुसुखं पुत्रसौभाग्यं स्नानं दानं च भूषणम्। वस्त्रालंकारसौभाग्यं रूपं तेजः फलं सदा॥
यशः कीर्तिमवाप्नोति गुणं च वरवर्णिनि। भर्तुः प्रसादाच्च सर्वं लभते नात्र संशयः॥
विद्यमाने यदा कान्ते अन्यधर्मं करोति या। निष्फलं जायते तस्याः पुंश्चली परिकथ्यते॥ (४१। ६०—६९)

† भर्त्ता नाथो गुरुर्भर्त्ता देवता दैवतैः सह। भर्त्ता तीर्थञ्च पुण्यञ्च नारीणां नृपनन्दन॥ (४१। ७५)

## सुकलाका रानी सुदेवाकी महिमा बताते हुए एक शूकर और शूकरीका उपाख्यान सुनाना, शूकरीद्वारा अपने पतिके पूर्वजन्मका वर्णन

**सखियोंने पूछा**—महाभागे! ये रानी सुदेवा कौन थीं? उनका आचार-विचार कैसा था? यह हमें बताओ।

**सुकला बोली**—सखियो! पहलेकी बात है, अयोध्यापुरीमें मनुपुत्र महाराज इक्ष्वाकु राज्य करते थे। वे धर्मके तत्त्वज्ञ, परम सौभाग्यशाली, सब धर्मोंके अनुष्ठानमें रत, सर्वज्ञ और देवता तथा ब्राह्मणोंके पुजारी थे। काशीके राजा वीरवर महात्मा देवराजकी सदाचारपरायणा कन्या सुदेवाके साथ उन्होंने विवाह किया था। सुदेवा सत्यव्रतके पालनमें तत्पर रहती थीं। पुण्यात्मा राजा इक्ष्वाकु उनके साथ अनेक प्रकारके उत्तम पुण्य और यज्ञ किया करते थे।

एक दिन महाराज अपनी रानीके साथ गङ्गाके तटवर्ती वनमें गये और वहाँ शिकार खेलने लगे। उन्होंने बहुत-से सिंहों और शूकरोंको मारा। वे शिकारमें लगे ही हुए थे कि इतनेमें उनके सामने एक बहुत बड़ा सूअर आ निकला उसके साथ झुंड-के-झुंड सूअर थे। वह अपने पुत्र-पौत्रोंसे घिरा था। उसकी प्रियतमा शूकरी भी उसके बगलमें मौजूद थी। उस समय सूअरने राजाको देखकर अपने पुत्रों, पौत्रों तथा पत्नीसे कहा—'प्रिये! कोसलदेशके वीर सम्राट् महातेजस्वी इक्ष्वाकु यहाँ शिकार खेलनेके लिये पधारे हैं। उनके साथ बहुत-से कुत्ते और व्याध हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये मुझपर भी प्रहार करेंगे। महाराज इक्ष्वाकु बड़े पुण्यात्मा हैं, ये राजाओंके भी राजा और समस्त विश्वके अधिपति हैं। प्रिये! मैं इन महात्माके साथ रणभूमिमें पुरुषार्थ और पराक्रम दिखाता हुआ युद्ध करूँगा। यदि मैंने अपने तेजसे इन्हें जीत लिया तो पृथ्वीपर अनुपम कीर्ति भोगूँगा और यदि वीरवर महाराजके हाथसे मैं ही युद्धमें मारा गया तो भगवान् श्रीविष्णुके लोकमें जाऊँगा। न जाने पूर्वजन्ममें मैंने कौन-सा पाप किया था, जिससे सूअरकी योनिमें मुझे आना पड़ा। आज मैं महाराजके अत्यन्त भयंकर, पैने और तेज धारवाले सैकड़ों वाणोंकी जलधारासे अपने पूर्वसञ्चित घोर पातकको धो डालूँगा। तुम मेरा मोह छोड़ दो और इन पुत्रों पौत्रों तथा श्रेष्ठ कन्याको और बाल-वृद्धसहित समूचे कुटुम्बको साथ लेकर पर्वतकी कन्दरामें चली जाओ। इस समय मेरा स्नेह त्यागकर इन बालकोंकी रक्षा करो।'

**शूकरी बोली**—नाथ! मेरे बच्चे तुम्हारे ही बलसे पर्वतपर गर्जना करते हुए विचरते हैं। तुम्हारे तेजसे ही निर्भय होकर यहाँ कोमल मूल-फलोंका आहार करते हैं। महाभाग! बीहड़ वनोंमें, झाड़ियोंमें, पर्वतोंपर और गुफाओंमें तथा यहाँ भी जो ये सिंहों और मनुष्योंके तीव्र भयकी परवा नहीं करते, उसका यही कारण है कि ये तुम्हारे तेजसे सुरक्षित हैं। तुम्हारे त्याग देनेपर मेरे सभी बच्चे दीन, असहाय और अचेत हो जायँगे। [तुमसे अलग रहनेमें मेरी भी शोभा नहीं है।] उत्तम सोनेके बने हुए दिव्य आभूषणों, रत्नमय उपकरणों तथा सुन्दर वस्त्रोंसे विभूषित होकर और पिता, माता, भाई, सास, ससुर तथा अन्य सम्बन्धियोंसे आदर पाकर भी पतिहीना स्त्री शोभा नहीं पाती। जैसे आचारके बिना मनुष्य, ज्ञानके बिना संन्यासी तथा गुप्त मन्त्रणाके बिना राज्यकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार तुम्हारे बिना इस यूथकी शोभा नहीं हो सकती। प्रिय! प्राणेश्वर! तुम्हारे बिना मैं अपने प्राण नहीं रख सकती। महामते! मैं सच कहती हूँ—तुम्हारे साथ यदि मुझे नरकमें भी निवास करना पड़े तो उसे सहर्ष-स्वीकार करूँगी। यूथपते! हम दोनों ही अपने पुत्र-पौत्रोंसहित इस उत्तम यूथको लेकर किसी पर्वतकी दुर्गम कन्दरामें घुस जायँ, यही अच्छा है। तुम जीवनकी आशा छोड़कर मरनेके लिये जा रहे हो; बताओ, इसमें तुम्हें क्या लाभ दिखायी देता है?

**सूअर बोला**—प्रिये! तुम वीरोंके उत्तम धर्मको नहीं जानती; सुनो, मैं इस समय तुम्हें वही बताता हूँ। यदि योद्धा शत्रुके प्रार्थना करने या ललकारनेपर भी

काम, लोभ, भय अथवा मोहके कारण उसे युद्धका अवसर नहीं देता, वह एक हजार युगोंतक कुम्भीपाक नामक नरकमें निवास करता है। वीर पुरुष युद्धमें शत्रुका सामना करके यदि उसे जीत लेता है तो यश और कीर्तिका उपभोग करता है; अथवा निर्भयतापूर्वक लड़ता हुआ यदि स्वयं ही मारा जाता है, तो वीरलोकको प्राप्त हो दिव्य भोगोंका उपभोग करता है। प्रिये ! बीस हजार वर्षोंतक वह इस सुखका अनुभव करता है। मनुपुत्र राजा इक्ष्वाकु यहाँ पधारे हैं, जो स्वयं बड़े वीर हैं। ये मुझसे युद्ध चाहें तो मुझे अवश्य ही इन्हें युद्धका अवसर देना चाहिये। शुभे ! महाराज युद्धके अतिथि होकर आये हैं और अतिथि सनातन श्रीविष्णुका स्वरूप होता है; अतः युद्धरूपसे इनका सत्कार करना मेरा आवश्यक कर्तव्य है।

**शूकरी बोली**—प्राणनाथ ! यदि आप महात्मा राजाको युद्धका अवसर प्रदान करेंगे तो मैं भी आपके साथ रहकर आपका पराक्रम देखूँगी।

यों कहकर शूकरीने तुरंत अपने प्यारे पुत्रोंको बुलाया और कहा—'बच्चो ! मेरी बात सुनो; युद्धभूमिमें सनातन विष्णुरूप अतिथि पधारे हैं, उनके सत्कारके लिये मेरे स्वामी जायँगे; इनके साथ मुझे भी वहाँ जाना चाहिये। तुम्हारी रक्षा करनेवाले प्राणनाथ जबतक यहाँ उपस्थित हैं, तभीतक तुम दूरके पर्वतकी किसी दुर्गम गुफामें चले जाओ। पुत्रो ! मनुपुत्र इक्ष्वाकु बड़े बलवान् और दुर्दमनीय राजा हैं; ये हमलोगोंके लिये कालस्वरूप हैं, सबका संहार कर डालेंगे। अतः तुम दूर भाग जाओ।'

**पुत्रोंने कहा**—जो माता-पिताको [संकटमें] छोड़कर जाता है, वह पापात्मा है, उसे महारौद्र एवं अत्यन्त घोर नरकमें गिरना पड़ता है, यह उसके लिये अनिवार्य गति है। जो निर्दयी अपनी माताके पवित्र दूधको पीकर परिपुष्ट होता है और माँ-बापको [विपत्तिमें] छोड़कर चल देता है, वह कीड़ों और दुर्गन्धसे परिपूर्ण नरकमें पड़कर सदा पीबका भोजन करता है। इसलिये माँ ! हमलोग पिताको और तुम्हें यहाँ छोड़कर नहीं जायँगे।

ऐसा निश्चय करके समस्त शूकर मोर्चा बाँधकर खड़े हो गये। वे सभी बल और तेजसे सम्पन्न थे।

उधर अयोध्याके वीर महाराज मनुकुमार इक्ष्वाकु अपनी सुन्दरी भार्या तथा चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आखेटके लिये चले। उनके आगे-आगे व्याध, कुत्ते और तेज चलनेवाले वीर योद्धा थे। वे लोग उस स्थानके समीप गये, जहाँ बलवान् शूकर अपनी पत्नीके साथ मौजूद था। छोटे-बड़े बहुत-से सूअर सब ओरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। गङ्गाके किनारे मेरु पर्वतकी तराईमें पहुँचकर महाराज इक्ष्वाकुने व्याधोंसे कहा—'बड़े-बड़े वीर योद्धाओंको शूकरका सामना करनेके लिये भेजो।' इस प्रकार महाराजकी आज्ञासे भेजे हुए बलवान्, तेजस्वी तथा पराक्रमी योद्धा हाँका डालते हुए दौड़े और वायुके समान वेगसे चलकर तत्काल शूकरके पास जा पहुँचे। वनचारी व्याध अपने तीखे बाणों तथा चमचमाते हुए नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे वीरोंका बाना बाँधकर खड़े हुए और उस वराहको बींधने लगे।

यह देख वह यूथपति वराह अपने सैकड़ों पुत्र, पौत्र तथा बान्धवोंके साथ युद्धके मैदानमें आ धमका और शत्रुओंपर टूट पड़ा। वह बड़े वेगसे उनका संहार करने लगा। व्याध उसकी पैनी दाढ़ोंसे घायल हो-होकर समरभूमिमें गिरने लगे। तदनन्तर शूकरों और व्याधोंमें भयानक संग्राम आरम्भ हुआ। वे क्रोधसे लाल आँखें किये एक-दूसरेको मारने लगे। व्याधोंने बहुतेरे शूकरोंको और शूकरोंने अनेक व्याधोंको मार गिराया। वहाँकी जमीन खूनसे रँग गयी। कितने ही सूअर मर-खप गये, कितने घायल हुए और कितने ही भाग-भागकर बीहड़ स्थानों, झाड़ियों, कन्दराओं और अपनी-अपनी माँदोंमें जा घुसे। यही दशा व्याधोंकी भी हुई। कितने ही मर गये, कितने ही सूअरोंकी पैनी दाढ़ोंके आघातसे कट गये और कितने ही टुकड़े-टुकड़े होकर प्राण त्याग स्वर्गलोकको चले गये। केवल वह बलाभिमानी वराह अपनी पत्नी तथा पाँच-सात

पुत्र-पौत्रोंके साथ युद्धकी इच्छासे मैदानमें डटा रहा। उस समय शूकरीने उससे कहा—'नाथ! मुझे और इन बालकोंको साथ लेकर अब यहाँसे चले चलो।'

**शूकरने कहा**—महाभागे! दो सिंहोंके बीचमें सूअर पानी पी सकता है, किन्तु दो सूअरोंके बीचमें सिंह नहीं पी सकता। सूअर-जातिमें ऐसा उत्तम बल देखा जाता है। यदि मैं संग्राममें पीठ दिखाकर चला जाऊँ तो उस बलका नाश ही करूँगा—मेरी जातिकी प्रसिद्धि ही नष्ट हो जायगी। मुझे परम कल्याणदायक धर्मका ज्ञान है। जो योद्धा काम, लोभ अथवा भयसे युद्धतीर्थका त्याग करके भाग जाता है, वह निःसन्देह पापी है। जो तीखे शस्त्रोंका व्यूह देखकर प्रसन्न होता है और रणसिन्धुमें गोता लगाकर तीर्थके पार पहुँच जाता है, वह अपने आगेकी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है और अन्तमें विष्णुधामको जाता है। जो अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित योद्धाको सामने आते देख प्रसन्नतापूर्वक उसकी ओर बढ़ता है, उसके पुण्य-फलका वर्णन सुनो—'उसे पग-पगपर गङ्गा-स्नानका महान् फल प्राप्त होता है। जो काम या लोभवश युद्धसे भागकर घरको चला जाता है, वह अपनी माताके दोषको प्रकाशित करता है और व्यभिचारसे उत्पन्न कहलाता है। मैं इस वीर-धर्मको जानता हूँ, अतः युद्ध छोड़कर भाग कैसे सकता हूँ। तुम बच्चोंको लेकर यहाँसे चली जाओ और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो।

पतिकी बात सुनकर शूकरी बोली—'प्रिय! मैं तुम्हारे स्नेह-बन्धनमें बँधी हूँ; तुमने प्रेम, आदर, हास-परिहास तथा रति-क्रीड़ा आदिके द्वारा मेरे मनको बाँध लिया है। अतः मैं पुत्रोंके साथ तुम्हारे सामने प्राण त्याग करूँगी।' इस तरह बातचीत करके एक-दूसरेका हित चाहनेवाले दोनों पति-पत्नीने युद्धका ही निश्चय किया। कोसलसम्राट् इक्ष्वाकुने देखा—वर्षाके समय आकाशमें मेघ जिस प्रकार बिजलीकी चमकके साथ गर्जते हैं, उसी तरह अपनी पत्नीके साथ शूकर भी गर्जना करता है और अपने खुरोंके अग्रभागसे मानो महाराजको युद्धके लिये ललकार रहा है।

अपनी दुर्द्धर सेनाको उस दुर्द्धर्ष वराहके द्वारा परास्त होते देख राजा इक्ष्वाकुको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने धनुष और कालके समान भयंकर बाण लेकर अश्वके द्वारा बड़े वेगसे शूकरपर आक्रमण किया। उन्हें आते देख सूअर भी आगे बढ़ा। वह घोड़ेके पैरोंके नीचे आ गया, इतनेमें ही राजाने उसे अपनी तीखे बाणका निशाना बनाया। सूअर घायल होकर बड़े वेगसे उछला और घोड़ेसहित राजाको लाँघ गया। उसने अपनी दाढ़ोंसे मारकर घोड़ेके पैरोंमें घाव कर दिया था। इससे उसको बड़ी पीड़ा हो रही थी, उससे चला नहीं जाता था; अन्ततोगत्वा वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब राजा एक छोटे-से रथपर सवार हो गये। यूथपति सूअर अपनी जातिके स्वभावानुसार रणभूमिमें भयंकर गर्जना कर रहा था, इतनेमें ही कोसलसम्राट्ने उसके ऊपर गदासे प्रहार किया। गदाका आघात पाकर उसने शरीर त्याग दिया

और भगवान् श्रीविष्णुके श्रेष्ठ धाममें प्रवेश किया। इस प्रकार महाराज इक्ष्वाकुके साथ युद्ध करके वह शूकरराज हवाके वेगसे उखड़कर गिरे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय देवता उसके ऊपर

फूलोंकी वर्षा कर रहे थे।

तदनन्तर वे समस्त शूर, क्रूर और भयंकर व्याध हाथोंमें पाश लिये उस शूकरीकी ओर चले। शूकरी अपने चार बच्चोंको घेरकर खड़ी थी। उस महासमरमें कुटुम्बसहित अपने पतिको मारा गया देख वह शोकसे मोहित होकर पुत्रोंसे बोली—'बच्चो ! जबतक मैं यहाँ खड़ी हूँ, तबतक शीघ्र गतिसे अन्यत्र भाग जाओ।' यह सुनकर उनमेंसे ज्येष्ठ पुत्रने कहा—'मैं जीवनके लोभसे अपनी माताको संकटमें छोड़कर चला जाऊँ, यह कैसे हो सकता है। माँ ! यदि मैं ऐसा करूँ तो मेरे जीवनको धिक्कार है। मैं अपने पिताके वैरका बदला लूँगा। युद्धमें शत्रुको परास्त करूँगा। तुम मेरे तीनों छोटे भाइयोंको लेकर पर्वतकी कन्दरामें चली जाओ। जो माता-पिताको विपत्तिमें छोड़कर जाता है, वह पापात्मा है। उसे कोटि-कोटि कीड़ोंसे भरे हुए नरकमें गिरना पड़ता है।' बेटेकी बात सुनकर शूकरी दुःखसे आतुर होकर बोली—'आह, मेरे बच्चे ! मैं महापापिनी तुझे छोड़कर कैसे जा सकती हूँ। मेरे ये तीन पुत्र भले ही चले जायँ।'

ऐसा निश्चय करके उन दोनों माँ-बेटेने शेष तीन बच्चोंको आगे कर लिया और व्याधोंके देखते-देखते वे विकट मार्गसे जाने लगे। समस्त शूकर अपने तेज और बलसे जोशमें आकर बारंबार गरज रहे थे। इसी बीचमें वे शूरवीर व्याध वेगसे चलकर वहाँ आ पहुँचे। शूकरी और शूकर—दोनों माँ-बेटे व्याधोंका मार्ग रोककर खड़े हो गये। व्याध तलवार, बाण और धनुष लिये अधिक समीप आ गये और तीखे तोमर, चक्र तथा मुसलोंका प्रहार करने लगे। ज्येष्ठ पुत्र माताको पीछे करके व्याधोंके साथ युद्ध करने लगा। कितनोंको दाढ़ोंसे कुचलकर उसने मार डाला। कितनोंको थूथुनोंकी चोटसे धराशायी कर दिया और कितनोंको खुरोंके अग्रभागसे मारकर मौतके घाट उतार दिया। बहुत-से शूरवीर रणभूमिमें ढेर हो गये। राजा इक्ष्वाकु संग्राममें सूअरको युद्ध करते देखकर और उसे पिताके समान ही शूरवीर जानकर स्वयं उसके सामने आये। महातेजस्वी, प्रतापी मनुकुमारके हाथमें धनुष-बाण थे। उन्होंने अर्धचन्द्राकार तीखे बाणसे शूकरपर प्रहार किया। उसकी छाती छिद गयी और वह राजाके हाथसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। पुत्रके शोक और मोहसे अत्यन्त व्याकुल होकर शूकरी उसकी लाशपर गिर पड़ी; फिर सँभलकर उसने अपने थुथूनसे ऐसा प्रहार किया, जिससे अनेकों शूरवीर धरतीपर सो गये। कितने ही व्याध धराशायी हुए, कितने ही भाग गये और कितने ही कालके गालमें चले गये। शूकरी अपने दाढ़ोंके प्रहारसे राजाकी विशाल सेनाको खदेड़ने लगी।

यह देख काशीनरेश देवराजकी पुत्री महारानी सुदेवाने अपने पतिसे कहा—'प्राणनाथ ! इस शूकरीने आपकी बहुत बड़ी सेनाका विध्वंस कर डाला; फिर भी आप इसकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? मुझे इसका कारण बताइये।' महाराजने उत्तर दिया—'प्रिये ! यह स्त्री है। स्त्रीके वधसे देवताओंने बहुत बड़ा पाप बताया है; इसीलिये मैं इस शूकरीको न तो स्वयं मारता हूँ और न किसी दूसरेको ही इसे मारनेके लिये भेज रहा हूँ। इसके वधके कारण होनेवाले पापसे मुझे भय लगता है।' यों कहकर महाबुद्धिमान् राजा चुप हो गये। व्याधोंमें एकका नाम भार्गव था; उसने देखा—शूकरी समस्त वीरोंका संहार कर रही है, बड़े-बड़े सूरमा भी उसके सामने टिक नहीं पाते हैं। यह देख व्याधने बड़े वेगसे एक पैने बाणका प्रहार किया और उस शूकरीको बींध डाला। शूकरीने भी झपटकर व्याधको पछाड़ दिया। व्याधने गिरते-गिरते शूकरीपर तेज धारवाली तलवारका भरपूर हाथ जमाया। वह बुरी तरहसे घायल होकर गिर पड़ी और धीरे-धीरे साँस लेती हुई मूर्च्छित हो गयी।

रानी सुदेवाने उस पुत्रवत्सला शूकरीको जब धरतीपर गिरकर बेहोश होते और ऊपरको श्वास लेते देखा तो उनका हृदय करुणासे भर आया। वे उस दुःखिनीके पास गयीं और ठंडे जलसे उसका मुँह धोया, फिर समस्त शरीरपर पानी डाला। इससे शूकरीको कुछ होश हुआ। उसने रानीको पवित्र एवं शीतल जलसे अपने शरीरका अभिषेक करते देख मनुष्योंकी बोलीमें

कहा—'देवि ! तुमने मेरा अभिषेक किया है, इसलिये तुम्हारा कल्याण हो; तुम्हारे दर्शन और स्पर्शसे आज

मेरी पापराशि नष्ट हो गयी।' पशुके मुखसे यह अद्भुत वचन सुनकर रानी सुदेवाको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे मन-ही-मन कहने लगीं—'यह तो आज मैंने विचित्र बात देखी; पशु-जातिकी यह मादा इतनी स्पष्ट, सुन्दर, स्वर और व्यञ्जनसे युक्त तथा उत्तम संस्कृत बोल रही है !' महाभागा सुदेवा इस घटनासे हर्ष-मग्न होकर अपने पतिसे बोलीं—'राजन् ! इधर देखिये, यह अपूर्व जीव है; पशु-जातिकी स्त्री होकर भी मानवीकी भाँति उत्तम संस्कृत बोल रही है।' इसके बाद रानीने शूकरीसे उसका परिचय पूछा—'भद्रे ! तुम कौन हो ? तुम्हारा बर्ताव तो बड़ा विचित्र दिखायी देता है; तुम पशुयोनिकी स्त्री होकर भी मनुष्योंकी तरह बोलती हो। अपने और अपने स्वामीके पूर्व-जन्मका वृत्तान्त सुनाओ।'

**शूकरी बोली**—देवि ! मेरे पति पूर्वजन्ममें संगीत-कुशल गन्धर्व थे; इनका नाम रङ्ग विद्याधर था। [कुछ लोग इन्हें गीतविद्याधर भी कहते थे।] ये सब शास्त्रोंके मर्मज्ञ थे। एक समयकी बात है, महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजी मनोहर कन्दराओं और झरनोंसे सुशोभित गिरिवर मेरुपर निष्कपट भावसे तपस्या कर रहे थे। रङ्गविद्याधर अपनी इच्छाके अनुसार उस स्थानपर गये और एक वृक्षकी छायामें बैठकर गानेका अभ्यास करने लगे। उनका मधुर संगीत सुनकर मुनिका चित्त ध्यानसे विचलित हो गया। वे गायकके पास जाकर बोले— 'विद्वन् ! तुम्हारे गीतके उत्तम स्वर, ताल, लय और मूर्च्छनायुक्त भावसे मेरा मन ध्यानसे विचलित हो गया है। जब मन निश्चल होता है, तभी समस्त विद्याएँ प्राणियोंको सिद्धि प्रदान करती हैं। मन एकाग्र होनेपर ही तप और मन्त्रोंकी सिद्धि होती है। इन्द्रियोंका यह महान् समुदाय अधम और चञ्चल है; यह मनको ध्यानसे हटाकर सदा विषयोंकी ओर ही ले जाता है। इसलिये जहाँ शब्द, रूप तथा युवती स्त्रीका अभाव होता है, वहीं मुनिलोग अपने तपकी सिद्धिके लिये जाया करते हैं। [तुम्हारे इस संगीतसे मेरे ध्यानमें बाधा पड़ती है] अतः मेरा अनुरोध है कि तुम इस स्थानको छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाओ; अन्यथा मुझे ही यह स्थान छोड़कर दूसरी जगह जाना पड़ेगा।'

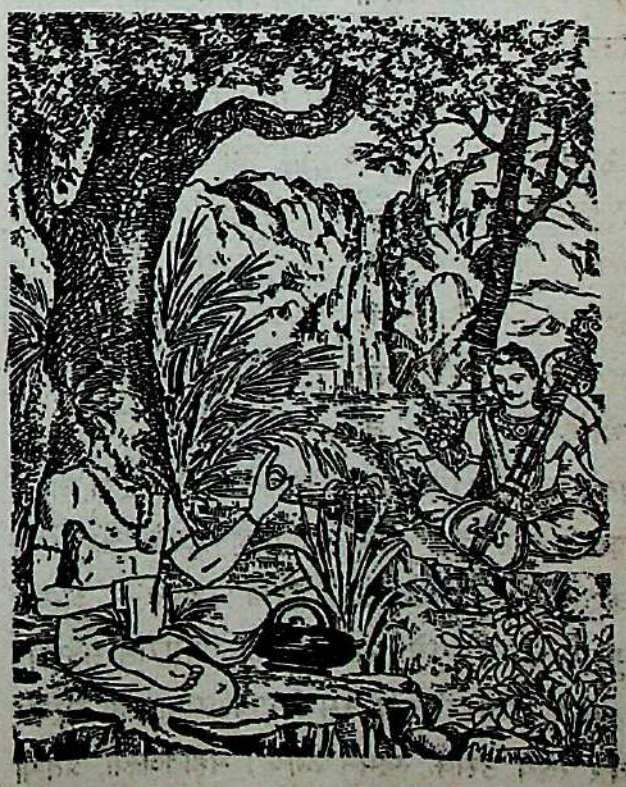

**गीतविद्याधरने कहा**—महामते ! जिस महात्माने इन्द्रियोंके समुदाय तथा उसके बलको जीत लिया है, उसीको तपस्वी, योगी, धीर और साधक कहते हैं। आप जितेन्द्रिय नहीं हैं, इसीलिये तेजसे हीन हैं। ब्रह्मन् ! यह वन सबके लिये साधारण है—इसपर सबका समान अधिकार है; इसमें कोई 'ननु नच' नहीं हो सकता। जैसे इसके ऊपर देवताओं और सम्पूर्ण जीवोंका स्वत्व है, उसी प्रकार मेरा और आपका भी है। ऐसी दशामें मैं इस उत्तम वनको छोड़कर क्यों चला जाऊँ ? आप जायँ, चाहे रहें; मुझे इसकी परवा नहीं है।

विप्रवर पुलस्त्यजी धर्मात्मा हैं; इसलिये वे क्षमा करके स्वयं ही उस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले गये और योगासनसे बैठकर तपस्या करने लगे। महाभाग मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यके चले जानेपर दीर्घकालके पश्चात् गन्धर्वको पुनः उनका स्मरण हो आया। वे सोचने लगे—'मुनि मेरे ही भयसे भाग गये थे—चलूँ, देखूँ। कहाँ गये ? क्या करते हैं और कहाँ रहते हैं ?' यह विचारकर गीतविद्याधरने पहले महर्षिके स्थानका पता लगाया और फिर वराहका रूप धारण करके वे उनके उत्तम आश्रमपर गये, जहाँ पुलस्त्यजी आसनपर विराजमान थे। उनके शरीरसे तेजकी ज्वाला उठ रही थी। किन्तु मेरे पतिपर इसका कुछ प्रभाव न पड़ा, वे कुचेष्टापूर्वक थूथुनके अग्रभागसे उन नियमशील ब्राह्मणका तिरस्कार करने लगे। यहाँतक कि उनके आगे जाकर उन्होंने मल-मूत्रतक कर दिया; किन्तु पशु जानकर मुनिने उनको छोड़ दिया—दण्ड नहीं दिया। [मुनिकी इस क्षमाका मेरे पतिपर उलटा ही असर हुआ, उनकी उद्दण्डता और भी बढ़ गयी।] एक दिन शूकरके ही रूपमें वे फिर वहाँ गये और बारंबार अट्टहास करने लगे। कभी ठहाका मारकर हँसते, कभी रोते और कभी मधुर स्वरसे गीत गाते थे।

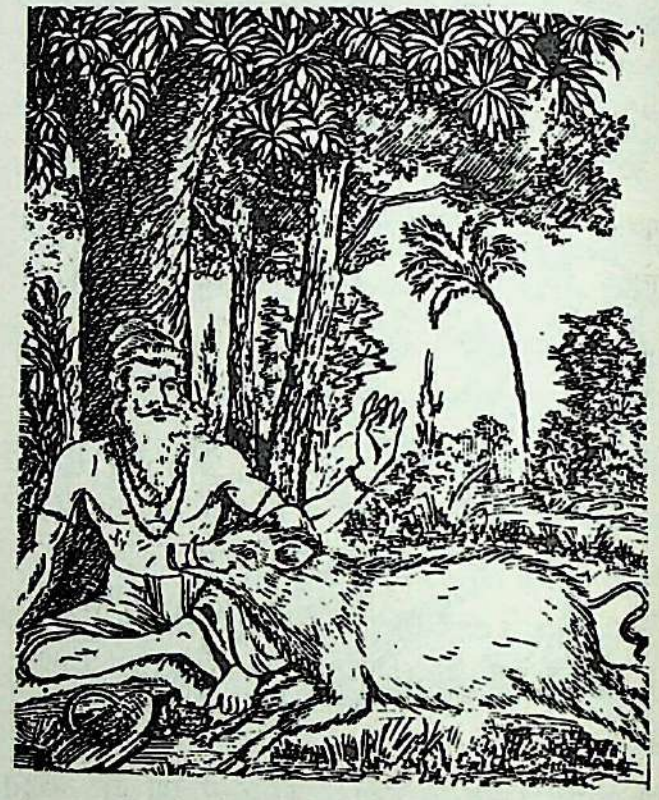

सूअरकी चेष्टा छिपी देखकर मुनि समझ गये कि हो-न-हो, यह वही नीच गन्धर्व है और मुझे ध्यानसे विचलित करनेकी चेष्टा कर रहा है। फिर तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे शाप देते हुए बोले—'ओ महापापी ! तू शूकरका रूप धारण करके मुझे इस प्रकार विचलित कर रहा है, इसलिये अब शूकरकी ही योनिमें जा।' देवि ! यही मेरे पतिके शूकरयोनिमें पड़नेका वृत्तान्त है। यह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब अपना हाल बताती हूँ, सुनो। पूर्वजन्ममें मुझ पापिनीने भी घोर पातक किया है।

★

## शूकरीद्वारा अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन तथा रानी सुदेवाके दिये हुए पुण्यसे उसका उद्धार

**शूकरी बोली**—कलिङ्ग (उड़ीसा) नामसे प्रसिद्ध एक सुन्दर देश है, वहाँ श्रीपुर नामका एक नगर था। उसमें वसुदत्त नामके एक ब्राह्मण निवास करते थे। वे सदा सत्यधर्ममें तत्पर, वेदवेत्ता, ज्ञानी, तेजस्वी, गुणवान् और धनधान्यसे भरे-पूरे थे। अनेक पुत्र-पौत्र उनके घरकी शोभा बढ़ाते थे। मैं वसुदत्तकी पुत्री थी; मेरे और भी कई भाई, स्वजन तथा बान्धव थे। परम बुद्धिमान् पिताने मेरा नाम सुदेवा रखा। मैं अप्रतिम सुन्दरी थी। संसारमें दूसरी कोई स्त्री ऐसी नहीं थी, जो रूपमें मेरी समानता कर सके। रूपके साथ ही चढ़ती जवानी पाकर मैं गर्वसे उन्मत्त हो उठी। मेरी मुसकान बड़ी मनोहर थी। बचपनके बाद जब मुझे हाव-भावसे युक्त यौवन प्राप्त हुआ, तब मेरा भरा-पूरा रूप देखकर मेरी माताको बड़ा दुःख हुआ। वह पितासे बोली—'महाभाग ! आप कन्याका विवाह क्यों नहीं कर देते ? अब यह जवान हो चुकी है, इसे किसी योग्य वरको सौंप दीजिये।' वसुदत्तने कहा—'कल्याणी ! सुनो; मैं उसी वरके साथ इसका विवाह करूँगा, जो विवाहके पश्चात् मेरे ही घरपर निवास करे; क्योंकि सुदेवा मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी है। मैं इसे आँखोंसे ओट नहीं होने देना चाहता।'

तदनन्तर एक दिन सम्पूर्ण विद्याओंमें विशारद एक कौशिक-गोत्री ब्राह्मण भिक्षाके लिये मेरे द्वारपर आये। उन्होंने वेदोंका पूर्ण अध्ययन किया था। वे बड़े अच्छे स्वरसे वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते थे। उन्हें आया देख मेरे पिताने पूछा—'आप कौन हैं ? आपका नाम, कुल, गोत्र और आचार क्या है ? यह बताइये।' पिताकी बात सुनकर ब्राह्मण-कुमारने उत्तर दिया—'कौशिकवंशमें मेरा जन्म हुआ है। मैं वेद-वेदाङ्गोंका पारंगत विद्वान् हूँ, मेरा नाम शिवशर्मा है; मेरे माता-पिता अब इस संसारमें नहीं हैं।' शिवशर्माने जब इस प्रकार अपना परिचय दिया, तब मेरे पिताने शुभ लग्नमें उनके साथ मेरा विवाह कर दिया। अब उनके साथ ही मैं पिताके घरपर रहने लगी। परन्तु मैं माता-पिताके धनके घमंडसे अपनी विवेकशक्ति खो बैठी थी। मुझ पापिनीने कभी भी अपने स्वामीकी सेवा नहीं की। मैं सदा उन्हें क्रूर दृष्टिसे ही देखा करती थी। कुछ व्यभिचारिणी स्त्रियोंका साथ हो गया था, अतः सङ्ग-दोषसे मेरे मनमें भी वैसा ही नीच भाव आ गया था। मैं जहाँ-तहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक घूमती-फिरती और माता-पिता, पति तथा भाइयोंके हितकी परवा नहीं करती थी। शिवशर्माका शील और उनकी साधुता सबको ज्ञात थी, अतः माता-पिता आदि सब लोग मेरे पापसे दुःखी रहते थे। मेरा दुष्कर्म देख पतिदेव उस घरको छोड़कर चले गये। उनके जानेसे पिताजीको बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें दुःखसे व्याकुल देख माताने पूछा—'नाथ ! आप चिन्तित क्यों हो रहे हैं ?' वसुदत्तने कहा—'प्रिये ! सुनो, दामाद मेरी पुत्रीको त्यागकर चले गये। सुदेवा पापाचारिणी है और वे पण्डित तथा बुद्धिमान् थे। मैं क्या जानता था कि यह मेरी कन्या सुदेवा ऐसी दुष्टा और कुलनाशिनी होगी।'

**ब्राह्मणी बोली**—नाथ ! आज आपको पुत्रीके गुण और दोषका ज्ञान हुआ है—इस समय आपकी आँखें खुली हैं; किन्तु सच तो यह है कि आपके ही मोह और स्नेहसे—लाड़ और प्यारसे यह इस प्रकार बिगड़ी है। अब मेरी बात सुनिये—सन्तान जबतक पाँच वर्षकी न हो जाय, तभीतक उसका लाड़-प्यार करना चाहिये। उसके बाद सदा सन्तानकी शिक्षाकी ओर ध्यान देते हुए उसका पालन-पोषण करना उचित है। नहलाना-धुलाना, उत्तम वस्त्र पहनाना, अच्छे खान-पानका प्रबन्ध करना—ये सब बातें सन्तानकी पुष्टिके लिये आवश्यक हैं। साथ ही पुत्रोंको उत्तम गुण और विद्याकी ओर भी लगाना चाहिये। पिताका कर्तव्य है कि वह सन्तानको सद्गुणोंकी शिक्षा देनेके लिये सदा कठोर बना रहे। केवल पालन-पोषणके लिये उसके प्रति मोह-ममता

रखे। पुत्रके सामने कदापि उसके गुणोंका वर्णन न करे। उसे राहपर लानेके लिये कड़ी फटकार सुनाये तथा इस प्रकार उसे साधे, जिससे वह विद्या और गुणोंमें सदा ही निपुण होता जाय। जब माता अपनी कन्याको, सास अपनी पुत्र-वधूको और गुरु अपने शिष्योंको ताड़ना देता है, तभी वे सीधे होते हैं। इसी प्रकार पति अपनी पत्नीको और राजा अपने मन्त्रीको दोषोंके लिये कड़ी फटकार सुनायें। शिक्षा-बुद्धिसे ताड़न और पालन करनेपर सन्तान सद्गुणोंद्वारा प्रसिद्धि लाभ करती है।

शिवशर्मा उत्तम ब्राह्मण थे। उनके साथ रहनेपर भी इस कन्याको आपने घरमें निरङ्कुश—स्वछन्द बना रखा था। इसीसे उच्छृङ्खल हो जानेके कारण यह नष्ट हुई है। पुत्री अपने पिताके घरमें रहकर जो पाप करती है, उसका फल माता-पिताको भी भोगना पड़ता है; इसलिये समर्थ पुत्रीको अपने घरमें नहीं रखना चाहिये। जिससे उसका ब्याह किया गया है, उसीके घरमें उसका पालन-पोषण होना उचित है। वहाँ रहकर वह भक्तिपूर्वक जो उत्तम गुण सीखती और पतिकी सेवा करती है, उससे कुलकी कीर्ति बढ़ती है और पिता भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। ससुरालमें रहकर यदि वह पाप करती है तो उसका फल पतिको भोगना पड़ता है। वहाँ सदाचार-पूर्वक रहनेसे वह सदा पुत्र-पौत्रोंके साथ वृद्धिको प्राप्त होती है। प्राणनाथ! पुत्रीके उत्तम गुणोंसे पिताकी कीर्ति बढ़ती है। इसलिये दामादके साथ भी कन्याको अपने घर नहीं रखना चाहिये। इस विषयमें एक पौराणिक इतिहास सुना जाता है, जो अट्ठाईसवें द्वापरके आनेपर संघटित होनेवाला है। यदुकुलश्रेष्ठ वीरवर उग्रसेनके यहाँ जो घटना घटित होनेवाली है, उसीका मैं [भूतकालके रूपमें] वर्णन करूँगी।

माथुर प्रदेशमें मथुरा नामकी नगरी है, वहाँ उग्रसेन नामवाले यदुवंशी राजा राज्य करते थे। वे शत्रुविजयी, सम्पूर्ण धर्मोंके तत्त्वज्ञ, बलवान्, दाता और सद्गुणोंके जानकार थे। मेधावी राजा उग्रसेन धर्मपूर्वक राज्यका सञ्चालन और प्रजाका पालन करते थे। उन्हीं दिनों परम पवित्र विदर्भदेशमें सत्यकेतु नामसे प्रसिद्ध एक प्रतापी राजा थे। उनकी एक पुत्री थी, जिसका नाम पद्मावती था। वह सत्य-धर्ममें तत्पर तथा स्त्री-समुचित गुणोंसे युक्त होनेके कारण दूसरी लक्ष्मीके समान थी। मथुराके राजा उग्रसेनने उस मनोहर नेत्रोंवाली पद्मावतीसे विवाह किया। उसके स्नेह और प्रेमसे मथुरानरेश मुग्ध हो गये। पद्मावतीको वे प्राणोंके समान प्यार करने लगे। उसे साथ लिये बिना भोजनतक नहीं करते थे। उसके साथ क्रीड़ा-विलासमें ही राजाका समय बीतने लगा। पद्मावतीके बिना उन्हें एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता था। इस प्रकार उस दम्पतिमें परस्पर बड़ा प्रेम था।

कुछ कालके पश्चात् विदर्भनरेश सत्यकेतुने अपनी पुत्री पद्मावतीको स्मरण किया। उसकी माता उसे न देखनेके कारण बहुत दुःखी थी। उन्होंने मथुरानरेश उग्रसेनके पास अपने दूत भेजे। दूतोंने वहाँ जाकर आदरपूर्वक राजासे कहा—'महाराज! विदर्भनरेश सत्यकेतुने अपनी कुशल कहलायी है और आपका कुशल-समाचार वे पूछ रहे हैं। यदि उनका प्रेम और स्नेहपूर्ण अनुरोध आपको स्वीकार हो तो राजकुमारी पद्मावतीको उनके यहाँ भेजनेकी व्यवस्था कीजिये। वे अपनी पुत्रीको देखना चाहते हैं।' नरश्रेष्ठ उग्रसेनने जब दूतोंके मुँहसे यह बात सुनी तो प्रीति, स्नेह और उदारताके कारण अपनी प्रिय पत्नी पद्मावतीको विदर्भराजके यहाँ भेज दिया। पतिके भेजनेपर पद्मावती बड़े हर्षके साथ अपने मायके गयी। वहाँ पहुँचकर उसने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। उसके आनेसे महाराज सत्यकेतुको बड़ी प्रसन्नता हुई। पद्मावती वहाँ अपनी सखियोंके साथ निःशङ्क होकर घूमने लगी। पहलेकी ही भाँति घर, वन, तालाब और चौबारोंमें विचरण करने लगी। यहाँ आकर वह पुनः बालिका बन गयी; उसके बर्तावमें लाज या सङ्कोचका भाव नहीं रहा।

एक दिनकी बात है—'पद्मावती [अपनी सखियोंके साथ] एक सुन्दर पर्वतपर सैर करनेके लिये गयी। उसकी तराईमें एक रमणीय वन दिखायी दिया, जो केलोंके उद्यानसे शोभा पा रहा था। पहाड़पर भी फूलोंकी बहार थी। राजकुमारीने देखा—एक ओर ऐसा

रमणीय पर्वत, दूसरी ओर मनोहर वनस्थली और बीचमें स्वच्छ जलसे भरा सर्वतोभद्र नामक तालाब है। बालोचित चपलता, नारी-स्वभाव और खेल-कूदकी रुचि—इन सबका प्रभाव उसके ऊपर पड़ा। वह सहेलियोंके साथ तालाबमें उतर पड़ी और हँसती-गाती हुई जल-क्रीड़ा करने लगी।

इसी समय कुबेरका सेवक गोभिल नामक दैत्य दिव्य विमानपर बैठकर आकाशमार्गसे कहीं जा रहा था। तालाबके ऊपर आनेपर उसकी दृष्टि विशाल नेत्रोंवाली विदर्भ-राजकुमारी पद्मावतीपर पड़ी, जो निर्भय होकर स्नान कर रही थी। गोभिलकी ज्ञान-शक्ति बहुत बढ़ी हुई थी, उसने निश्चित रूपसे जान लिया कि 'यह विदर्भ-नरेशकी कन्या और महाराज उग्रसेनकी प्यारी पत्नी है। परन्तु यह तो पतिव्रता होनेके कारण आत्मबलसे ही सुरक्षित है, परपुरुषोंके लिये इसे प्राप्त करना नितान्त कठिन है। उग्रसेन महामूर्ख है, जो उसने ऐसी सुन्दरी पत्नीको मायके भेज दिया है। आह ! यह पतिव्रता नारी पराये पुरुषके लिये दुर्लभ है, इधर कामदेव मुझे अत्यन्त पीड़ा दे रहा है। मैं किस प्रकार इसके निकट जाऊँ और कैसे इसका उपभोग करूँ ?' इसी उधेड़-बुनमें पड़े-पड़े उसने अपने लिये एक उपाय निकाल लिया। गोभिलने महाराज उग्रसेनका मायामय रूप धारण किया। वह ज्यों-का-त्यों उग्रसेन बन गया। वही अङ्ग, वही उपाङ्ग, वैसे ही वस्त्र, उसी तरहका वेष और वही अवस्था। पूर्णरूपसे उग्रसेन-सा होकर वह पर्वतके शिखरपर उतरा और एक अशोकवृक्षकी छायामें शिलाके ऊपर बैठकर उसने मधुर स्वरसे सङ्गीत छेड़ दिया। वह गीत सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाला था। ताल, लय और उत्तम स्वरसे युक्त उस मधुर गानको सखियोंके मध्यमें बैठी हुई सुन्दरी पद्मावतीने भी सुना। वह सोचने लगी—कौन गायक यह गीत गा रहा है ? राजकुमारीके मनमें उसे देखनेकी उत्कण्ठा हुई। उसने सखियोंके साथ जाकर देखा, अशोककी छायामें उज्ज्वल शिलाखण्डके ऊपर बैठा हुआ कोई पुरुष गा रहा है; वह महाराज उग्रसेन-सा ही जान पड़ता है। वास्तवमें तो वह राजाके वेषमें नीच दानव गोभिल ही था। पद्मावती विचार करने लगी—मेरे धर्मपरायण स्वामी मथुरानरेश अपना राज्य छोड़कर इतनी दूर कब और कैसे चले आये ? वह इस प्रकार सोच ही रही थी कि उस पापीने स्वयं ही पुकारा—'प्रिये ! आओ, आओ; देवि ! तुम्हारे बिना मैं नहीं जी सकता। सुन्दरी ! तुमसे अलग रहकर मेरे लिये इस प्रिय जीवनका भार वहन करना भी असम्भव हो गया है। तुम्हारे स्नेहने मुझे मोह लिया है; अतः मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं रह सकता।'

पतिरूपधारी दैत्यके ऐसा कहनेपर पद्मावती कुछ लज्जित-सी होकर उसके सामने गयी। वह पद्मावतीका हाथ पकड़कर उसे एकान्त स्थानमें ले गया और वहाँ अपनी इच्छाके अनुसार उसका उपभोग किया। महाराज उग्रसेनके गुप्त अङ्गमें कुछ खास निशानी थी, जो उस पुरुषमें नहीं दिखायी दी। इससे सुन्दरी पद्मावतीके मनमें उसके प्रति सन्देह उत्पन्न हुआ। राजकुमारीने अपने वस्त्र सँभालकर पहन लिये; किन्तु उसके हृदयमें इस घटनासे बड़ा दुःख हुआ। वह क्रोधमें भरकर नीच दानव गोभिलसे बोली—'ओ नीच ! जल्दी बता, तू कौन है ? तेरा आकार दानव-जैसा है, तू पापाचारी और निर्दयी है।' यह कहते-कहते आत्मग्लानिके कारण उसकी आँखें भर आयीं। वह शाप देनेको उद्यत होकर बोली—'दुरात्मन् ! तूने मेरे पतिके रूपमें आकर मेरे साथ छल किया और इस धर्ममय शरीरको अपवित्र करके मेरे उत्तम पातिव्रत्यका नाश कर डाला है। अब यहीं तू मेरा भी प्रभाव देख ले, मैं तुझे अत्यन्त कठोर शाप दूँगी।'

उसकी बात सुनकर गोभिलने कहा—'पतिव्रता स्त्री, भगवान् श्रीविष्णु तथा उत्तम ब्राह्मणके भयसे तो समस्त राक्षस और दानव दूर भागते हैं। मैं दानव-धर्मके अनुसार ही इस पृथ्वीपर विचर रहा हूँ; पहले मेरे दोषका विचार करो, किस अपराधपर तुम मुझे शाप देनेको उद्यत हुई हो ?'

**पद्मावती बोली**—पापी ! मैं साध्वी और पतिव्रता हूँ, मेरे मनमें केवल अपने पतिकी कामना

रहती है; मैं सदा उन्हींके लिये तपस्या किया करती हूँ। मैं अपने धर्ममार्गपर स्थित थी, किन्तु तूने माया रचकर मेरे धर्मके साथ ही मुझे भी नष्ट कर दिया। इसलिये रे दुष्ट! तुझे भी मैं भस्म कर डालूँगी।

**गोभिल बोला**—राजकुमारी! यदि उचित समझो तो सुनो; मैं धर्मकी ही बात कह रहा हूँ। जो स्त्री प्रतिदिन मन, वाणी और क्रियाद्वारा अपने स्वामीकी सेवा करती है, पतिके संतुष्ट रहनेपर स्वयं भी संतोषका अनुभव करती है, पतिके क्रोधी होनेपर भी उसका त्याग नहीं करती, उसके दोषोंकी ओर ध्यान नहीं देती, उसके मारनेपर भी प्रसन्न होती है और स्वामीके सब कामोंमें आगे रहती है, वही नारी पतिव्रता कही गयी है। यदि स्त्री इस लोकमें अपना कल्याण करना चाहती हो तो वह पतित, रोगी, अङ्गहीन, कोढ़ी, सब धर्मोंसे रहित तथा पापी पतिका भी परित्याग न करे। जो स्वामीको छोड़कर जाती और दूसरे-दूसरे कामोंमें मन लगाती है, वह संसारमें सब धर्मोंसे बहिष्कृत व्यभिचारिणी समझी जाती है। जो पतिकी अनुपस्थितिमें लोलुपतावश ग्राम्य-भोग तथा शृङ्गारका सेवन करती है, उसे मनुष्य कुलटा कहते हैं। मुझे वेद और शास्त्रोंद्वारा अनुमोदित धर्मका ज्ञान है। गृहस्थ-धर्मका परित्याग करके पतिकी सेवा छोड़कर यहाँ किसलिये आयीं? इतनेपर भी अपने ही मुँहसे कहती हो—मैं पतिव्रता हूँ। कर्मसे तो तुममें पातिव्रत्यका लेशमात्र भी नहीं दिखायी देता। तुम डर-भय छोड़कर पर्वत और वनमें मतवाली होकर घूमती-फिरती हो, इसलिये पापिनी हो। मैंने यह महान् दण्ड देकर तुम्हें सीधी राहपर लगाया है—अब कभी तुमसे ऐसी धृष्टता नहीं हो सकती। बताओ तो, पतिको छोड़कर किसलिये यहाँ आयी हो? यह शृङ्गार, ये आभूषण तथा यह मनोहर वेष धारण करके क्यों खड़ी हो? पापिनी! बोलो न, किसलिये और किसके लिये यह सब किया है? कहाँ है तुम्हारा पातिव्रत्य? दिखाओ तो मेरे सामने। व्यभिचारिणी स्त्रियोंके समान बर्ताव करनेवाली नारी! तुम इस समय अपने पतिसे चार सौ कोस दूर हो; कहाँ है तुममें पतिको देवता माननेका भाव। दुष्ट कहींकी! तुम्हें लाज नहीं आती, अपने बर्तावपर घृणा नहीं होती? तुम क्या मेरे सामने बोलती हो। कहाँ है तुम्हारी तपस्याका प्रभाव। कहाँ है तुम्हारा तेज और बल। आज ही मुझे अपना बल, वीर्य और पराक्रम दिखाओ।

**पद्मावती बोली**—ओ नीच असुर! सुन; पिताने स्नेहवश मुझे पतिके घरसे बुलाया है, इसमें कहाँ पाप है। मैं काम, लोभ, मोह तथा डाहके वश पतिको छोड़कर नहीं आयी हूँ; मैं यहाँ भी पतिका चिन्तन करती हुई ही रहती हूँ। तुमने भी छलसे मेरे पतिका रूप धारण करके ही मुझे धोखा दिया है।

**गोभिलने कहा**—पद्मावती! मेरी युक्तियुक्त बात सुनो। अंधे मनुष्योंको कुछ दिखायी नहीं देता; तुम धर्मरूपी नेत्रसे हीन हो, फिर कैसे मुझे यहाँ पहचान पातीं। जिस समय तुम्हारे मनमें पिताके घर आनेका भाव उदय हुआ, उसी समय तुम पतिकी भावना छोड़कर उनके ध्यानसे मुक्त हो गयी थीं। पतिका निरन्तर चिन्तन ही सतियोंके ज्ञानका तत्त्व है। जब वही नष्ट हो गया, जब तुम्हारे हृदयकी आँख ही फूट गयी, तब ज्ञान-नेत्रसे हीन होनेपर तुम मुझे कैसे पहचानतीं।

**ब्राह्मणी कहती है**—प्राणनाथ! गोभिलकी बात सुनकर राजकुमारी पद्मावती धरतीपर बैठ गयी। उसके हृदयमें बड़ा दुःख हो रहा था। गोभिलने फिर कहा—'शुभे! मैंने तुम्हारे उदरमें जो अपने वीर्यकी स्थापना की है, उससे तीनों लोकोंको त्रास पहुँचानेवाला पुत्र उत्पन्न होगा।' यों कहकर वह दानव चला गया। गोभिल बड़ा दुराचारी और पापात्मा था। उसके चले जानेपर पद्मावती महान् दुःखसे अभिभूत होकर रोने लगी। रोनेका शब्द सुनकर सखियाँ उसके पास दौड़ी आयीं और पूछने लगीं—'राजकुमारी! रोती क्यों हो? मथुरानरेश महाराज उग्रसेन कहाँ चले गये?' पद्मावतीने अत्यन्त दुःखसे रोते-रोते अपने छले जानेकी सारी बात बता दी। सहेलियाँ उसे पिताके घर ले गयीं। उस समय वह शोकसे कातर हो थर-थर काँप रही थी। सखियोंने पद्मावतीकी माताके सामने सारी घटना कह दी। सुनते ही महारानी अपने पतिके महलमें गयीं और उनसे

कन्याका सारा वृत्तान्त उन्होंने कह सुनाया। उसे सुनकर महाराज सत्यकेतुको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सवारी और वस्त्र आदि देकर कुछ लोगोंके साथ पुत्रीको मथुरामें उसके पतिके घर भेज दिया।

धर्मात्मा राजा उग्रसेन पद्मावतीको आयी देख बहुत प्रसन्न हुए। वे रानीसे बार-बार कहने लगे—'सुन्दरी! मैं तुम्हारे बिना जीवन धारण नहीं कर सकता। प्रिये! तुम अपने गुण, शील, भक्ति, सत्य और पातिव्रत्य आदि सद्गुणोंसे मुझे अत्यन्त प्रिय लगती हो।' अपनी प्यारी भार्या पद्मावतीसे यों कहकर नृपश्रेष्ठ महाराज उग्रसेन उसके साथ विहार करने लगे। सब लोगोंको भय पहुँचानेवाला उसका भयंकर गर्भ दिन-दिन बढ़ने लगा; किन्तु उस गर्भका कारण केवल पद्मावती ही जानती थी। अपने उदरमें बढ़ते हुए उस गर्भके विषयमें पद्मावतीको दिन-रात चिन्ता बनी रहती थी। दस वर्षतक वह गर्भ बढ़ता ही गया। तत्पश्चात् उसका जन्म हुआ। वही महान् तेजस्वी और महाबली कंस था, जिसके भयसे तीनों लोकोंके निवासी थर्रा उठे थे तथा जो भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे मारा जाकर मोक्षको प्राप्त हुआ। स्वामिन्! ऐसी घटना भविष्यमें संघटित होनेवाली है, यह मैंने सुन रखा है। मैंने आपसे जो कुछ कहा है, वह समस्त पुराणोंका निश्चित मत है। इस प्रकार पिताके घरमें रहनेवाली कन्या बिगड़ जाती है। अतः कन्याको घरमें रखनेका मोह नहीं करना चाहिये। यह सुदेवा बड़ी दुष्टा और महापापिनी है। अतः इसका परित्याग करके आप निश्चिन्त हो जाइये।

**शूकरी कहती है**—माताकी यह बात—यह उत्तम सलाह सुनकर मेरे पिता द्विजश्रेष्ठ वसुदत्तने मुझे त्याग देनेका ही निश्चय किया। उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—'दुष्टे! कुलमें कलङ्क लगानेवाली दुराचारिणी! तेरे ही अन्यायसे परम बुद्धिमान् शिवशर्मा चले गये। जहाँ तेरे स्वामी रहते हैं, वहीं तू भी चली जा; अथवा जो स्थान तुझे अच्छा लगे, वहीं जा, जैसा जीमें आये, वैसा कर।' महारानीजी! यों कहकर पिता-माता और कुटुम्बके लोगोंने मुझे त्याग दिया। मैं तो अपनी लाज-हया खो चुकी थी, शीघ्र ही वहाँसे चल दी। किन्तु कहीं भी मुझे ठहरनेके लिये स्थान और सुख नहीं मिलता था। लोग मुझे देखते ही 'यह कुलटा आयी!' कहकर दुत्कारने लगते थे।

कुल और मानसे वञ्चित होकर घूमती-फिरती मैं प्रान्तसे बाहर निकल गयी और गुर्जर देश (गुजरात प्रान्त) के सौराष्ट्र (प्रभास) नामक पुण्यतीर्थमें जा पहुँची, जहाँ भगवान् शिव (सोमनाथ)का मन्दिर है। मन्दिरके पास ही वनस्थल नामसे विख्यात एक नगर था, जिसकी उस समय बड़ी उन्नति थी। मैं भूखसे अत्यन्त पीड़ित थी, इसलिये खपरा लेकर भीख माँगने चली। परन्तु सब लोग मुझसे घृणा करते थे। 'यह पापिनी आयी [भगाओ इसे]' यों कहकर कोई भी मुझे भिक्षा नहीं देता था। इस प्रकार दुःखमय जीवन व्यतीत करती मैं बड़े भारी रोगसे पीड़ित हो गयी। उस नगरमें घूमते-घूमते मैंने एक बड़ा सुन्दर घर देखा, जहाँ वैदिक पाठशाला थी। वह घर अनेक ब्राह्मणोंसे भरा था और वहाँ सब ओर वेदमन्त्रोंकी ध्वनि हो रही थी। लक्ष्मीसे युक्त और आनन्दसे परिपूर्ण उस रमणीय गृहमें मैंने

प्रवेश किया। वह सब ओरसे मङ्गलमय प्रतीत होता था। मेरे पति शिवशर्माका ही वह घर था। मैं दुःखसे पीड़ित होकर बोली—'भिक्षा दीजिये।' द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माने भिक्षाका शब्द सुना। उनकी एक भार्या थी, जो साक्षात् लक्ष्मीके समान रूपवती थी। उसका मुख बड़ा ही सुन्दर था। वह मङ्गला नामसे प्रसिद्ध थी। परम बुद्धिमान् धर्मात्मा शिवशर्माने मन्द-मन्द मुसकराती हुई अपनी पत्नी मङ्गलासे कहा—'प्रिये! वह देखो—एक दुबली-पतली स्त्री आयी है, जो भिक्षाके लिये द्वारपर खड़ी है; इसे घरमें बुलाकर भोजन दो।' मुझे आयी जान मङ्गलाका हृदय अत्यन्त करुणासे भर आया। उसने मुझ दीन-दुर्बल भिक्षुकीको मिष्टान्न भोजन कराया। मैं अपने पतिको पहचान गयी थी, उन्हें देखकर लज्जासे मेरा मस्तक झुक गया। परम सुन्दरी मङ्गलाने मेरे इस भावको लक्ष्य किया और स्वामीसे पूछा—'प्राणनाथ! यह कौन है, जो आपको देखकर लजा रही है? मुझपर कृपा करके इसका यथार्थ परिचय दीजिये।'

**शिवशर्माने कहा**—प्रिये! यह विप्रवर वसुदत्तकी कन्या है। बेचारी इस समय भिक्षुकीके रूपमें यहाँ आयी है। इसका नाम सुदेवा है। यह मेरी कल्याणमयी भार्या है, जो मुझे सदा ही प्रिय रही है। किसी विशेष कारणसे यह अपना देश छोड़कर आज यहाँ आयी है, ऐसा समझकर तुम्हें इसका अच्छे ढंगसे स्वागत-सत्कार करना चाहिये। यदि तुम मेरा भलीभाँति प्रिय करना चाहती हो तो इसके आदरभावमें कमी न करना।

पतिकी बात सुनकर मङ्गलमयी मङ्गला बहुत प्रसन्न हुई। उसने अपने ही हाथों मुझे स्नान कराकर उत्तम वस्त्र पहननेको दिया और स्वयं भोजन बनाकर खिलाने-पिलाने लगी। रानीजी! अपने स्वामीके द्वारा इतना सम्मान पाकर मुझे अपार दुःख हुआ। मेरे हृदयमें पश्चात्तापकी तीव्र अग्नि प्रज्वलित हो उठी। मैंने मङ्गलाके किये हुए सम्मान और अपने दुष्कर्मकी ओर देखा; इससे मनमें दुःसह चिन्ता हुई, यहाँतक कि प्राण जानेकी नौबत आ गयी। मैं ऐसी पापिनी थी कि पतिसे कभी मीठे वचनतक नहीं बोली। उलटे उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके विपरीत बुरे कर्मोंका ही आचरण करती रही। इस प्रकार चिन्ता करते-करते मेरा हृदय फट गया और प्राण शरीर छोड़कर चल बसे।

तदनन्तर यमराजके दूत आये और मुझे साँकलके दृढ़ बन्धनमें बाँधकर यमपुरीको ले चले। मार्गमें जब मैं अत्यन्त दुःखी होकर रोती तब वे मुझे मुगदरोंसे पीटते और दुर्गम मार्गसे ले जाकर कष्ट पहुँचाते थे। बीच-

बीचमें मुझे फटकारें भी सुनाते जाते थे। उन्होंने मुझे यमराजके सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। महात्मा यमराजने बड़ी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखा और मुझे अँगारोंकी ढेरीमें फेंकवा दिया। उसके बाद मैं कई नरकोंमें डाली गयी। मैंने अपने स्वामीके साथ धोखा किया था, इसलिये एक लोहेका पुरुष बनाकर उसे आगसे तपाया गया और वह मेरी छातीपर सुला दिया गया। नरककी प्रचण्ड आगमें तपायी जानेपर मैं नाना प्रकारकी पीड़ाओंसे अत्यन्त कष्ट पाने लगी। असिपत्र-वनमें पड़कर मेरा सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। फिर मैं पीब, रक्त और विष्ठामें डाली गयी।

कीड़ोंसे भरे हुए कुण्डमें रहना पड़ा। आरीसे मुझे चीरा गया। शक्ति नामक अस्त्रका भलीभाँति मुझपर प्रहार किया गया। दूसरे-दूसरे नरकोंमें भी मैं गिरायी गयी। अनेक योनियोंमें जन्म लेकर मुझे असह्य दुःख भोगना पड़ा। पहले सियारकी योनिमें पड़ी, फिर कुत्तेकी योनिमें जन्म लिया। तत्पश्चात् क्रमशः साँप, मुर्गे, बिल्ली और चूहेकी योनिमें जाना पड़ा। इस प्रकार धर्मराजने पीड़ा देनेवाली प्रायः सभी पापयोनियोंमें मुझे डाला। उन्होंने ही मुझे इस भूतलपर शूकरी बनाया है। महाभागे! तुम्हारे हाथमें अनेक तीर्थोंका वास है। देवि! तुमने अपने हाथके जलसे मुझे सींचा है, इसलिये तुम्हारी कृपासे मेरा सब पाप दूर हो गया। तुम्हारे तेज और पुण्यसे मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका ज्ञान हुआ है। रानीजी! इस समय संसारमें केवल तुम्हीं सबसे बड़ी पतिव्रता हो। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तुमने अपने स्वामीकी बहुत बड़ी सेवा की है। सुन्दरी! यदि मेरा प्रिय करना चाहती हो तो अपने एक दिनकी पतिसेवाका पुण्य मुझे अर्पण कर दो। इस समय तुम्हीं मेरी माता, पिता और सनातन गुरु हो। मैं पापिनी, दुराचारिणी, असत्यवादिनी और ज्ञानहीना हूँ। महाभागे! मेरा उद्धार करो।

**सुकला बोली**—सखियो! शूकरीकी यह बात सुनकर रानी सुदेवाने राजा इक्ष्वाकुकी ओर देखकर पूछा—'महाराज! मैं क्या करूँ? यह शूकरी क्या कहती है?'

**इक्ष्वाकुने कहा**—शुभे! यह बेचारी पाप-योनिमें पड़कर दुःख उठा रही है; तुम अपने पुण्योंसे इसका उद्धार करो, इससे महान् कल्याण होगा।

महाराजकी आज्ञा लेकर रानी सुदेवाने शूकरीसे कहा—'देवि! मैंने अपना एक वर्षका पुण्य तुम्हें अर्पण किया।' रानी सुदेवाके इतना कहते ही वह शूकरी तत्काल दिव्य देह धारण कर प्रकट हुई। उसके शरीरसे तेजकी ज्वाला निकल रही थी। सब प्रकारके आभूषण और भाँति-भाँतिके रत्न उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह साध्वी दिव्यरूपसे युक्त हो दिव्य विमानपर बैठी और अन्तरिक्ष लोकको चलने लगी। जाते समय उसने मस्तक झुकाकर रानीको प्रणाम किया और कहा—'महाभागे! तुम्हारी कृपासे आज मैं पापमुक्त होकर परम पवित्र एवं मङ्गलमय वैकुण्ठको जा रही हूँ।' यों कहकर वह वैकुण्ठको चली गयी।

**सुकला कहने लगी**—इस प्रकार पहले मैंने पुराणोंमें नारीधर्मका वर्णन सुना है। ऐसी दशामें जब पतिदेव यहाँ उपस्थित नहीं हैं, मैं किस प्रकार भोगोंका उपभोग करूँ। मेरे लिये ऐसा विचार निश्चय ही पापपूर्ण होगा।

सुकलाके मुखसे इस प्रकार उत्तम पातिव्रत्य-धर्मका वर्णन सुनकर सखियोंको बड़ा हर्ष हुआ। नारियोंको सद्गति प्रदान करनेवाले उस परम पवित्र धर्मका श्रवण करके समस्त ब्राह्मण और पुण्यवती स्त्रियाँ धर्मानुरागिणी महाभागा सुकलाकी प्रशंसा करने लगीं।

★

## सुकलाका सतीत्व नष्ट करनेके लिये इन्द्र और काम आदिकी कुचेष्टा तथा उनका असफल होकर लौट आना

**भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं**—राजेन्द्र! सुकलाके मनमें केवल पतिका ही ध्यान था और पतिकी ही कामना थी। उसके सतीत्वका प्रभाव देवराज इन्द्रने भी भलीभाँति देखा तथा उसके विषयमें पूर्णतया विचार करके वे मन-ही-मन कहने लगे—'मैं इसके अविचल धैर्य [और धर्म] को नष्ट कर दूँगा।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने तुरंत ही कामदेवका स्मरण किया। महाबली कामदेव अपनी प्रिया रतिके साथ वहाँ आ गये और हाथ जोड़कर इन्द्रसे बोले—'नाथ! इस समय किसलिये आपने मुझे याद किया है? आज्ञा दीजिये, मैं सब प्रकारसे उसका पालन करूँगा।'

**इन्द्रने कहा**—कामदेव! यह जो पातिव्रत्यमें तत्पर रहनेवाली महाभागा सुकला है, वह परम पुण्यवती और मङ्गलमयी है; मैं इसे अपनी ओर आकर्षित करना

चाहता हूँ। इस कार्यमें तुम मेरी पूरी तरहसे सहायता करो।

**कामदेवने उत्तर दिया**—'सहस्रलोचन! मैं आपकी इच्छा-पूर्तिके लिये आपकी सहायता अवश्य करूँगा। देवराज! मैं देवताओं, मुनियों और बड़े-बड़े ऋषीश्वरोंको भी जीतनेकी शक्ति रखता हूँ; फिर एक साधारण कामिनीको, जिसके शरीरमें कोई बल ही नहीं होता, जीतना कौन बड़ी बात है। मैं कामिनियोंके विभिन्न अङ्गोंमें निवास करता हूँ। नारी मेरा घर है, उसके भीतर मैं सदा मौजूद रहता हूँ। अतः भाई, पिता, स्वजन-सम्बन्धी या बन्धु-बान्धव—कोई भी क्यों न हो, यदि उसमें रूप और गुण है तो वह उसे देखकर मेरे बाणोंसे घायल हो ही जाती है। उसका चित्त चञ्चल हो जाता है, वह परिणामकी चिन्ता नहीं करती। इसलिये देवेश्वर! मैं सुकलाके सतीत्वको अवश्य नष्ट करूँगा।'

**इन्द्र बोले**—मनोभव! मैं रूपवान्, गुणवान् और धनी बनकर कौतूहलवश इस नारीको [धर्म और] धैर्यसे विचलित करूँगा।

कामदेवसे यों कहकर देवराज इन्द्र उस स्थानपर गये, जहाँ कृकल वैश्यकी प्यारी पत्नी सुकला देवी निवास करती थी। वहाँ जाकर वे अपने हाव-भाव, रूप और गुण आदिका प्रदर्शन करने लगे। रूप और सम्पत्तिसे युक्त होनेपर भी उस पराये पुरुषपर सुकला दृष्टि नहीं डालती थी; परन्तु वह जहाँ-जहाँ जाती, वहीं-वहीं पहुँचकर इन्द्र उसे निहारते थे। इस प्रकार सहस्रनेत्रधारी इन्द्र अपने सम्पूर्ण भावोंसे कामजनित चेष्टा प्रदर्शित करते हुए चाहभरे हृदयसे उसकी ओर देखते थे। इन्द्रने उसके पास अपनी दूती भी भेजी। वह मुसकराती हुई गयी और मन-ही-मन सुकलाकी प्रशंसा करती हुई बोली—'अहो! इस नारीमें कितना सत्य, कितना धैर्य, कितना तेज और कितना क्षमाभाव है। संसारमें इसके रूपकी समानता करनेवाली दूसरी कोई भी सुन्दरी नहीं है।' इसके बाद उसने सुकलासे पूछा—'कल्याणी! तुम कौन हो, किसकी पत्नी हो? जिस पुरुषको तुम-जैसी गुणवती भार्या प्राप्त है, वही इस पृथ्वीपर पुण्यका भागी है।'

दूतीकी बात सुनकर मनस्विनी सुकलाने कहा—'देवि! मेरे पति वैश्य जातिमें उत्पन्न, धर्मात्मा और सत्यप्रेमी हैं; उन्हें लोग कृकल कहते हैं। मेरे स्वामीकी बुद्धि उत्तम है, उनका चित्त सदा धर्ममें ही लगा रहता है। वे इस समय तीर्थ-यात्राके लिये गये हैं; उन्हें गये आज तीन वर्ष हो गये। अतः उन महात्माके बिना मैं बहुत दुःखी हूँ। यही मेरा हाल है। अब यह बताओ कि तुम कौन हो, जो मुझसे मेरा हाल पूछ रही हो?' सुकलाका कथन सुनकर दूतीने पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'सुन्दरी! तुम्हारे स्वामी बड़े निर्दयी हैं, जो तुम्हें अकेली छोड़कर चले गये। वे अपनी प्रिय पत्नीके घातक जान पड़ते हैं, अब उन्हें लेकर क्या करोगी। जो तुम-जैसी साध्वी और सदाचार-परायणा पत्नीको छोड़कर चले गये, वे पापी नहीं तो क्या हैं। बाले! अब तो वे गये; अब उनसे तुम्हारा क्या नाता है। कौन जाने वे वहाँ जीवित हैं या मर गये। जीते भी हों तो उनसे तुम्हें क्या लेना है। तुम व्यर्थ ही इतना खेद करती हो। इस सोने-जैसे शरीरको क्यों नष्ट करती हो। मनुष्य बचपनमें खेल-कूदके सिवा और किसी सुखका अनुभव नहीं करता। बुढ़ापा आनेपर जब जरावस्था शरीरको जीर्ण बना देती है, तब दुःख-ही-दुःख उठाना रह जाता है। इसलिये सुन्दरी! जबतक जवानी है, तभीतक संसारके सम्पूर्ण सुख और भोग भोग लो। मनुष्य जबतक जवान रहता है, तभीतक वह भोग भोगता है। सुख-भोग आदिकी सब सामग्रियोंका इच्छानुसार सेवन करता है। इधर देखो—ये एक पुरुष आये हैं, जो बड़े सुन्दर, गुणवान्, सर्वज्ञ, धनी तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। तुम्हारे ऊपर इनका बड़ा स्नेह है; ये सदा तुम्हारे हित-साधनके लिये प्रयत्नशील रहते हैं। इनके शरीरमें कभी बुढ़ापा नहीं आता। स्वयं तो ये सिद्ध हैं ही, दूसरोंको भी उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। उत्तम सिद्ध और सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। लोकमें अपने स्वरूपसे सबकी कामना पूर्ण करते हैं।

**सुकला बोली**—दूती! यह शरीर मल-मूत्रका

खजाना है, अपवित्र है; सदा ही क्षय होता रहता है। शुभे ! यह पानीके बुलबुलेके समान क्षणभङ्गुर है। फिर इसके रूपका क्या वर्णन करती हो। पचास वर्षकी अवस्थातक ही यह देह दृढ़ रहती है, उसके बाद प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। भला, बताओ तो, मेरे इस शरीरमें ही तुमने ऐसी क्या विशेषता देखी है, जो अन्यत्र नहीं है। उस पुरुषके शरीरसे मेरे शरीरमें कोई भी वस्तु अधिक नहीं है। जैसी तुम, जैसा वह पुरुष, वैसी ही मैं—इसमें तनिक ही सन्देह नहीं है, ऊँचे उठनेका परिणाम पतन ही है। ये बड़े-बड़े वृक्ष और पर्वत कालसे पीड़ित होकर नष्ट हो जाते हैं। यही दशा सम्पूर्ण भूतोंकी है—इसमें रत्तीभर भी संदेह नहीं। दूती ! आत्मा दिव्य है। वह रूपहीन है। स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंमें वह व्याप्त है। जैसे एक ही जल भिन्न-भिन्न घड़ोंमें रहता है, उसी प्रकार एक ही शुद्ध आत्मा सम्पूर्ण भूतोंमें निवास करता है। घड़ोंका नाश होनेसे जैसे सब जल मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार आत्माकी भी एकता समझो। [स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप] त्रिविध शरीरका नाश होनेपर पञ्चकोशके सम्बन्धसे पाँच प्रकारका प्रतीत होनेवाला आत्मा एकरूप हो जाता है। संसारमें निवास करनेवाले प्राणियोंका मैंने सदा एक ही रूप देखा है। [किसीमें कोई अपूर्वता नहीं है।] कामकी खुजलाहट सब प्राणियोंको होती है। उस समय स्त्री और पुरुष दोनोंकी इन्द्रियोंमें उत्तेजना पैदा हो जाती है, जिससे वे दोनों प्रमत्त होकर एक-दूसरेसे मिलते हैं। शरीरसे शरीरको रगड़ते हैं। इसीका नाम मैथुन है। इससे क्षणभरके लिये सुख होता है, फिर वैसी ही दशा हो जाती है। दूती ! सर्वत्र यही बात देखी जाती है। इसलिये अब तुम अपने स्थानको लौट जाओ। तुम्हारे प्रस्तावित कार्यमें कोई नवीनता नहीं है। कम-से-कम मेरे लिये तो इसमें कोई अपूर्व बात नहीं जान पड़ती; अतः मैं कदापि ऐसा नहीं कर सकती।

**भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं**—सुकलाके यों कहनेपर दूती चली गयी। उसने इन्द्रसे उसकी कही हुई सारी बातें संक्षेपमें सुना दीं। सुकलाका भाषण सत्य और धर्मसे युक्त था। उसके साहस, धैर्य और ज्ञानकी आलोचना करके इन्द्र मन-ही-मन सोचने लगे—'इस पृथ्वीपर दूसरी कोई स्त्री ऐसी नहीं है, जो इस तरहकी बात कह सके। इसका वचन योगस्वरूप, निश्चयात्मक तथा ज्ञानरूपी जलसे प्रक्षालित है। इसमें सन्देह नहीं कि यह महाभागा सुकला परम पवित्र और सत्यस्वरूपा है। यह समस्त त्रिलोकीको धारण करनेमें समर्थ है।' यह विचारकर इन्द्रने कामदेवसे कहा—'अब मैं तुम्हारे साथ कृकल-पत्नी सुकलाको देखने चलूँगा।' कामदेवको अपने बलपर बड़ा घमंड था। वह जोशमें आकर इन्द्रसे बोला—'देवराज ! जहाँ वह पतिव्रता रहती है, उस स्थानपर चलिये। मैं अभी चलकर उसके ज्ञान, वीर्य, बल, धैर्य, सत्य और पातिव्रत्यको नष्ट कर डालूँगा। उसकी क्या शक्ति है, जो मेरे सामने टिक सके।'

कामदेवकी बात सुनकर इन्द्रने कहा—'काम ! मैं जानता हूँ, यह पतिव्रता तुमसे परास्त होनेवाली नहीं है। यह अपने धर्ममय पराक्रमसे सुरक्षित है। इसका भाव बहुत सच्चा है। यह नाना प्रकारके पुण्य किया करती है। फिर भी मैं यहाँसे चलकर तुम्हारे तेज, बल और भयंकर पराक्रमको देखूँगा।' यह कहकर इन्द्र धनुर्धर वीर कामदेवके साथ चले। उनके साथ कामकी पत्नी रति और दूती भी थी। वह परम पुण्यमयी पतिव्रता अपने घरके द्वारपर अकेली बैठी थी और केवल पतिके ध्यानमें तन्मय हो रही थी। वह प्राणोंको वशमें करके स्वामीका चिन्तन करती हुई विकल्प-शून्य हो गयी थी। कोई भी पुरुष उसकी स्थितिकी कल्पना नहीं कर सकता था। उस समय इन्द्र अनुपम तेज और सौन्दर्यसे युक्त, विलास तथा हाव-भावसे सुशोभित अत्यन्त अद्भुत रूप धारण करके सुकलाके सामने प्रकट हुए। उत्तम विलास और कामभावसे युक्त महापुरुषको इस प्रकार सामने विचरण करते देख महात्मा कृकल वैश्यकी पत्नीने उसके रूप, गुण और तेजका तनिक भी सम्मान नहीं किया। जैसे कमलके पत्तेपर छोड़ा हुआ जल उस पत्तेको छोड़कर दूर चला जाता है—उसमें ठहरता नहीं, उसी प्रकार वह

सती भी उस पुरुषकी ओर आकृष्ट नहीं हुई। महासती सुकलाका तेज सत्यकी रज्जुसे आबद्ध था। [उस पुरुषकी दृष्टिसे बचनेके लिये] वह घरके भीतर चली गयी और अपने पतिमें ही अनुरक्त हो उन्हींका चिन्तन करने लगी।

इन्द्र सुकलाके शुद्ध भावको समझकर सामने खड़े हुए कामदेवसे बोले—'इस सतीने सत्यरूप पतिके ध्यानका कवच धारण कर रखा है। [तुम्हारे बाण इसे चोट नहीं पहुँचा सकते,] अतः सुकलाको परास्त करना असम्भव है। यह पतिव्रता अपने हाथमें धर्मरूपी धनुष और ध्यानरूपी उत्तम बाण लेकर इस समय रणभूमिमें तुमसे युद्ध करनेको उद्यत है। अज्ञानी पुरुष ही त्रिलोकीके महात्माओंके साथ वैर बाँधते हैं। कामदेव ! इस सतीके तपका नाश करनेसे हम दोनोंको अनन्त एवं अपार दुःख भोगना पड़ेगा। इसलिये अब हमें इसे छोड़कर यहाँसे चल देना चाहिये। तुम जानते हो, पहले एक बार मैं सतीके साथ समागम करनेका पापमय परिणाम—असह्य दुःख भोग चुका हूँ। महर्षि गौतमने मुझे भयंकर शाप दिया था। आगकी लपटको छूनेका साहस कौन करेगा। कौन ऐसा मूर्ख है, जो अपने गलेमें भारी पत्थर बाँधकर समुद्रमें उतरना चाहेगा तथा किसको मौतके मुखमें जानेकी इच्छा है, जो सती स्त्रीको विचलित करनेका प्रयत्न करेगा।'

इन्द्रने कामदेवको उत्तम शिक्षा देनेके लिये बहुत ही नीति-युक्त बात कही; उसे सुनकर कामदेवने इन्द्रसे कहा—'सुरेश ! मैं तो आपके ही आदेशसे यहाँ आया था। अब आप धैर्य, प्रेम तथा पुरुषार्थका त्याग करके ऐसी पौरुषहीनता और कायरताकी बातें क्यों करते हैं। पूर्वकालमें मैंने जिन-जिन देवताओं, दानवों और तपस्यामें लगे हुए मुनीश्वरोंको परास्त किया है, वे सब मेरा उपहास करते हुए कहेंगे कि 'यह कामदेव बड़ा डरपोक है, एक साधारण स्त्रीने इसको क्षणभरमें परास्त कर दिया।' इसलिये मैं अपने सम्मानरूपी धनकी रक्षा करूँगा और आपके साथ चलकर इस सतीके तेज, बल और धैर्यका नाश करूँगा। आप डरते क्यों हैं।' देवराज इन्द्रको इस प्रकार समझा-बुझाकर कामदेवने पुष्पयुक्त धनुष और बाण हाथमें ले लिये तथा सामने खड़ी हुई अपनी सखी क्रीड़ासे कहा—'प्रिये ! तुम माया रचकर वैश्यपत्नी सुकलाके पास जाओ। वह अत्यन्त पुण्यवती, सत्यमें स्थित, धर्मका ज्ञान रखनेवाली और गुणज्ञ है। यहाँसे जाकर तुम मेरी सहायताके लिये उत्तम-से-उत्तम कार्य करो।' क्रीड़ासे यों कहकर वे पास ही खड़ी हुई प्रीतिको सम्बोधित करके बोले—'तुम्हें भी मेरी सहायताके लिये उत्तम कार्य करना होगा; तुम अपनी चिकनी-चुपड़ी बातोंसे सुकलाको वशमें करो।' इस प्रकार अपने-अपने कार्यमें लगे हुए वायु आदिके साथ उपर्युक्त व्यक्तियोंको भेजकर कामदेवने उस महासतीको मोहित करनेके लिये इन्द्रके साथ पुनः प्रयाण किया।'

सुकलाका सतीत्व नष्ट करनेके उद्देश्यसे जब इन्द्र और कामदेव प्रस्थित हुए; तब सत्यने धर्मसे कहा—'महाप्राज्ञ धर्म ! कामदेवकी जो चेष्टा हो रही है, उसपर दृष्टिपात करो। मैंने तुम्हारे, अपने तथा महात्मा पुण्यके लिये जो स्थान बनाया था, उसे यह नष्ट करना चाहता है। दुष्टात्मा काम हमलोगोंका शत्रु है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। सदाचारी पति, तपस्वी ब्राह्मण और पतिव्रता पत्नी—ये तीन मेरे निवास-स्थान हैं। जहाँ मेरी वृद्धि होती है—जहाँ मैं पुष्ट और सन्तुष्ट रहता हूँ, वहीं तुम्हारा भी निवास होता है। श्रद्धाके साथ पुण्य भी वहाँ आकर क्रीड़ा करते हैं। मेरे शान्तियुक्त मन्दिरमें क्षमाका भी आगमन होता है। जहाँ मैं रहता हूँ, वहीं सन्तोष, इन्द्रिय-संयम, दया, प्रेम, प्रज्ञा और लोभहीनता आदि गुण भी निवास करते हैं। वहीं पवित्र भाव रहता है। ये सभी सत्यके बन्धु-बान्धव हैं। धर्म ! चोरी न करना, अहिंसा, सहनशीलता और बुद्धि—ये सब मेरे ही घरमें आकर धन्य होते हैं। गुरु-शुश्रूषा, लक्ष्मीके साथ भगवान् श्रीविष्णु तथा अग्नि आदि देवता भी मेरे घरमें पधारते हैं। मोक्ष-मार्गको प्रकाशित करनेवाले ज्ञान और उदारता आदिसे युक्त हो पूर्वोक्त व्यक्तियोंके साथ मैं धर्मात्मा पुरुषों और सती स्त्रियोंके भीतर निवास करता हूँ। ये जितने भी साधु-महात्मा हैं, सब मेरे गृहस्वरूप हैं;

इन सबके भीतर मैं उक्त कुटुम्बियोंके साथ वास करता हूँ। जो जगत्के स्वामी, त्रिशूलधारी, वृषभवाहन तथा साक्षात् ईश्वर हैं, वे कल्याणमय भगवान् शिव भी मेरे निवास-स्थान हैं। कृकल वैश्यकी प्रियतमा भार्या मङ्गलमयी सुकला भी मेरा उत्तम गृह है; किन्तु आज पापी काम इसे भी जला डालनेको उद्यत हुआ है। ये बलवान् इन्द्र भी कामका साथ दे रहे हैं; कामकी ही करतूतसे अहल्याका सङ्ग करनेपर एक बार जो हानि उठानी पड़ी है, उस प्राचीन घटनाका इन्हें स्मरण क्यों नहीं होता। सतीके सतीत्वका नाश करनेसे ही इन्हें महान् दुःखमें पड़कर दुःसह शापका उपभोग करना पड़ा था। फिर भी आज कामदेवके साथ आकर ये धर्मचारिणी कृकल-पत्नी सुकलाका अपहरण करनेको उतारू हुए हैं।'

**धर्मने कहा**—मैं कामका तेज कम कर दूँगा; [मैं यदि चाहूँ तो] उसकी मृत्युका भी कारण उपस्थित कर सकता हूँ। मैंने एक ऐसा उपाय सोच लिया है, जिससे यह काम आज ही भाग खड़ा होगा। यह महाप्रज्ञा पक्षिणीका रूप धारण करके सुकलाके घर जाय और अपने मङ्गलमय शब्दसे उसको स्वामीके शुभागमनकी सूचना दे।

धर्मके भेजनेसे प्रज्ञा सुकलाके घरमें गयी और वहाँ मङ्गलजनक शब्दका उच्चारण किया। सुकलाने धूप-गन्ध आदिके द्वारा उसका समादर और पूजन किया तथा सुयोग्य ब्राह्मणको बुलाकर पूछा—'इस शकुनका क्या तात्पर्य है ? मेरे पतिदेव कब आयेंगे ?'

**ब्राह्मणने कहा**—भद्रे! यह शकुन तुम्हारे स्वामीके शुभागमनकी सूचना दे रहा है। वे सात दिनसे पहले-पहले यहाँ अवश्य आ जायँगे। इसमें अन्तर नहीं हो सकता।

ब्राह्मणका यह मङ्गलमय वचन सुनकर सुकलाको बड़ी प्रसन्नता हुई।

उधर कामदेवकी भेजी हुई क्रीड़ा सती-स्त्रीका रूप धारण करके उस सुन्दरी पतिव्रताके घर गयी। उस रूपवती नारीको आयी देख सुकलाने आदरयुक्त वचन कहकर उसका सम्मान किया और अपनेको धन्य माना। उसकी पुण्यमयी वाणीसे पूजित होकर क्रीड़ा मुसकराती हुई बातचीत करने लगी। उसका मायामय वचन विश्वको मोहित करनेवाला था। सुननेपर सत्य और विश्वासके योग्य जान पड़ता था। क्रीड़ा बोली—'देवि ! मेरे स्वामी बड़े बलवान्, गुणज्ञ, धीर तथा अत्यन्त पुण्यात्मा हैं; परन्तु मुझे छोड़कर न जाने कहाँ चले गये हैं। वह मेरे पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है, जो आज इस रूपमें सामने आया है; मैं कैसी मन्दभागिनी हूँ। महाभागे ! नारियोंके लिये रूप, सौभाग्य, शृङ्गार, सुख और सम्पत्ति—सब कुछ पति ही है; यही शास्त्रोंका मत है।'

पतिव्रता सुकलाने क्रीड़ाकी ये सारी बातें सुनीं। उसे विश्वास हो गया कि यह सब कुछ इस दुःखिनी नारीके हृदयका सच्चा भाव है। वह उसके दुःखसे दुःखी हो गयी, और अपनी बातें भी उसे बताने लगी। उसने पहलेका अपना सारा हाल थोड़ेमें कह सुनाया। अपने दुःख-सुखकी बात बताकर मनस्विनी सुकला चुप हो गयी; तब क्रीड़ाने उस पतिव्रताको सान्त्वना दी और बहुत कुछ समझाया-बुझाया। तदनन्तर एक दिन उसने सुकलासे कहा—'सखी ! देखो, वह सामने बड़ा सुन्दर वन दिखायी दे रहा है; अनेकों दिव्य वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वहाँ एक परम पवित्र पापनाशन तीर्थ है; वरानने ! चलो, हम दोनों भी वहाँ पुण्य-सञ्चय करनेके लिये चलें।'

यह सुनकर सुकला उस मयामयी स्त्रीके साथ वहाँ जानेको राजी हो गयी। उसने वनमें प्रवेश करके देखा तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसमें नन्दन-वनकी शोभा उतर आयी है। सभी ऋतुओंके फूल खिले थे; सैकड़ों कोकिलोंके कलरवसे सारा वन-प्रान्त गूँज रहा था। माधवी लता और माधव (वसन्त) ने उस उपवनकी शोभाको सब भावोंसे परिपूर्ण बनाया था ! सुकलाको मोहित करनेके लिये ही उसकी सृष्टि की गयी थी। उसने क्रीड़ाके साथ सबके मनको भानेवाले उस वनमें घूम-घूमकर अनेकों दिव्य कौतुक देखे। इसी समय रतिके साथ काम और इन्द्र भी वहाँ आये। इन्द्र सम्पूर्ण भोगोंके अधिपति होकर भी काम-क्रीडाके लिये व्यग्र थे। उन्होंने कामदेवको पुकारकर कहा—'लो, यह सुकला आ

गयी, क्रीड़ाके आगे खड़ी है। इस महाभागा सतीपर प्रहार करो।'

**कामदेव बोला**—सहस्रलोचन! लीला और चातुरीसे युक्त अपने दिव्य रूपको प्रकट कीजिये, जिसका आश्रय लेकर मैं इसके ऊपर अपने पाँचों बाणोंका पृथक्-पृथक् प्रहार करूँ। त्रिशूलधारी महादेवने मेरे रूपको पहले ही हर लिया। मेरा शरीर है ही नहीं। जब मैं किसी नारीको अपने बाणोंका निशाना बनाना चाहता हूँ, उस समय पुरुष-शरीरका आश्रय लेकर अपने रूपको प्रकट करता हूँ। इसी तरह पुरुषपर प्रहार करनेके लिये मैं नारी-देहका आश्रय लेता हूँ। पुरुष जब पहले-पहल किसी सुन्दरी नारीको देखकर बारम्बार उसीका चिन्तन करने लगता है, तब मैं चुपकेसे उसके भीतर घुसकर उसे उन्मत्त बना देता हूँ। स्मरण—चिन्तनसे मेरा प्रादुर्भाव होता है; इसीलिये मेरा नाम 'स्मर' हो गया है। आज मैं आपके रूपका आश्रय लेकर इस नारीको अपनी इच्छाके अनुसार नचाऊँगा।

यों कहकर कामदेव इन्द्रके शरीरमें घुस गया और पुण्यमयी कृकल-पत्नी सती सुकलाको घायल करनेके लिये हाथमें बाण ले उत्कण्ठापूर्वक अवसरकी प्रतीक्षा करने लगा। वह उसके नेत्रोंको ही लक्ष्य बनाये बैठा था।

**भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं**—राजन्! क्रीड़ाकी प्रेरणासे उस सुन्दर वनमें गयी हुई वैश्यपत्नी सुकलाने पूछा—'सखी! यह मनोरम दिव्य वन किसका है?'

**क्रीड़ा बोली**—यह स्वभावसिद्ध दिव्य गुणोंसे युक्त सारा वन कामदेवका है, तुम भलीभाँति इसका निरीक्षण करो।

दुरात्मा कामकी यह चेष्टा देखकर सुन्दरी सुकलाने वायुके द्वारा लायी हुई वहाँके फूलोंकी सुगन्धको नहीं ग्रहण किया। उस सतीने वहाँके रसोंका भी आस्वादन नहीं किया। यह देख कामदेवका मित्र वसन्त बहुत लज्जित हुआ। तत्पश्चात् कामदेवकी पत्नी रति-प्रीतिको साथ लेकर आयी और सुकलासे हँसकर बोली—'भद्रे! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ। तुम रति और प्रीतिके साथ यहाँ रमण करो।' सुकलाने कहा—'जहाँ मेरे स्वामी हैं, वहीं मैं भी हूँ। मैं सदा पतिके साथ रहती हूँ। मेरा काम, मेरी प्रीति सब वहीं है। यह शरीर तो निराश्रय है—छायामात्र है।' यह सुनकर रति और प्रीति दोनों लज्जित हो गयीं तथा महाबली कामके पास जाकर बोलीं—'महाप्राज्ञ! अब आप अपना पुरुषार्थ छोड़ दीजिये, इस नारीको जीतना कठिन है। यह महाभागा पतिव्रता सदैव अपने पतिकी ही कामना रखती है।'

**कामदेवने कहा**—देवि! जब यह इन्द्रके रूपको देखेगी, उस समय मैं अवश्य इसे घायल करूँगा।

तदनन्तर देवराज इन्द्र परम सुन्दर दिव्य वेष धारण किये रतिके पीछे-पीछे चले; उनकी गतिमें अत्यन्त ललित विलास दृष्टिगोचर होता था। सब प्रकारके आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। दिव्य माला, दिव्य वस्त्र और दिव्य गन्धसे सुसज्जित हो वे पतिव्रता सुकलाके पास आये और उससे इस प्रकार बोले—'भद्रे! मैंने पहले तुम्हारे सामने दूती भेजी थी, फिर प्रीतिको रवाना किया। मेरी प्रार्थना क्यों नहीं मानती? मैं स्वयं तुम्हारे पास आया हूँ, मुझे स्वीकार करो।'

**सुकला बोली**—मेरे स्वामीके महात्मा पुत्र (सत्य, धर्म आदि) मेरी रक्षा कर रहे हैं। मुझे किसीका भय नहीं है। अनेक शूरवीर पुरुष सर्वत्र मेरी रक्षाके लिये उद्यत रहते हैं। जबतक मेरे नेत्र खुले रहते हैं, तबतक मैं निरन्तर पतिके ही कार्यमें लगी रहती हूँ। आप कौन हैं, जो मृत्युका भी भय छोड़कर मेरे पास आये हैं?

**इन्द्रने कहा**—तुमने अपने स्वामीके जिन शूरवीर पुत्रोंकी चर्चा की है, उन्हें मेरे सामने प्रकट करो! मैं कैसे उन्हें देख सकूँगा।

**सुकला बोली**—इन्द्रिय-संयमके विभिन्न गुणोंद्वारा उत्तम धर्म सदा मेरी रक्षा करता है। वह देखो, शान्ति और क्षमाके साथ सत्य मेरे सामने उपस्थित है। महाबली सत्य बड़ा यशस्वी है। यह कभी मेरा त्याग नहीं करता। इस प्रकार धर्म आदि रक्षक सदा मेरी देख-भाल किया करते हैं; फिर क्यों आप बलपूर्वक मुझे

प्राप्त करना चाहते हैं। आप कौन हैं, जो निडर होकर दूतीके साथ यहाँ आये हैं ? सत्य, धर्म, पुण्य और ज्ञान आदि बलवान् पुत्र मेरे तथा मेरे स्वामीके सहायक हैं। वे सदा मेरी रक्षामें तत्पर रहते हैं। मैं नित्य सुरक्षित हूँ। इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रहमें तत्पर रहती हूँ। साक्षात् शचीपति इन्द्र भी मुझे जीतनेकी शक्ति नहीं रखते। यदि महापराक्रमी कामदेव भी आ जाय तो मुझे कोई परवा नहीं है; क्योंकि मैं अनायास ही सतीत्वरूपी कवचसे सदा सुरक्षित हूँ। मुझपर कामदेवके बाण व्यर्थ हो जायँगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उलटे महाबली धर्म आदि तुम्हींको मार डालेंगे। दूर हटो, भाग जाओ, मेरे सामने न खड़े होओ। यदि मना करनेपर भी खड़े रहोगे तो जलकर खाक हो जाओगे। मेरे स्वामीकी अनुपस्थितिमें यदि तुम मेरे शरीरपर दृष्टि डालोगे तो जैसे आग सूखी लकड़ीको जला देती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हें भस्म कर डालूँगी।*

सुकलाने जब यह कहा, तब तो उस सतीके भयंकर शापके डरसे व्याकुल हो सब लोग जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। इन्द्र आदिने अपने-अपने लोककी राह ली। सबके चले जानेपर पुण्यमयी पतिव्रता सुकला पतिका ध्यान करती हुई अपने घर लौट आयी। वह घर पुण्यमय था। वहाँ सब तीर्थ निवास करते थे। सम्पूर्ण यज्ञोंकी भी वहाँ उपस्थिति थी। राजन् ! पतिको ही देवता माननेवाली वह सती अपने उसी घरमें आकर रहने लगी।

═══★═══

## सुकलाके स्वामीका तीर्थयात्रासे लौटना और धर्मकी आज्ञासे सुकलाके साथ श्राद्धादि करके देवताओंसे वरदान प्राप्त करना

**भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं**—राजन् ! कृकल वैश्य सब तीर्थोंकी यात्रा पूरी करके अपने साथियोंके साथ बड़े आनन्दसे घरकी ओर लौटे। वे सोचते थे—मेरा संसारमें जन्म लेना सफल हो गया; मेरे सब पितर स्वर्गको चले गये होंगे। वे इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि एक दिव्य-रूपधारी विशालकाय पुरुष उनके पिता-पितामहोंको प्रत्यक्षरूपसे बाँधकर सामने प्रकट हुए और बोले—'वैश्य ! तुम्हारा पुण्य उत्तम नहीं है। तुम्हें तीर्थ-यात्राका फल नहीं मिला। तुमने व्यर्थ ही इतना परिश्रम किया।' यह सुनकर कृकल वैश्य दुःखसे पीड़ित हो गये। उन्होंने पूछा—'आप कौन हैं, जो ऐसी बात कह रहे हैं ? मेरे पिता-पितामह क्यों बाँधे गये हैं ? मुझे तीर्थका फल क्यों नहीं मिला ?'

**धर्मने कहा**—जो धार्मिक आचार और उत्तम व्रतका पालन करनेवाली, श्रेष्ठ गुणोंसे विभूषित, पुण्यमें अनुराग रखनेवाली तथा पुण्यमयी पतिव्रता पत्नीको अकेली छोड़कर धर्म करनेके लिये बाहर जाता है, उसका किया हुआ सारा धर्म व्यर्थ हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो सब प्रकारके सदाचारमें संलग्न रहनेवाली, प्रशंसाके योग्य आचरणवाली, धर्मसाधनमें तत्पर, सदा पातिव्रत्यका पालन करनेवाली, सब बातोंको जाननेवाली तथा ज्ञानकी अनुरागिणी है, ऐसी गुणवती, पुण्यवती और महासती नारी जिसकी पत्नी हो, उसके घरमें सर्वदा देवता निवास करते हैं। पितर भी उसके घरमें रहकर निरन्तर उसके यशकी कामना करते रहते हैं। गङ्गा आदि पवित्र नदियाँ,

---

*अहं रक्षापरा नित्यं दमशान्तिपरायणा। न मां जेतुं समर्थश्च अपि साक्षाच्छचीपतिः॥
यदि वा मन्मथो वापि समागच्छति वीर्यवान्। दंशिताहं सदा सत्यमत्याकष्टेन सर्वदा॥
निरर्थकास्तस्य बाणा भविष्यन्ति न संशयः। त्वामेवं हि हनिष्यन्ति धर्माद्यास्ते महाबलाः॥
दूरं गच्छ पलायस्व नात्र तिष्ठ ममाग्रतः। वार्यमाणो यदा तिष्ठेर्भस्मीभूतो भविष्यसि॥
भर्त्रा बिना निरीक्षेत मम रूपं यदा भवान्। यथा दारु दहेद्वह्निस्तथा धक्ष्यामि नान्यथा॥
(५८। ३२—३६)

सागर, यज्ञ, गौ, ऋषि तथा सम्पूर्ण तीर्थ भी उस घरमें मौजूद रहते हैं। पुण्यमयी पत्नीके सहयोगसे गृहस्थ-धर्मका पालन अच्छे ढंगसे होता है। इस भूमण्डलमें गृहस्थधर्मसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। वैश्य ! गृहस्थका घर यदि सत्य और पुण्यसे युक्त हो तो परम पवित्र माना गया है, वहाँ सब तीर्थ और देवता निवास करते हैं। गृहस्थका सहारा लेकर सब प्राणी जीवन धारण करते हैं। गृहस्थ-आश्रमके समान दूसरा कोई उत्तम आश्रम मुझे नहीं दिखायी देता।* जिसके घरमें साध्वी स्त्री होती है, उसके यहाँ मन्त्र, अग्निहोत्र, सम्पूर्ण देवता, सनातन धर्म तथा दान एवं आचार सब मौजूद रहते हैं। इसी प्रकार जो पत्नीसे रहित है, उसका घर-जंगलके समान है। वहाँ किये हुए यज्ञ तथा भाँति-भाँतिके दान सिद्धिदायक नहीं होते। साध्वी पत्नीके समान कोई तीर्थ नहीं है, पत्नीके समान कोई सुख नहीं है तथा संसारसे तारनेके लिये और कल्याण-साधनके लिये पत्नीके समान कोई पुण्य नहीं है। जो अपनी धर्मपरायणा सती नारीको छोड़कर चला जाता है, वह मनुष्योंमें अधम है। गृह-धर्मका परित्याग करके तुम्हें धर्मका फल कहाँ मिलेगा। अपनी पत्नीको साथ लिये बिना जो तुमने तीर्थमें श्राद्ध और दान किया है, उसी दोषसे तुम्हारे पूर्वज बाँधे गये हैं। तुम चोर हो और तुम्हारे ये पितर भी चोर हैं; क्योंकि इन्होंने लोलुपतावश तुम्हारा दिया हुआ श्राद्धका अन्न खाया है। तुमने श्राद्ध करते समय अपनी पत्नीको साथ नहीं रखा था। जो सुयोग्य पुत्र श्रद्धासे युक्त हो अपनी पत्नीके दिये हुए पिण्डसे श्राद्ध करता है, उससे पितरोंको वैसी ही तृप्ति होती है, जैसी अमृत पीनेसे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पत्नी ही गार्हस्थ्य-धर्मकी स्वामिनी है; उसके बिना ही जो तुमने शुभ कर्मोंका अनुष्ठान किया है, यह स्पष्ट ही तुम्हारी चोरी है। जब पत्नी अपने हाथसे अन्न तैयार करके देती है, तो वह अमृतके समान मधुर होता है। उसी अन्नको पितर प्रसन्न होकर भोजन करते हैं तथा उसीसे उन्हें विशेष संतोष और तृप्ति होती है। अतः पत्नीके बिना जो धर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है।

**कृकलने पूछा**—धर्म ! अब कैसे मुझे सिद्धि प्राप्त होगी और किस प्रकार मेरे पितरोंको बन्धनसे छुटकारा मिलेगा ?

**धर्मने कहा**—महाभाग ! अपने घर जाओ। तुम्हारी धर्मपरायणा, पुण्यवती पत्नी सुकला तुम्हारे बिना बहुत दुःखी हो गयी थी; उसे सान्त्वना दो और उसीके हाथसे श्राद्ध करो। अपने घरपर ही पुण्यतीर्थोंका स्मरण करके तुम श्रेष्ठ देवताओंका पूजन करो, इससे तुम्हारी की हुई तीर्थ-यात्रा सफल हो जायगी।

**भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं**—राजन् ! यों कहकर धर्म जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये; परम बुद्धिमान् कृकल भी अपने घर गये और पतिव्रता पत्नीको देखकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। सुकलाने स्वामीको आया देख उनके शुभागमनके उपलक्षमें माङ्गलिक कार्य किया। तत्पश्चात् धर्मात्मा वैश्यने धर्मकी सारी चेष्टा बतलायी। स्वामीके आनन्ददायक वचन सुनकर महाभागा सुकलाको बड़ा हर्ष हुआ। उसके बाद कृकलने घरपर ही रहकर पत्नीके साथ श्रद्धापूर्वक श्राद्ध और देवपूजन आदि पुण्यकर्मका अनुष्ठान किया। इससे प्रसन्न होकर देवता, पितर और मुनिगण विमानोंके द्वारा वहाँ आये और महात्मा कृकल और उसकी महानुभावा पत्नी दोनोंकी सराहना करने लगे। मैं, ब्रह्मा तथा महादेवजी भी अपनी-अपनी देवीके साथ वहाँ गये। सम्पूर्ण देवता उस सतीके सत्यसे सन्तुष्ट थे। सबने उन दोनों पति-पत्नीसे कहा—'सुव्रत ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपनी पत्नीके साथ वर माँगो।'

**कृकलने पूछा**—देववरो ! मेरे किस पुण्य और तपके प्रसङ्गसे पत्नीसहित मुझे वर देनेको आपलोग पधारे हैं ?

* गार्हस्थ्यं च समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। तादृशं नैव पश्यामि ह्यन्यमाश्रममुत्तमम्॥

**इन्द्रने कहा**—यह महाभागा सुकला सती है। इसके सत्यसे सन्तुष्ट होकर हमलोग तुम्हें वर देना चाहते हैं।

यह कहकर इन्द्रने उसके सतीत्वकी परीक्षाका सारा वृत्तान्त थोड़ेमें कह सुनाया। उसके सदाचारका माहात्म्य सुनकर उसके स्वामीको बड़ी प्रसन्नता हुई। हर्षोल्लाससे कृकलके नेत्र डबडबा आये। धर्मात्मा वैश्यने पत्नीके साथ समस्त देवताओंको बारम्बार साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'महाभाग देवगण! आप सब लोग प्रसन्न हों; तीनों सनातन देवता ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव हमपर सन्तुष्ट हों तथा अन्य जो पुण्यात्मा ऋषि मुझपर कृपा करके यहाँ पधारे हैं, वे भी प्रसन्नता प्राप्त करें। मैं सदा भगवान्‌की भक्ति करता रहूँ। आपलोगोंकी कृपासे धर्म तथा सत्यमें मेरा निरन्तर अनुराग बना रहे। तत्पश्चात् अन्तमें पत्नी और पितरके साथ मैं भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाना चाहता हूँ।'

**देवता बोले**—महाभाग! एवमस्तु, यह सब कुछ तुम्हें प्राप्त होगा।

**भगवान् श्रीविष्णुने कहा**—राजन्! यह कहकर देवताओंने उन दोनों पति-पत्नीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की तथा ललित, मधुर और पवित्र संगीत सुनाया। वर देकर वे उस पतिव्रताकी स्तुति करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये। इस परम उत्तम और पवित्र उपाख्यानको मैंने पूर्णरूपसे तुम्हें सुना दिया। राजन्! जो मनुष्य इसे सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। स्त्रीमात्रको सुकलाका उपाख्यान श्रद्धापूर्वक सुनना चाहिये। इसके श्रवणसे वह सौभाग्य, सतीत्व तथा पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होती है। इतना ही नहीं, पतिके साथ सुखी रहकर वह निरन्तर आनन्दका अनुभव करती है।

★

## पितृतीर्थके प्रसङ्गमें पिप्पलकी तपस्या और सुकर्माकी पितृभक्तिका वर्णन; सारसके कहनेसे पिप्पलका सुकर्माके पास जाना और सुकर्माका उन्हें माता-पिताकी सेवाका महत्त्व बताना

**वेनने कहा**—भगवन्! आपने सब तीर्थोंमें उत्तम भार्या-तीर्थका वर्णन तो किया, अब पुत्रोंको तारनेवाले पितृ-तीर्थका वर्णन कीजिये।

**भगवान् श्रीविष्णुने कहा**—परम पुण्यमय कुरुक्षेत्रमें कुण्डल नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनके सुयोग्य पुत्रका नाम सुकर्मा था। सुकर्माके माता और पिता दोनों ही अत्यन्त वृद्ध, धर्मज्ञ और शास्त्रवेत्ता थे। सुकर्माको भी धर्मका पूर्ण ज्ञान था। वे श्रद्धायुक्त होकर बड़ी भक्तिके साथ दिन-रात माता-पिताकी सेवामें लगे रहते थे। उन्होंने पितासे ही सम्पूर्ण वेद और अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया। वे पूर्णरूपसे सदाचारका पालन करनेवाले, जितेन्द्रिय और सत्यवादी थे। अपने ही हाथों माता-पिताका शरीर दबाते, पैर धोते और उन्हें स्नान-भोजन आदि कराते थे। राजेन्द्र! सुकर्मा स्वभावसे ही भक्तिपूर्वक माता-पिताकी परिचर्या करते और सदा उन्हींके ध्यानमें लीन रहते थे।

उन्हीं दिनों कश्यप-कुलमें उत्पन्न एक ब्राह्मण थे, जो पिप्पल नामसे प्रसिद्ध थे। वे सदा धर्म-कर्ममें लगे रहते थे और इन्द्रिय-संयम, पवित्रता तथा मनोनिग्रहसे सम्पन्न थे। एक समयकी बात है, वे महामना बुद्धिमान् ब्राह्मण दशारण्यमें जाकर ज्ञान और शान्तिके साधनमें तत्पर हो तपस्या करने लगे। उनकी तपस्याके प्रभावसे आस-पासके समस्त प्राणियोंका पारस्परिक वैर-विरोध शान्त हो गया। वे सब वहाँ एक पेटसे पैदा हुए भाइयोंकी तरह हिल-मिलकर रहते थे। पिप्पलकी तपस्या देख मुनियों तथा इन्द्र आदि देवताओंको भी बड़ा विस्मय हुआ।

**देवता कहने लगे**—'अहो! इस ब्राह्मणकी कितनी तीव्र तपस्या है। कैसा मनोनिग्रह है और कितना इन्द्रियसंयम है! मनमें विकार नहीं। चित्तमें उद्वेग नहीं।' काम-क्रोधसे रहित हो, सर्दी-गर्मी और हवाका झोंका सहते हुए वे तपस्वी ब्राह्मण पर्वतकी भाँति अविचल

भावसे स्थित रहे। ऐसी अवस्थामें पहुँचकर उनका चित्त एकाग्र हो गया। वे ब्रह्मके ध्यानमें तन्मय थे। उनका मुख-कमल प्रसन्नतासे खिल उठा था। वे पत्थर और काठकी भाँति निश्चेष्ट एवं सुस्थिर दिखायी देते थे। धर्ममें उनका अनुराग था। तपसे शरीर दुर्बल हो गया था और हृदयमें पूर्ण श्रद्धा थी। इस प्रकार उन बुद्धिमान् ब्राह्मणको तपस्या करते एक हजार वर्ष बीत गये।

वहाँ बहुत-सी चींटियोंने मिलकर मिट्टीका ढेर लगा दिया। उनके ऊपर बाँबीका विशाल मन्दिर-सा बन गया। काले साँपोंने आकर उनके शरीरको लपेट लिया। भयंकर विषवाले सर्प उन उग्र तेजस्वी ब्राह्मणको डँस लेते थे; किन्तु जहर उनके शरीरपर गिर जाता था, उनकी त्वचाको भेदकर भीतर नहीं फैलने पाता था। उनके सम्पर्कमें आकर साँप स्वयं ही शान्त हो जाते थे। उनकी देहसे नाना प्रकारकी तेजोमयी लपटें निकलती दिखायी देती थीं। पिप्पल तीनों काल तपमें प्रवृत्त रहते थे। वे तीन हजार वर्षोंतक केवल वायु पीकर रह गये। तब देवताओंने उनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा की और कहा—'महाभाग ! तुम जिस-जिस वस्तुको प्राप्त करना चाहते हो, वह सब निश्चय ही प्राप्त होगी। तुम्हें समस्त अभिलषित पदार्थोंको देनेवाली सिद्धि स्वतः ही प्राप्त हो जायगी।'

यह वाक्य सुनकर महामना पिप्पलने भक्तिपूर्वक मस्तक झुका समस्त देवताओंको प्रणाम किया और बड़े हर्षमें भरकर कहा—'देवताओ ! यह सारा जगत् मेरे वशमें हो जाय—ऐसा वरदान दीजिये; मैं विद्याधर होना चाहता हूँ।' 'एवमस्तु' कहकर देवताओंने उन ब्राह्मणको अभीष्ट वरदान दिया और अपने-अपने स्थानको चले गये। राजेन्द्र ! तबसे द्विजश्रेष्ठ पिप्पल विद्याधरका पद पा गये और इच्छानुसार विचरते हुए सर्वत्र सम्मानित होने लगे। एक दिन महातेजस्वी पिप्पलने विचार किया—'देवताओंने मुझे वर दिया है कि सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे वशमें हो जायगा। अतः उसकी परीक्षा करनी चाहिये।' यह सोचकर वे उसे आजमानेको तैयार हुए। जिस-जिस व्यक्तिका वे मनसे चिन्तन करते, वही-वही उनके वशमें हो जाता था। इस प्रकार जब उन्हें देवताओंकी बातपर विश्वास हो गया, तब वे [अहंकारके वशीभूत हो] सोचने लगे—'मेरे समान श्रेष्ठ पुरुष इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है।'

पिप्पल जब इस प्रकारकी भावना करने लगे, तब उनके मनका भाव जानकर एक सारसने कहा—'ब्राह्मण ! तुम ऐसा अहंकार क्यों कर रहे हो कि 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ।' मैं तो ऐसा नहीं मानता कि सबको वशमें करनेकी सिद्धि केवल तुम्हींको प्राप्त हुई है। पिप्पल ! मेरी समझमें तुम्हारी बुद्धि मूढ़ है, तुम पराचीन तत्त्वको नहीं जानते। तुमने तीन हजार वर्षोंतक तप किया है, इसीका तुम्हें गर्व है; फिर भी तुम यहाँ मूढ़ ही रह गये। कुण्डलके जो सुकर्मा नामक पुत्र हैं, वे विद्वान् पुरुष हैं; उनकी बुद्धि उत्तम है। वे अर्वाचीन तथा पराचीन तत्त्वको जानते हैं। पिप्पल ! तुम कान खोलकर सुन लो, संसारमें सुकर्माके समान महाज्ञानी दूसरा कोई नहीं है। उन्होंने दान नहीं दिया; ध्यान, होम और यज्ञ आदि कर्म भी कभी नहीं किया। न तीर्थ करने गये, न गुरुकी उपासना ही की। वे केवल माता-पिताके हितैषी हैं, वेदाध्ययनसम्पन्न हैं तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। यद्यपि सुकर्मा अभी बालक हैं, तो भी उन्हें जैसा ज्ञान प्राप्त है, वैसा तुम्हें अबतक नहीं हुआ। ऐसी दशामें तुम व्यर्थ ही यह गर्वका बोझ ढो रहे हो।

**पिप्पल बोले**—आप कौन हैं, जो पक्षीके रूपमें आकर इस प्रकार मेरी निन्दा कर रहे हैं ? इस समय मुझे अर्वाचीन और पराचीनका स्वरूप पूर्णतया समझाइये।

**सारसने कहा**—द्विजश्रेष्ठ ! कुण्डलके बालक पुत्रको जैसा ज्ञान प्राप्त है, वैसा तुममें नहीं है। यहाँसे जाओ और अर्वाचीन एवं पराचीनका स्वरूप तथा मेरा परिचय भी उन्हींसे पूछो। वे धर्मात्मा हैं, तुम्हें सारा ज्ञान बतलायेंगे।

सारसकी यह बात सुनकर विप्रवर पिप्पल बड़े वेगसे कुण्डलके आश्रमकी ओर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, सुकर्मा माता-पिताकी सेवामें लगे हैं। वे सत्यपराक्रमी महात्मा अपने माता-पिताके चरणोंके

निकट बैठे थे। उनके भीतर बड़ी भक्ति थी। वे परम शान्त और सम्पूर्ण ज्ञानकी महान् निधि जान पड़ते थे। कुण्डल-कुमार सुकर्माने जब पिप्पलको अपने द्वारपर आया देखा, तब वे आसन छोड़कर तुरंत खड़े हो गये और आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। फिर उनको आसन, पाद्य और अर्घ्य आदि निवेदन करके पूछा—'महाप्राज्ञ ! आप कुशलसे तो हैं न ? मार्गमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? जिस कारणसे आपका यहाँ आना हुआ है, वह सब मैं बताता हूँ। महाभाग ! आपने तीन हजार वर्षोंतक तपस्या करके देवताओंसे वरदान प्राप्त किया—सबको वशमें करनेकी शक्ति और इच्छानुसार गति पायी है। इससे उन्मत्त हो जानेके कारण आपके मनमें गर्व हो आया। तब महात्मा सारसने आपकी सारी चेष्टा देखकर आपको मेरा नाम बताया और मेरे उत्तम ज्ञानका परिचय दिया।

**पिप्पलने पूछा**—ब्रह्मन् ! नदीके तीरपर जो सारस मिला था, जिसने मुझे यह कहकर आपके पास भेजा कि 'वे सब ज्ञान बता सकते हैं,' वह कौन था ?

**सुकर्माने कहा**—विप्रवर ! सरिताके तटपर जिन्होंने सारसके रूपमें आपसे बात की थी, वे साक्षात् महात्मा ब्रह्माजी थे।

**यह सुनकर धर्मात्मा पिप्पलने कहा**—ब्रह्मन् ! मैंने सुना है, सारा जगत् आपके अधीन है; इस बातको देखनेके लिये मेरे मनमें उत्कण्ठा हो रही है। आप यत्न करके मुझे अपनी यह शक्ति दिखाइये। तब सुकर्माने पिप्पलको विश्वास दिलानेके लिये देवताओंका स्मरण किया। उनके आवाहन करनेपर सम्पूर्ण देवता वहाँ आये और सुकर्मासे इस प्रकार बोले—'ब्रह्मन् ! तुमने किसलिये हमें याद किया है, इसका कारण बताओ।'

**सुकर्माने कहा**—देवगण ! विद्याधर पिप्पल आज मेरे अतिथि हुए हैं, ये इस बातका प्रमाण चाहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व मेरे वशमें कैसे है। इन्हें विश्वास दिलानेके लिये ही मैंने आपलोगोंका आवाहन किया है। अब आप अपने-अपने स्थानको पधारें।'

**तब देवताओंने कहा**—'ब्रह्मन् ! हमारा दर्शन निष्फल नहीं होता। तुम्हारा कल्याण हो; तुम्हारे मनको जो रुचिकर प्रतीत हो, वही वरदान हमसे माँग लो।' तब द्विजश्रेष्ठ सुकर्माने देवताओंको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके यह वरदान माँगा—'देवेश्वरो ! माता-पिताके चरणोंमें मेरी उत्तम भक्ति सदा सुस्थिर रहे तथा मेरे माता-पिता भगवान् श्रीविष्णुके धाममें पधारें।'

**देवता बोले**—विप्रवर ! तुम माता-पिताके भक्त तो हो ही, तुम्हारी उत्तम भक्ति और भी बढ़े।

यों कहकर सम्पूर्ण देवता स्वर्गलोगको चले गये। पिप्पलने भी वह महान् और अद्भुत कौतुक प्रत्यक्ष देखा। तत्पश्चात् उन्होंने कुण्डलपुत्र सुकर्मासे कहा—'वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! परमात्माका अर्वाचीन और पराचीन रूप कैसा होता है, दोनोंका प्रभाव क्या है ? यह बताइये।'

**सुकर्माने कहा**—ब्रह्मन् ! मैं पहले आपको पराचीन रूपकी पहचान बताता हूँ, उसीसे इन्द्र आदि देवता तथा चराचर जगत् मोहित होते हैं। ये जो जगत्के स्वामी परमात्मा हैं, वे सबमें मौजूद और सर्वव्यापक हैं। उनके रूपको किसी योगीने भी नहीं देखा है। श्रुति भी ऐसा कहती है कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके न हाथ हैं न पैर, न नाक है न कान और न मुख ही है। फिर भी वे तीनों लोकोंके निवासियोंके सारे कर्म देखा करते हैं। कान न होनेपर भी सबकी कही हुई बातोंको सुनते हैं। वे परम शान्ति प्रदान करनेवाले हैं। हाथ न होनेपर भी काम करते और पैरोंसे रहित होकर भी सब ओर दौड़ते हैं।* वे व्यापक, निर्मल, सिद्ध, सिद्धि-दायक और सबके नायक हैं। आकाशस्वरूप और अनन्त

---

* पराचीनस्य रूपस्य लिङ्गमेवं वदामि ते। येन लोकाः प्रमोह्यन्त इन्द्राद्याः सचराचराः॥
अयमेष जगन्नाथः सर्वगो व्यापकः परः। अस्य रूपं न दृष्टं हि केनाप्येव हि योगिना॥
श्रुतिरेव वदत्येवं न वक्तुं शक्यतेऽपि सः। अपादो ह्यकरोऽनासो ह्यकर्णो मुखवर्जितः॥

हैं। व्यास तथा मार्कण्डेय उनके स्वरूपको जानते हैं।

अब मैं भगवान्‌के अर्वाचीन रूपका वर्णन करूँगा, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। 'जिस समय सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा प्रजापति ब्रह्माजी स्वयं ही सबका संहार करके श्रीभगवान्‌के स्वरूपमें स्थित होते हैं और भगवान् श्रीजनार्दन उन्हें अपनेमें लीन करके पानीके भीतर शेषनागकी शय्यापर दीर्घकालतक अकेले सोये रहते हैं, उस समयकी बात है। महामुनि मार्कण्डेयजी जल और अन्धकारसे व्याकुल हो इधर-उधर भटक रहे थे। उन्होंने देखा सर्वव्यापी ईश्वर शेषनागकी शय्यापर सो रहे हैं। उनका तेज करोड़ों सूर्योंके समान जान पड़ता है। वे दिव्य आभूषण, दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये योगनिद्रामें स्थित हैं। उनका श्रीविग्रह बड़ा ही कमनीय है। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा विराजमान हैं।* उनके पास ही उन्होंने एक विशालकाय स्त्री देखी, जो काली अञ्जन-राशिके समान थी। उसका रूप बड़ा भयंकर था। उसने मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयसे कहा—'महामुने! डरो मत।' तब उन योगीश्वरने पूछा—'देवि! तुम कौन हो?' मुनिके इस प्रकार पूछनेपर देवीने बड़े आदरके साथ कहा—'ब्रह्मन्! जो शेषनागकी शय्यापर सो रहे हैं, वे भगवान् श्रीविष्णु हैं। मैं उन्हींकी वैष्णवी शक्ति कालरात्रि हूँ।'

पिप्पलजी! यों कहकर वह देवी अन्तर्धान हो गयी। उसके चले जानेपर मार्कण्डेयजीने देखा—भगवान्‌की नाभिसे एक कमल प्रकट हुआ, जिसकी कान्ति सुवर्णके समान थी। उसीसे महातेजस्वी लोकपितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। फिर ब्रह्माजीसे समस्त चराचर प्राणी, इन्द्रादि लोकपाल तथा अग्नि आदि देवताओंका जन्म हुआ। इस प्रकार मैंने यह अर्वाचीनका स्वरूप बतलाया है। अर्वाचीन रूप शरीरधारी है और पराचीन रूप शरीररहित है, अतः ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता अर्वाचीन हैं। ये लोक भी, जो तीनों भुवनोंमें स्थित हैं, अर्वाचीन ही माने गये हैं। विद्याधर! मोक्षरूप जो परम स्थान है; जिसे परब्रह्म कहते हैं, जो अव्यक्त, अक्षर, हंसस्वरूप, शुद्ध और सिद्धियुक्त है, वही पराचीन है।† इस प्रकार तुम्हारे सामने पराचीन स्वरूपका वर्णन किया गया।

**विद्याधरने पूछा**—सुव्रत! आप अर्वाचीन और पराचीन स्वरूपके विद्वान् हैं। तीनों लोकोंका उत्तम ज्ञान आपमें वर्तमान है। फिर भी मैं आपमें तपस्याकी पराकाष्ठा नहीं देखता। ऐसी दशामें आपके इस प्रभावका क्या कारण है? कैसे आपको सब बातोंका ज्ञान प्राप्त हुआ?

**सुकर्माने कहा**—ब्रह्मन्! मैंने यजन-याजन, धर्मानुष्ठान ज्ञानोपार्जन और तीर्थ-सेवन—कुछ भी नहीं किया। इनके सिवा और भी किसी शुभकर्मजनित पुण्यका अर्जन मेरे द्वारा नहीं हुआ। मैं तो स्पष्टरूपसे एक ही बात जानता हूँ—वह है पिता और माताकी सेवा-पूजा। पिप्पल! मैं स्वयं ही अपने हाथसे माता-पिताके चरण धोनेका पुण्यकार्य करता हूँ। उनके शरीरकी सेवा करता तथा उन्हें स्नान और भोजन आदि कराता हूँ। प्रतिदिन तीनों समय माता-पिताकी सेवामें ही लगा रहता हूँ। जबतक मेरे माँ-बाप जीवित हैं, तबतक मुझे यह अतुलनीय लाभ मिल रहा है कि तीनों समय

---

सर्वं पश्यति वै कर्म कृतं त्रैलोक्यवासिनाम्। तेषामुक्तमकर्णश्च स शृणोति सुशान्तिदः॥
..... । पाणिहीनः पादहीनः कुरुते च प्रधावति॥
(६२। २८—३२)

* भ्रममाणः स ददृशे शेषपर्यङ्कशायिनम्। सूर्यकोटिप्रतीकाशं दिव्याभरणभूषितम्॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं सर्वव्यापिनमीश्वरम्। योगनिद्रागतं कान्तं शङ्खचक्रगदाधरम्॥
(६२। ३९-४०)

† मोक्षरूपं परं स्थानं परब्रह्मस्वरूपकम्। अव्यक्तमक्षरं हंसं शुद्धं सिद्धिसमन्वितम्॥
(६२। ५३)

मैं शुद्धभावसे मन लगाकर इन दोनोंकी पूजा करता हूँ। पिप्पल ! मुझे दूसरी तपस्यासे क्या लेना है। तीर्थयात्रा तथा अन्य पुण्यकर्मोंसे क्या प्रयोजन है। विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान करके जिस फलको प्राप्त करते हैं, वही मैंने पिता-मताकी सेवासे पा लिया है। जहाँ माता-पिता रहते हों, वही पुत्रके लिये गङ्गा, गया और पुष्करतीर्थ है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। माता-पिताकी सेवासे पुत्रके पास अन्यान्य पवित्र तीर्थ भी स्वयं ही पहुँच जाते हैं। जो पुत्र माता-पिताके जीते-जी उनकी सेवा करता है, उसके ऊपर देवता तथा पुण्यात्मा महर्षि प्रसन्न होते हैं। पिताकी सेवासे तीनों लोक संतुष्ट हो जाते हैं। जो पुत्र प्रतिदिन माता-पिताके चरण पखारता है, उसे नित्यप्रप्ति गङ्गास्नानका फल मिलता है।* जिस पुत्रने ताम्बूल, वस्त्र, खान-पानकी विविध सामग्री तथा पवित्र अन्नके द्वारा भक्तिपूर्वक माता-पिताका पूजन किया है, वह सर्वज्ञ होता है।

द्विजश्रेष्ठ ! माता-पिताको स्नान कराते समय जब उनके शरीरसे जलके छींटे उछटकर पुत्रके सम्पूर्ण अङ्गोंपर पड़ते हैं, उस समय उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल होता है। यदि पिता पतित, भूखसे व्याकुल, वृद्ध सब कार्योंमें असमर्थ, रोगी और कोढ़ी हो गये हों तथा माताकी भी वही अवस्था हो, उस समयमें भी जो पुत्र उनकी सेवा करता है, उसपर निस्सन्देह भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। वह योगियोंके लिये भी दुर्लभ भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। जो किसी अङ्गसे हीन, दीन, वृद्ध, दुःखी तथा महान् रोगसे पीड़ित माता-पिताको त्याग देता है, वह पापात्मा पुत्र कीड़ोंसे भरे हुए दारुण नरकमें पड़ता है। जो पुत्र बूढ़े माँ-बापके बुलानेपर भी उनके पास नहीं जाता, वह मूर्ख विष्ठा खाने-वाला कीड़ा होता है तथा हजार जन्मोंतक उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। वृद्ध माता-पिता जब घरमें मौजूद हों, उस समय जो पुत्र पहले उन्हें भोजन कराये बिना स्वयं अन्न ग्रहण करता है, वह घृणित कीड़ा होता है और हजार जन्मोंतक मल-मूत्र भोजन करता है। इसके सिवा वह पापी तीन सौ जन्मोंतक काला नाग होता है।† जो पुत्र कटु-वचनोंद्वारा माता-पिताकी निन्दा करता है, वह पापी बाघकी योनिमें जन्म लेता है तथा और भी बहुत दुःख उठाता है। जो पापात्मा पुत्र माता-पिताको प्रणाम नहीं करता, वह हजार युगोंतक कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है। पुत्रके लिये माता-पितासे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। माता-पिता इस लोक और परलोकमें भी नारायणके समान हैं।‡ इसलिये महाप्राज्ञ ! मैं प्रतिदिन माता-पिताकी पूजा करता और उनके योग-क्षेमकी चिन्तामें लगा रहता हूँ। इसीसे तीनों लोक मेरे वशमें हो

---

* मातापित्रोस्तु यः पादौ नित्यं प्रक्षालयेत्सुतः। तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते॥ (६२। ७४)

† तयोश्चापि द्विजश्रेष्ठ मातापित्रोश्च स्नातयोः। पुत्रस्यापि हि सर्वाङ्गे पतन्त्यम्बुकणा यदा॥
सर्वतीर्थसमं स्नानं पुत्रस्यापि प्रजायते।.....॥
पतितं क्षुधितं वृद्धमशक्तं सर्वकर्मसु। व्याधितं कुष्ठिनं तातं मातरं च तथाविधाम्॥
उपाचरति यः पुत्रस्तस्य पुण्यं वदाम्यहम्। विष्णुस्तस्य प्रसन्नात्मा जायते नात्र संशयः॥
प्रयाति वैष्णवं लोकं यदप्राप्यं हि योगिभिः। पितरौ विकलौ दीनौ वृद्धौ दुःखितमानसौ॥
महागदेन संतप्तौ परित्यजति पापधीः। स पुत्रो नरकं याति दारुणं कृमिसंकुलम्॥
वृद्धाभ्यां यः समाहूतो गुरुभ्यामिह साम्प्रतम्। न प्रयाति सुतो भूत्वा तस्य पापं वदाम्यहम्॥
विष्ठाशी जायते मूढोऽमेध्यभोजी न संशयः। यावज्जन्मसहस्रं तु पुनः श्वानोऽभिजायते॥
पुत्रगेहे स्थितौ मातापितरौ वृद्धकौ तथा। स्वयं ताभ्यां विना भुक्त्वा प्रथमं जायते घृणिः॥
मूत्रं विष्ठां च भुञ्जीत यावज्जन्मसहस्रकम्। कृष्णसर्पो भवेत्पापी यावज्जन्मशतत्रयम्॥ (६३। १—१०)

‡ पितरौ कुत्सते पुत्रः कटुकैर्वचनैरपि। स च पापी भवेद्व्याघ्रः पश्चाद्दुःखी प्रजायते॥
मातरं पितरं पुत्रो न नमस्यति पापधीः। कुम्भीपाके वसेत्तावद्यावद्युगसहस्रकम्॥
नास्ति मातुः परं तीर्थं पुत्राणां च पितुस्तथा। नारायणसमावेताविह चैव परत्र च॥ (६३। ११—१३)

गये हैं। माता-पिताके प्रसादसे ही मुझे पराचीन तथा वासुदेवस्वरूप अर्वाचीन तत्त्वका उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है। मेरी सर्वज्ञतामें माता-पिताकी सेवा ही कारण है। भला, कौन ऐसा विद्वान् पुरुष होगा, जो पिता-माताकी पूजा नहीं करेगा। ब्रह्मन्! श्रुति (उपनिषद्) और शास्त्रोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके साङ्गोपाङ्ग अध्ययनसे ही क्या लाभ हुआ, यदि उसने माता-पिताका पूजन नहीं किया। उसका वेदाध्ययन व्यर्थ है। उसके यज्ञ, तप, दान और पूजनसे भी कोई लाभ नहीं। जिसने माँ-बापका आदर नहीं किया, उसके सभी शुभकर्म निष्फल होते हैं। माता-पिता ही पुत्रके लिये धर्म, तीर्थ, मोक्ष, जन्मके उत्तम फल, यज्ञ और दान आदि सब कुछ हैं।

═══ ★ ═══

## सुकर्माद्वारा ययाति और मातलिके संवादका उल्लेख—मातलिके द्वारा देहकी उत्पत्ति, उसकी अपवित्रता, जन्म-मरण और जीवनके कष्ट तथा संसारकी दुःखरूपताका वर्णन

**सुकर्मा कहते हैं**—अब मैं इस विषयमें पुण्यात्मा राजा ययातिके चरित्रका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। सोमवंशमें एक नहुष नामके राजा हो गये हैं। उन्होंने अनेकों दानधर्मोंका अनुष्ठान किया, जिनकी कहीं तुलना नहीं थी। उन्होंने अपने पुण्यके प्रभावसे इन्द्रलोकपर अधिकार प्राप्त किया था। उन्हींके पुत्र राजा ययाति हुए, जो शत्रुओंका मानमर्दन करनेवाले थे। वे सत्यका आश्रय ले धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते थे। प्रजाके सब कार्योंकी स्वयं ही देख-भाल किया करते थे। वे उत्तम धर्मकी महिमा सुनकर सब प्रकारके दान-पुण्य, यज्ञानुष्ठान एवं तीर्थ-सेवन आदिमें लगे रहते थे। महाराज ययातिने अस्सी हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका राज्य किया। उनके चार पुत्र हुए, जो उन्हींके समान शूरवीर, बलवान् और पराक्रमी थे। तेज और पुरुषार्थमें भी वे पिताकी समानता करते थे। इस प्रकार ययातिने दीर्घकालतक धर्मपूर्वक राज्य किया।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीके पुत्र नारदजी इन्द्रलोकमें गये। उन्हें आया देख इन्द्रने भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और मधुपर्क आदिसे उनकी पूजा करके उन्हें एक पवित्र आसनपर बिठाया। तत्पश्चात् वे उन महामुनिसे पूछने लगे—'देवर्षे! किस लोकसे आपका यहाँ आना हुआ है? तथा यहाँ पदार्पण करनेका क्या उद्देश्य है?'

**नारदजीने कहा**—मैं इस समय भूलोकसे आ रहा हूँ। नहुष-पुत्र ययातिसे मिलकर अब आपसे मिलनेके लिये आया हूँ।

**इन्द्रने पूछा**—इस समय पृथ्वीपर कौन राजा सत्य और धर्मके अनुसार प्रजाका पालन करता है? कौन सब धर्मोंसे युक्त, विद्वान्, ज्ञानवान्, गुणी, ब्राह्मणोंके कृपापात्र, ब्राह्मणभक्त, वेदवेत्ता, शूरवीर, दाता, यज्ञ करनेवाला और पूर्ण भक्तिमान् है?

**नारदजीने कहा**—नहुषके बलवान् पुत्र ययाति इन गुणोंसे युक्त हैं। वे अपने पितासे भी बढ़े-चढ़े हैं। उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ किये हैं। भक्तिपूर्वक अनेक प्रकारके दान दिये हैं। उनके द्वारा लाखों-करोड़ों गौएँ दानमें दी जा चुकी हैं। उन्होंने कोटिहोम तथा लक्षहोम भी किये हैं। ब्राह्मणोंको भूमि आदिका दान भी दिया है। उन्होंने ही धर्मके साङ्गोपाङ्ग स्वरूपका पालन किया है। ऐसे गुणोंसे युक्त नहुष-पुत्र राजा ययाति अस्सी हजार वर्षोंसे सत्य-धर्मके अनुसार विधिवत् राज्य करते आ रहे हैं। इस कार्यमें वे आपकी समानता करते हैं।

**सुकर्मा कहते हैं**—मुनीश्वर नारदके मुखसे ऐसी बात सुनकर बुद्धिमान् इन्द्र कुछ सोचने लगे। वे ययातिके धर्म-पालनसे भयभीत हो उठे थे। उनके मनमें यह बात आयी कि 'पूर्वकालमें राजा नहुष सौ यज्ञोंके प्रभावसे मेरे इन्द्रपदपर अधिकार करके देवताओंके राजा बन बैठे थे। शचीकी बुद्धिके प्रभावसे उन्हें पदभ्रष्ट होना पड़ा था। ये महाराज ययाति भी ऐसे ही सुने जाते हैं।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ये इन्द्रपदपर अधिकार कर लेंगे। अतः जिस-किसी उपायसे सम्भव हो, उन्हें स्वर्गमें लाऊँगा।'

ययातिसे डरे हुए देवराजने ऐसा विचार करके उन्हें बुलानेके लिये दूत भेजा। अपने सारथि मातलिको विमानके साथ रवाना किया। मातलि उस स्थानपर गये, जहाँ नहुष-पुत्र धर्मात्मा ययाति अपनी राजसभामें विराजमान थे। सत्य ही उन श्रेष्ठ नरेशका आभूषण था। देवराजके सारथिने उनसे कहा—'राजन्! मेरी बात सुनिये, देवराज इन्द्रने मुझे इस समय आपके पास भेजा है। उनका अनुरोध है कि अब आप पुत्रको राज्य दे आज ही इन्द्रलोकको पधारें। महीपते! वहाँ इन्द्रके साथ रहकर आप स्वर्गका आनन्द भोगिये।'

**ययातिने पूछा**—मातले! मैंने देवराज इन्द्रका कौन-सा ऐसा कार्य किया है, जिससे तुम ऐसी प्रार्थना कर रहे हो?

**मातलिने कहा**—राजन्! लगभग एक लाख वर्षोंसे आप दान-यज्ञ आदि कर्म कर रहे हैं। इन कर्मोंके फलस्वरूप इस समय स्वर्गलोगमें चलिये और देवराज इन्द्रके सखा होकर रहिये। इस पाञ्चभौतिक शरीरको भूमिपर ही त्याग दीजिये और दिव्य रूप धारण करके मनोरम भोगोंका उपभोग कीजिये।

**ययातिने प्रश्न किया**—मनुष्य जिस शरीरसे सत्यधर्म आदि पुण्यका उपार्जन करता है, उसे वह कैसे छोड़ सकता है।

**मातलिने कहा**—राजन्! तुम्हारा कथन ठीक है, तथापि मनुष्यको अपना यह शरीर छोड़कर ही जाना पड़ता है [क्योंकि आत्माका शरीरके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है]। शरीर पञ्चभूतोंसे बना हुआ है; जब इसकी संधियाँ शिथिल हो जाती हैं, उस समय वृद्धावस्थासे पीड़ित मनुष्य इस शरीरको त्याग देना चाहता है।

**ययातिने पूछा**—साधुश्रेष्ठ! वृद्धावस्था कैसे उत्पन्न होती है तथा वह क्यों शरीरको पीड़ा देती है? इन सब बातोंको विस्तारसे समझाओ।

**मातलिने कहा**—राजन्! पञ्चभूतोंसे इस शरीरका निर्माण हुआ है तथा पाँच विषयोंसे यह घिरा हुआ है। वीर्य और रक्तका नाश होनेसे प्रायः शरीर खोखला हो जाता है, उसमें प्रचण्ड वायुका प्रकोप होता है। इससे मनुष्यका रंग बदल जाता है। वह दुःखसे संतप्त और हतबुद्धि हो जाता है। जो स्त्री देखी-सुनी होती है, उसमें चित्त आसक्त होनेसे वह सदा भटकता रहता है। शरीरमें तृप्ति नहीं होती; क्योंकि उसका चित्त सदा लोलुप रहा करता है। जब कामी मनुष्य मांस और रक्त क्षीण होनेसे दुर्बल हो जाता है, तब उसके बाल पक जाते हैं। कामाग्निसे शरीरका शोषण हो जाता है। वृद्ध होनेपर भी दिन-दिन उसकी कामना बढ़ती ही जाती है। बूढ़ा मनुष्य ज्यों-ज्यों स्त्रीके सहवासका चिन्तन करता है, त्यों-त्यों उसके तेजकी हानि होती है। अतः काम नाशस्वरूप है, यह नाशके लिये ही उत्पन्न होता है। काम एक भयंकर ज्वर है, जो प्राणियोंका काल बनकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस शरीरमें जीर्णता—जरावस्था आती है।

**ययातिने कहा**—मातले! आत्माके साथ यह शरीर ही धर्मका रक्षक है, तो भी यह स्वर्गको नहीं जाता—इसका क्या कारण है? यह बताओ।

**मातलि बोले**—महाराज! पाँचों भूतोंका आपसमें ही मेल नहीं है। फिर आत्माके साथ उनका मेल कैसे हो सकता है। आत्माके साथ इनका सम्बन्ध बिलकुल नहीं है। शरीर-समुदायमें भी सम्पूर्ण भूतोंका पूर्ण संघट नहीं है; क्योंकि जरावस्थासे पीड़ित होनेपर सभी अपने-अपने स्थानको चले जाते हैं। इस शरीरमें अधिकांश पृथ्वीका भाग है। यह पृथ्वीकी समानताको लेकर ही प्रतिष्ठित है। जैसे पृथ्वी स्थित है, उसी प्रकार यह भी यहीं स्थित रहता है। अतः शरीर स्वर्गको नहीं जाता।

**ययातिने कहा**—मातले! मेरी बात सुनो। जब पापसे भी शरीर गिर जाता है और पुण्यसे भी, तब मैं इस पृथ्वीपर पुण्यमें कोई विशेषता नहीं देखता। जैसे पहले शरीरका पतन होता है, उसी प्रकार पुनः दूसरे शरीरका जन्म भी हो जाता है। किन्तु उस देहकी उत्पत्ति कैसे होती है? मुझे इसका कारण बताओ।

**मातलि बोले**—राजन्! नारकी पुरुषोंके अधर्ममात्रसे एक ही क्षणमें भूतोंके द्वारा नूतन शरीरका निर्माण हो जाता है। इसी प्रकार एकमात्र धर्मसे ही देवत्वकी प्राप्ति करानेवाले दिव्य शरीरकी तत्काल उत्पत्ति हो जाती है। उसका आविर्भाव भूतोंके सारतत्त्वसे होता है। कर्मोंके मेलसे जो शरीर उत्पन्न होता है, उसे रूपके परिमाणसे चार प्रकारका समझना चाहिये। [उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—ये ही चार प्रकारके शरीर हैं।] स्थावरोंको उद्भिज्ज कहते हैं। उन्हें तृण, गुल्म और लता आदिके रूपमें जानना चाहिये। कृमि, कीट और पतङ्ग आदि प्राणी स्वेदज कहलाते हैं। समस्त पक्षी, नाके और मछली आदि जीव अण्डज हैं। मनुष्यों और चौपायोंको जरायुज जानना चाहिये।

भूमिके पानीसे सींचे जानेपर बोये हुए अन्नमें उसकी गर्मी चली जाती है। फिर वायुसे संयुक्त होनेपर क्षेत्रमें बीज जमने लगता है। पहले तपे हुए बीज जब पुनः जलसे सींचे जाते हैं, तब गर्मीके कारण उनमें मृदुता आ जाती है; फिर वे जड़के रूपमें बदल जाते हैं। उस मूलसे अङ्कुरकी उत्पत्ति होती है। अङ्कुरसे पत्ते निकलते हैं, पत्तेसे तना, तनेसे काण्ड, काण्डसे प्रभव, प्रभवसे दूध और दूधसे तण्डुल उत्पन्न होता है। तण्डुलके पक जानेपर अनाजकी खेती तैयार हुई समझी जाती है। अनाजोंमें शालि (अगहनी धान)से लेकर जौतक दस अन्न श्रेष्ठ माने गये हैं। उनमें फलकी प्रधानता होती है। शेष अन्न क्षुद्र बताये गये हैं। भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य, चोष्य और खाद्य—ये अन्नके छः भेद हैं तथा मधुर आदि छः प्रकारके रस हैं। देहधारी उस अन्नको पिण्डके समान कौर या ग्रास बनाकर खाते हैं। वह अन्न शरीरके भीतर उदरमें पहुँचकर समस्त प्राणोंको क्रमशः स्थिर करता है। खाये हुए अपक्व भोजनको वायु दो भागोंमें बाँट देती है। अन्नके भीतर प्रवेश करके उसे पचाती और पृथक्-पृथक् गुणोंसे युक्त करती है। अग्निके ऊपर जल और जलके ऊपर अन्नको स्थापित करके प्राण स्वयं जलके नीचे स्थित हो धीरे-धीरे जठराग्निको प्रज्वलित करता है। वायुसे उद्दीप्त की हुई अग्नि जलको अधिक गर्म कर देती है। उसकी गर्मीके कारण अन्न सब ओरसे भलीभाँति पच जाता है। पचा हुआ अन्न कीट और रस—इन दो भागोंमें विभक्त होता है। इनमें कीट मलरूपसे बारह छिद्रोंद्वारा शरीरके बाहर निकलता है। दो कान, दो नेत्र, दो नासा-छिद्र, जिह्वा, दाँत, ओठ, लिङ्ग, गुदा और रोमकूप—ये ही मल निकलनेके बारह मार्ग हैं। इनके द्वारा कफ, पसीने और मल-मूत्र आदिके रूपमें शरीरका मैल निकलता है। हृदयकमलमें शरीरकी सब नाड़ियाँ आबद्ध हैं। उनके मुखमें प्राण अन्नका सूक्ष्म रस डाला करता है। वह बारम्बार उस रससे नाड़ियोंको भरता रहता है तथा रससे भरी हुई नाड़ियाँ सम्पूर्ण देहको तृप्त करती रहती हैं।

नाड़ियोंके मध्यमें स्थित हुआ रस शरीरकी गर्मीसे पकने लगता है। उस रसके जब दो पाक हो जाते हैं, तब उससे त्वचा, मांस, हड्डी, मज्जा, मेद और रुधिर आदि उत्पन्न होते हैं। रक्तसे रोम और मांस, मांससे केश और स्नायु, स्नायुसे मज्जा और हड्डी तथा मज्जा और हड्डीसे वसाकी उत्पत्ति होती है। मज्जासे शरीरकी उत्पत्तिका कारणभूत वीर्य बनता है। इस प्रकार अन्नके बारह परिणाम बताये गये हैं।* जब ऋतुकालमें दोषरहित वीर्य स्त्रीकी योनिमें स्थित होता है, उस समय वह वायुसे प्रेरित हो रजके साथ मिलकर एक हो जाता है। वीर्य-स्थापनके समय कारण-शरीरयुक्त जीव अपने कर्मोंसे प्रेरित होकर योनिमें प्रवेश करता है।

वीर्य और रज दोनों एकत्र होकर एक ही दिनमें कललके आकारमें परिणत हो जाते हैं, फिर पाँच रातमें उनका बुद्बुद बन जाता है। तत्पश्चात् एक महीनेमें ग्रीवा, मस्तक, कंधे, रीढ़की हड्डी तथा उदर—ये पाँच अङ्ग उत्पन्न होते हैं; फिर दो महीनेमें हाथ, पैर, पसली, कमर और पूरा शरीर—ये सभी क्रमशः सम्पन्न होते हैं। तीन महीने बीतते-बीतते सैकड़ों अङ्कुरसंधियाँ प्रकट हो

* अन्नके बारह परिणाम ये हैं—पाक, रस, मल, रक्त, रोम, मांस, केश, स्नायु, मज्जा, हड्डी, वसा और वीर्य।

जाती हैं। चार महीनोंमें क्रमशः अँगुली आदि अवयव भी उत्पन्न हो जाते हैं। पाँच महीनोंमें मुँह, नाक और कान तैयार हो जाते हैं; छः महीनोंके भीतर दाँतोंके मसूड़े, जिह्वा तथा कानोंके छिद्र प्रकट होते हैं। सात महीनोंमें गुदा, लिङ्ग, अण्डकोष, उपस्थ तथा शरीरकी सन्धियाँ प्रकट होती हैं। आठ मास बीतते-बीतते शरीरका प्रत्येक अवयव, केशोंसहित पूरा मस्तक तथा अङ्गोंकी पृथक्-पृथक् आकृतियाँ स्पष्ट हो जाती हैं।

माताके आहारसे जो छः प्रकारका रस मिलता है, उसीके बलसे गर्भस्थ बालककी प्रतिदिन पुष्टि होती है। नाभिमें जो नाल बँधा होता है, उसीके द्वारा बालकको रसकी प्राप्ति होती रहती है। तदनन्तर शरीरका पूर्ण विकास हो जानेपर जीवको स्मरण-शक्ति प्राप्त होती है तथा वह दुःख-सुखका अनुभव करने लगता है। उसे पूर्वजन्मके किये हुए कर्मोंका, यहाँतक कि निद्रा और शयन आदिका भी स्मरण हो आता है। वह सोचने लगता है—'मैंने अबतक हजारों योनियोंमें अनेकों बार चक्कर लगाया। इस समय अभी-अभी जन्म ले रहा हूँ, मुझे पूर्वजन्मोंकी स्मृति हो आयी है; अतः इस जन्ममें मैं वह कल्याणकारी कार्य करूँगा, जिससे मुझे फिर गर्भमें न आना पड़े। मैं यहाँसे निकलनेपर संसार-बन्धनकी निवृत्ति करनेवाले उत्तम ज्ञानको प्राप्त करनेका प्रयत्न करूँगा।'

जीव गर्भवासके महान् दुःखसे पीड़ित हो कर्मवश माताके उदरमें पड़ा-पड़ा अपने मोक्षका उपाय सोचता रहता है। जैसे कोई पर्वतकी गुफामें बंद हो जानेपर बड़े दुःखसे समय बिताता है, उसी प्रकार देहधारी जीव जरायु (जेर) के बन्धनमें बँधकर बहुत दुःखी होता और बड़े कष्टसे उसमें रह पाता है। जैसे समुद्रमें गिरा हुआ मनुष्य दुःखसे छटपटाने लगता है, वैसे ही गर्भके जलसे अभिषिक्त जीव अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। जिस प्रकार किसीको लोहेके घड़ेमें बंद करके आगसे पकाया जाय, उसी प्रकार गर्भरूपी कुम्भमें डाला हुआ जीव जठराग्निसे पकाया जाता है। आगमें तपाकर लाल-लाल की हुई बहुत-सी सूइयोंसे निरन्तर शरीरको छेदनेपर जितना दुःख होता है, उससे आठगुना अधिक कष्ट गर्भमें होता है। गर्भवाससे बढ़कर कष्ट कहीं नहीं होता। देहधारियोंके लिये गर्भमें रहना इतना भयंकर कष्ट है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। इस प्रकार प्राणियोंके गर्भजनित दुःखका वर्णन किया गया। स्थावर और जङ्गम—सभी प्राणियोंको अपने-अपने गर्भके अनुरूप कष्ट होता है।

जीवको जन्मके समय गर्भवासकी अपेक्षा करोड़-गुनी अधिक पीड़ा होती है। जन्म लेते समय वह मूर्च्छित हो जाता है। उस समय उसका शरीर हड्डियोंसे युक्त गोल आकारका होता है। स्नायुबन्धनसे बँधा रहता है। रक्त, मांस और वसासे व्याप्त होता है। मल और मूत्र आदि अपवित्र वस्तुएँ उसमें जमा रहती हैं। केश, रोम और नखोंसे युक्त तथा रोगका आश्रय होता है। मनुष्यका यह शरीर जरा और शोकसे परिपूर्ण तथा कालके अग्निमय मुखमें स्थित है। इसपर काम और क्रोधके आक्रमण होते रहते हैं। यह भोगकी तृष्णासे आतुर, विवेकशून्य और रागद्वेषके वशीभूत होता है। इस देहमें तीन सौ साठ हड्डियाँ तथा पाँच सौ मांस-पेशियाँ हैं, ऐसा समझना चाहिये। यह सब ओरसे साढ़े तीन करोड़ रोमोंद्वारा व्याप्त है तथा स्थूल-सूक्ष्म एवं दृश्य-अदृश्यरूपसे उतनी ही नाड़ियाँ भी इसके भीतर फैली हुई हैं। उन्हींके द्वारा भीतरका अपवित्र मल पसीने आदिके रूपमें निकलता रहता है। शरीरमें बत्तीस दाँत और बीस नख होते हैं। देहके अंदर पित्त एक कुडव[1] और कफ आधा आढक[2] होता है। वसा तीन पल[3], कलल पंद्रह पल, वात अर्बुद पल, मेद दस पल, महारक्त तीन पल, मज्जा उससे चौगुनी (बारह पल), वीर्य आधा कुडव, बल चौथाई कुडव, मांस-पिण्ड

---

१—आयुर्वेदके अनुसार ३२ तोले (६ छटाक २ तोले) का एक वजन। २—चार सेरके लगभगका एक तौल। ३—आयुर्वेदके अनुसार ८ तोलेका १ पल होता है। अन्यत्र ४ तोलेका एक पल माना गया है।

हजार पल तथा रक्त सौ पल होता है और मूत्रका कोई नियत माप नहीं है।

राजन्! आत्मा परम शुद्ध है और उसका यह देहरूपी घर, जो कर्मोंके बन्धनसे तैयार किया गया है, नितान्त अशुद्ध है। इस बातको सदा ही याद रखना चाहिये। वीर्य और रजका संयोग होनेपर ही किसी भी योनिमें देहकी उत्पत्ति होती है तथा यह हमेशा पेशाब और पाखानेसे भरा रहता है; इसलिये इसे अपवित्र माना गया है। जैसे घड़ा बाहरसे चिकना होनेपर भी यदि विष्ठासे भरा हो तो वह अपवित्र ही समझा जाता है, उसी प्रकार यह देह ऊपरसे पञ्चभूतोंद्वारा शुद्ध किया जानेपर भी भीतरकी गंदगीके कारण अपवित्र ही माना गया है। जिसमें पहुँचकर पञ्चगव्य और हविष्य आदि अत्यन्त पवित्र पदार्थ भी तत्काल अपवित्र हो जाते हैं, उस शरीरसे बढ़कर अशुद्ध दूसरा क्या हो सकता है।* जिसके द्वारोंसे निरन्तर क्षण-क्षणमें कफ-मूत्र आदि अपवित्र वस्तुएँ बहती रहती हैं, उस अत्यन्त अपावन शरीरको कैसे शुद्ध किया जा सकता है।† शरीरके छिद्रोंका स्पर्शमात्र कर लेनेपर हाथको जलसे शुद्ध किया जाता है, तथापि मनुष्य अशुद्ध ही बने रहते हैं; किन्तु फिर भी उन्हें देहसे वैराग्य नहीं होता।‡ जैसे जन्मसे ही काले रंगकी ऊन धोनेसे कभी सफेद नहीं होती, उसी प्रकार यह शरीर धोनेसे भी पवित्र नहीं हो सकता। मनुष्य अपने शरीरके मलको अपनी आँखों देखता है, उसकी दुर्गन्धका अनुभव करता है और उससे बचनेके लिये नाक भी दबाता है; किन्तु फिर भी उसके मनमें वैराग्य नहीं होता। अहो! मोहका कैसा माहात्म्य है, जिससे सारा जगत् मोहित हो रहा है। अपने शरीरके दोषोंको देखकर और सूँघकर भी वह उससे विरक्त नहीं होता। जो मनुष्य अपने देहकी अपवित्र गन्धसे घृणा करता है, उसे वैराग्यके लिये और क्या उपदेश दिया जा सकता है।§ सारा संसार पवित्र है, केवल शरीर ही अत्यन्त अपवित्र है; क्योंकि जन्मकालमें इस शरीरके अवयवोंका स्पर्श करनेसे शुद्ध मनुष्य भी अशुद्ध हो जाता है। अपवित्र वस्तुकी गन्ध और लेपको दूर करनेके लिये शरीरको नहलाने-धोने आदिका विधान है। गन्ध और लेपकी निवृत्ति हो जानेके पश्चात् भावशुद्धिसे वस्तुतः मनुष्य शुद्ध होता है।

जिसका भीतरी भाव दूषित है, वह यदि आगमें प्रवेश कर जाय तो भी न तो उसे स्वर्ग मिलता है और न मोक्षकी ही प्राप्ति होती है; उसे सदा देहके बन्धनमें ही जकड़े रहना पड़ता है। भावकी शुद्धि ही सबसे बड़ी पवित्रता है और वही प्रत्येक कार्यमें श्रेष्ठताका हेतु है। पत्नी और पुत्री—दोनोंका ही आलिङ्गन किया जाता है; किन्तु पत्नीके आलिङ्गनमें दूसरा भाव होता है और पुत्रीके आलिङ्गनमें दूसरा। भिन्न-भिन्न वस्तुओंके प्रति मनकी वृत्तिमें भी भेद हो जाता है। नारी अपने पतिका और भावसे चिन्तन करती है और पुत्रका और भावसे।× तुम यत्नपूर्वक अपने मनको शुद्ध करो, दूसरी-दूसरी बाह्य शुद्धियोंसे क्या लेना है। जो भावसे पवित्र है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, वही स्वर्ग तथा मोक्षको प्राप्त करता है। उत्तम वैराग्यरूपी मिट्टी तथा

---

*यं प्राप्यातिपवित्राणि पञ्चगव्यं हवींषि च। अशुचित्वं क्षणाद्यान्ति कोऽन्योऽस्मादशुचिस्ततः॥ (६६। ६९)

† स्रोतांसि यस्य सततं प्रवहन्ति क्षणे क्षणे। कफमूत्राद्यत्यशुचिः स देहः शुध्यते कथम्॥ (६६। ७३)

‡ स्पृष्ट्वा च देहस्रोतांसि मृदादिभिः शोध्यते करः। तथाप्यशुचिभाजश्च न विरज्यन्ति ते नराः॥ (६६। ७५)

§ जिघ्रन्नपि स्वदुर्गन्धं पश्यन्नपि मलं स्वकम्। न विरज्येत लोकोऽयं पीडयन्नपि नासिकाम्॥
अहो मोहस्य माहात्म्यं येन व्यामोहितं जगत्। जिघ्रन् पश्यन् स्वकान् दोषान् कायस्य न विरज्यते॥
स्वदेहाशुचिगन्धेन यो विरज्येत मानवः। विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते॥ (६६। ७८—८०)

× अन्तर्भावप्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम्। न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्बन्धनं परम्॥
भावशुद्धिः परं शौचं प्रमाणं सर्वकर्मसु। अन्यथाऽऽलिङ्ग्यते कान्ता भावेन दुहितान्यथा॥
मनसो विद्यते वृत्तिर्भिन्नेष्वपि च वस्तुषु। अन्यथैव ततः पुत्रं भावयत्यन्यथा पतिम्॥ (६६। ८५—८७)

ज्ञानरूप निर्मल जलसे माँजने-धोनेपर पुरुषके अविद्या तथा रागरूपी मल-मूत्रका लेप नष्ट होता है। इस प्रकार इस शरीरको स्वभावतः अपवित्र माना गया है। केलेके वृक्षकी भाँति यह सर्वथा सारहीन है; अध्यात्म-ज्ञान ही इसका सार है। देहके दोषको जानकर जिसे इससे वैराग्य हो जाता है, वह विद्वान् संसार-सागरसे पार हो जाता है। इस प्रकार महान् कष्टदायक जन्मकालीन दुःखका वर्णन किया गया।

गर्भमें रहते समय जीवको जो विवेक-बुद्धि प्राप्त होती है, वह उसके अज्ञान-दोषसे या नाना प्रकारके कर्मोंकी प्रेरणासे जन्म लेनेके पश्चात् नष्ट हो जाती है। योनि-यन्त्रसे पीड़ित होनेपर जब वह दुःखसे मूर्च्छित हो जाता है और बाहर निकलकर बाहरी हवाके सम्पर्कमें आता है, उस समय उसके चित्तपर महान् मोह छा जाता है। मोहग्रस्त होनेपर उसकी स्मरणशक्तिका भी शीघ्र ही नाश हो जाता है; स्मृति नष्ट होनेसे पूर्वकर्मोंकी वासनाके कारण उस जन्ममें भी ममता और आसक्ति बढ़ जाती है। फिर संसारमें आसक्त होकर मूढ जीव न आत्माको जान पाता है न परमात्माको, अपितु निषिद्ध कर्ममें प्रवृत्त हो जाता है।* बाल्यकालमें इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ पूर्णतया व्यक्त नहीं होतीं; इसलिये बालक महान्-से-महान् दुःखको सहन करता है, किन्तु इच्छा होते हुए भी न तो उसे कह सकता है और न उसका कोई प्रतिकार ही कर पाता है। शैशवकालीन रोगसे उसको भारी कष्ट भोगना पड़ता है। भूख-प्यासकी पीड़ासे उसके सारे शरीरमें दर्द होता है। बालक मोहवश मल-मूत्रको भी खानेके लिये मुँहमें डाल लेता है। कुमारावस्थामें कान बिंधानेसे कष्ट होता है। समय-समयपर उसे माता-पिताकी मार भी सहनी पड़ती है। अक्षर लिखने-पढ़नेके समय गुरुका शासन दुःखद जान पड़ता है।

जवानीमें भी इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ कामना और रागकी प्रेरणासे इधर-उधर विषयोंमें भटकती हैं; फिर मनुष्य रोगोंसे आक्रान्त हो जाता है। अतः युवावस्थामें भी सुख कहाँ है। युवकको ईर्ष्या और मोहके कारण महान् दुःखका सामना करना पड़ता है। कामाग्निसे संतप्त रहनेके कारण उसे रातभर नींद नहीं आती। दिनमें भी अर्थोपार्जनकी चिन्तासे सुख कहाँ मिलता है†। कीड़ोंसे पीड़ित कोढ़ी मनुष्यको अपनी कोढ़ खुजलानेमें जो सुख

---

* चित्तं शोधय यत्नेन किमन्यैर्बाह्यशोधनैः। भावतः शुचिः शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्षं च विन्दति॥
ज्ञानामलाम्भसा पुंसः सद्वैराग्यमृदा पुनः। अविद्यारागविण्मूत्रलेपो नश्येद्विशोधनैः॥
एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचि विदुः। अध्यात्मसारनिस्सारं कदलीसारसंनिभम्॥
ज्ञात्वैव देहदोषं यः प्राज्ञः स शिथिलो भवेत्। सोऽतिक्रामति संसारं ..... ॥
एवमेतन्महाकष्टं जन्मदुःखं प्रकीर्त्तितम्। पुंसामज्ञानदोषेण नानाकर्मवशेन च॥
गर्भस्थस्य मतिर्याऽऽसीत् संजातस्य प्रणश्यति। सम्मूर्च्छितस्य दुःखेन योनियन्त्रप्रपीडनात्॥
बाह्येन वायुना तस्य मोहसङ्गेन देहिनाम्। स्पृष्टमात्रेण घोरेण ..... ॥
..... महामोहः प्रजायते। सम्मूढस्य स्मृतिभ्रंशः शीघ्रं संजायते पुनः॥
स्मृतिभ्रंशात्तस्य पूर्वकर्मज्ञानसमुद्भवा। रतिः संजायते पूर्णा जन्तोस्तत्रैव जन्मनि॥
रक्तो मूढश्च लोकोऽयमकार्ये सम्प्रवर्तते। न चात्मानं विजानाति न परं न च दैवतम्॥
(६६। ९०—९९)

† अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःखं महत्पुनः। इच्छन्नपि न शक्नोति वक्तुं कर्तुं च संस्कृतम्॥
भुङ्क्ते तेन महद्दुःखं बाल्येन व्याधिनान्यथा। बाल्यरोगैश्च विविधैः पीडा ..... ॥
तृड्बुभुक्षापरीताङ्गः क्वचिद्गच्छति तिष्ठति। विण्मूत्रभक्षणाद्यं च मोहाद्बालः समाचरेत्॥
कौमारः कर्णवेधेन मात्रापित्रोश्च ताडनम्। अक्षराध्ययनाद्यैश्च दुःखं स्याद्गुरुशासनम्॥
अन्यत्रेन्द्रियवृत्तिश्च कामरागप्रयोजनात्। रोगावृत्तस्य सततं कुतः सौख्यं च यौवने॥
ईर्ष्यया सुमहद्दुःखं मोहाद्दुःखं सुजायते। तत्र स्यात्कुपितस्यैव रागे दुःखाय केवलम्॥
रात्रौ न कुरुते निद्रां कामाग्निपरिखेदितः। दिवा वापि कुतः सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया॥
(६६। १०४—११०)

प्रतीत होता है, वही स्त्रियोंके साथ सम्भोग करनेमें भी है।* जवानीके बाद जब वृद्धावस्था मनुष्यको दबा लेती है, तब असमर्थ होनेके कारण उसे पत्नी-पुत्र आदि बन्धु-बान्धव तथा दुराचारी भृत्य भी अपमानित कर बैठते हैं। बुढ़ापेसे आक्रान्त होनेपर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इनमेंसे किसीका भी साधन नहीं कर सकता; इसलिये युवावस्थामें ही धर्मका आचरण कर लेना चाहिये†।

प्रारब्ध-कर्मका क्षय होनेपर जो जीवोंका भिन्न-भिन्न देहोंसे वियोग होता है, उसीको मरण कहा गया है। वास्तवमें जीवका नाश नहीं होता। मृत्युके समय जब शरीरके मर्मस्थानोंका उच्छेद होने लगता है और जीवपर महान् मोह छा जाता है, उस समय उसको जो दुःख होता है, उसकी कहीं भी तुलना नहीं है। वह अत्यन्त दुःखी होकर 'हाय बाप! हाय मैया! हा प्रिये!' आदिकी पुकार मचाता हुआ बारम्बार विलाप करता है। जैसे साँप मेढकको निगल जाता है, उसी प्रकार वह सारे संसारको निगलनेवाली मृत्युका ग्रास बना हुआ है। भाई-बन्धुओंसे उसका साथ छूट जाता है; प्रियजन उसे घेरकर बैठे रहते हैं। वह गरम-गरम लम्बी साँसें खींचता है, जिससे उसका मुँह सूख जाता है। रह-रहकर उसे मूर्च्छा आ जाती है। बेहोशीकी हालतमें वह जोर-जोरसे इधर-उधर हाथ-पैर पटकने लगता है। अपने काबूमें नहीं रहता। लाज छूट जाती है और वह मल-मूत्रमें सना पड़ा रहता है। उसके कण्ठ, ओंठ और तालु सूख जाते हैं। वह बार-बार पानी माँगता है। कभी धनके विषयमें चिन्ता करने लगता है—'हाय! मेरे मरनेके बाद यह किसके हाथ लगेगा?' यमदूत उसे कालपाशमें बाँधकर घसीट ले जाते हैं। उसके कण्ठमें घरघर आवाज होने लगती है; दूतोंके देखते-देखते उसकी मृत्यु होती है। जीव एक देहसे दूसरी देहमें जाता है। सभी जीव सबेरे मल-मूत्रकी हाजतका कष्ट भोगते हैं; मध्याह्नकालमें उन्हें भूख-प्यास सताती है और रात्रिमें वे काम-वासना तथा नींदके कारण क्लेश उठाते हैं [इस प्रकार संसारका सारा जीवन ही कष्टमय है]।

पहले तो धनको पैदा करनेमें कष्ट होता है, फिर पैदा किये हुए धनकी रखवालीमें क्लेश उठाना पड़ता है; इसके बाद यदि कहीं वह नष्ट हो जाय तो दुःख और खर्च हो जाय तो भी दुःख होता है। भला, धनमें सुख है ही कहाँ। जैसे देहधारी प्राणियोंको सदा मृत्युसे भय होता है; उसी प्रकार धनवानोंको चोर, पानी, आग, कुटुम्बियों तथा राजासे भी हमेशा डर बना रहता है। जैसे मांसको आकाशमें पक्षी, पृथ्वीपर हिंसक जीव और जलमें मत्स्य आदि जन्तु भक्षण करते हैं, उसी प्रकार सर्वत्र धनवान् पुरुषको लोग नोंचते-खसोटते रहते हैं। सम्पत्तिमें धन सबको मोहित करता—उन्मत्त बना देता है, विपत्तिमें सन्ताप पहुँचाता है और उपार्जनके समय दुःखका अनुभव कराता है; फिर धनको कैसे सुखदायक कहा जाय।‡ हेमन्त और शिशिरमें जाड़ेका कष्ट रहता है। गर्मीमें दुस्सह तापसे संतप्त होना पड़ता है और वर्षाकालमें अतिवृष्टि तथा अल्पवृष्टिसे दुःख होता है; इस प्रकार विचार करनेपर कालमें भी सुख कहाँ है।

---

* कृमिभिः पीड्यमानस्य कुष्ठिनः पामरस्य च। कण्डूयनाभितापेन यत्सुखं स्त्रीषु तद्विदुः॥ (६६। ११२)

† धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं न जरया पुनः। शक्तः साधयितुं तस्माद् युवा धर्मं समाचरेत्॥ (६६। ११७)

‡ अर्थस्योपार्जने दुःखं दुःखमर्जितरक्षणे। नाशे दुःखं व्यये दुःखमर्थस्यैव कुतः सुखम्॥
चौरेभ्यः सलिलेभ्योऽग्नेः स्वजनात् पार्थिवादपि। भयमर्थवतां नित्यं मृत्योर्देहभृतामिव॥
खे यथा पक्षिभिर्मांसं भुज्यते श्वापदैर्भुवि। जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान्॥
विमोहयन्ति सम्पत्सु तापयन्ति विपत्सु च। वेदयन्त्यर्जने दुःखं कथमर्थाः सुखावहाः॥
(६६। १४८—१५१)

यही दशा कुटुम्बकी भी है। पहले तो विवाहमें विस्तारपूर्वक व्यय होनेपर दुःख होता है; फिर पत्नी जब गर्भ धारण करती है, तब उसे उसका भार ढोनेमें कष्टका अनुभव होता है। प्रसवकालमें अत्यन्त पीड़ा भोगनी पड़ती है तथा फिर सन्तान होनेपर उसके मल-मूत्र उठाने आदिमें क्लेश होता है। इसके सिवा हाय ! मेरी स्त्री भाग गयी, मेरी पत्नीकी सन्तान अभी बहुत छोटी है, वह बेचारी क्या कर सकेगी ? कन्याके विवाहका समय आ रहा है, उसके लिये कैसा वर मिलेगा ?—इत्यादि चिन्ताओंके भारसे दबे हुए कुटुम्बीजनोंको कैसे सुख मिल सकता है।

राज्यमें भी सुख कहाँ है। सदा सन्धि-विग्रहकी चिन्ता लगी रहती है। जहाँ पुत्रसे भी भय प्राप्त होता है, वहाँ सुख कैसा। एक द्रव्यकी अभिलाषा रखनेके कारण आपसमें लड़नेवाले कुत्तोंकी तरह प्रायः सभी देहधारियोंको अपने सजातियोंसे भय बना रहता है। कोई भी राजा राज्य छोड़कर वनमें प्रवेश किये बिना इस भूतलपर विख्यात न हो सका। जो सारे सुखोंका परित्याग कर देता है, वही निर्भय होता है। राजन् ! पहननेके लिये दो वस्त्र हों और भोजनके लिये सेर भर अन्न—इतनेमें ही सुख है। मान-सम्मान, छत्र-चँवर और राज्यसिंहासन तो केवल दुःख देनेवाले हैं। समस्त भूमण्डलका राजा ही क्यों न हो, एक खाटके नापकी भूमि ही उसके उपभोगमें आती है। जलसे भरे हजारों घड़ोंद्वारा अभिषेक कराना क्लेश और श्रमको ही बढ़ाना है। [स्नान तो एक घड़ेसे भी हो सकता है।] प्रातःकाल पुरवासियोंके साथ शहनाईका मधुर शब्द सुनना अपने राजत्वका अभिमानमात्र है। केवल यह कहकर सन्तोष लाभ करना है कि मेरे महलमें सदा शहनाई बजती है। समस्त आभूषण भारमात्र हैं, सब प्रकारके अङ्गराग मैलके समान हैं, सारे गीत प्रलापमात्र हैं और नृत्य पागलोंकी-सी चेष्टा है। इस प्रकार विचार करके देखा जाय, तो राजोचित भोगोंसे भी क्या सुख मिलता है। राजाओंका यदि किसीके साथ युद्ध छिड़ जाय तो एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे वे सदा चिन्तामग्न रहते हैं। नहुष आदि बड़े-बड़े सम्राट् भी राज्य-लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त होनेके कारण स्वर्गमें जाकर भी वहाँसे भ्रष्ट हो गये। भला, लक्ष्मीसे किसको सुख मिलता है।*

स्वर्गमें भी सुख कहाँ है। देवताओंमें भी एक देवताकी सम्पत्ति दूसरेकी अपेक्षा बढ़ी-चढ़ी तो होती ही है, वे अपनेसे ऊपरकी श्रेणीवालोंके बढ़े हुए वैभवको देख-देखकर जलते हैं। मनुष्य तो स्वर्गमें जाकर अपना मूल गँवाते हुए ही पुण्यफलका भी उपभोग करते हैं। जैसे जड़ कट जानेपर वृक्ष विवश होकर धरतीपर गिर जाता है, उसी प्रकार पुण्य क्षीण होनेपर मनुष्य भी स्वर्गसे नीचे आ जाते हैं। इस प्रकार विचारसे देवताओंके स्वर्गलोकमें भी सुख नहीं जान पड़ता। स्वर्गसे लौटनेपर देहधारियोंको मन, वाणी और शरीरसे किये हुए नाना प्रकारके भयंकर पाप भोगने पड़ते हैं। उस समय नरककी आगमें उन्हें बड़े भारी कष्ट और दुःखका सामना करना पड़ता है। जो जीव स्थावर-योनिमें पड़े हुए हैं, उन्हें भी सब प्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं। कभी उन्हें कुल्हाड़ीके तीव्र प्रहारसे काटा जाता है तो कभी उनकी छाल काटी जाती है और कभी उनकी डालियों, पत्तों और फलोंको भी गिराया जाता है; कभी प्रचण्ड आँधीसे वे अपने-आप उखड़कर गिर जाते हैं तो

---

*एवं वस्त्रयुगं राजन् प्रस्थमात्रं तु भोजनम्। मानं छत्रासनं चैव सुखदुःखाय केवलम्॥
सार्वभौमोऽपि भवति खट्वामात्रपरिग्रहः। उदकुम्भसहस्रेभ्यः क्लेशायासप्रविस्तरः॥
प्रत्यूषे तूर्यनिर्घोषः समं पुरनिवासिभिः। राज्येऽभिमानमात्रं हि ममेदं वाद्यते गृहे॥
सर्वमाभरणं भारः सर्वमालेपनं मलम्। सर्वं संलपितं गीतं नृत्तमुन्मत्तचेष्टितम्॥
इत्येवं राज्यसम्भोगैः कुतः सौख्यं विचारतः। नृपाणां विग्रहे चिन्ता वान्योन्यविजिगीषया॥
प्रायेण श्रीमदालेपान्नहुषाद्या महानृपाः। स्वर्गं प्राप्ता निपतिताः क्व श्रिया विन्दते सुखम्॥
(६६। १७५—१८०)

कभी हाथी या दूसरे जन्तु उन्हें समूल नष्ट कर डालते हैं। कभी वे दावानलकी आँचमें झुलसते हैं तो कभी पाला पड़नेसे कष्ट भोगते हैं। पशु-योनिमें पड़े हुए जीवोंकी कसाइयोंद्वारा हत्या होती है; उन्हें डंडोंसे पीटा जाता है, नाक छेदकर त्रास दिया जाता है, चाबुकोंसे मारा जाता है, बेत या काठ आदिकी बेड़ियोंसे अथवा अंकुशके द्वारा उनके शरीरको बन्धनमें डाला जाता है तथा बलपूर्वक मनमाने स्थानमें ले जाया जाता और बाँधा जाता है तथा उन्हें अपने टोलोंसे अलग किया जाता है। इस प्रकार पशुओंके शरीरको भी अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं।

देवताओंसे लेकर सम्पूर्ण चराचर जगत् पूर्वोक्त दुःखोंसे ग्रस्त है; इसलिये विद्वान् पुरुषको सबका त्याग कर देना चाहिये। जैसे मनुष्य इस कंधेका भार उस कंधेपर लेकर अपनेको विश्राम मिला समझता है, उसी प्रकार संसारके सब लोग दुःखसे ही दुःखको शान्त करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। अतः सबको दुःखसे व्याकुल जानकर विचारवान् पुरुषको परम निर्वेद धारण करना चाहिये, निर्वेदसे परम वैराग्य होता है और उससे ज्ञान। ज्ञानसे परमात्माको जानकर मनुष्य कल्याणमयी मुक्तिको प्राप्त होता है। फिर वह समस्त दुःखोंसे मुक्त होकर सदा सुखी, सर्वज्ञ और कृतार्थ हो जाता है। ऐसे ही पुरुषको मुक्त कहते हैं। राजन्! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने सब बातें तुम्हें बता दीं।

## पापों और पुण्योंके फलोंका वर्णन

**ययाति बोले**—मातले! मर्त्यलोकके मानव बड़े भयानक पाप करते हैं; उन्हें उन कर्मोंका क्या फल मिलता है? इस समय यही बात बताओ।

**मातलिने कहा**—राजन्! जो लोग वेदोंकी निन्दा और वेदोक्त सदाचारकी गर्हणा करते हैं तथा जो अपने कुलके आचारका त्याग करके दूसरोंका आचार ग्रहण करते हैं, जो सब साधुओंको पीड़ा देते हैं, वे सब पातकी हैं। तत्त्ववेत्ता पुरुषोंने इन दुष्कर्मोंको पातक नाम दिया है। जो माता-पिताकी निन्दा करते, बहिनको सदा मारते और उसकी गर्हणा करते हैं, उनका यह कार्य निश्चय ही पातक है। जो श्राद्धकाल आनेपर भी काम, क्रोध अथवा भयसे, पाँच कोसके भीतर रहनेवाले दामाद, भांजे तथा बहिनको नहीं बुलाता और सदा दूसरोंको ही भोजन कराता है, उसके श्राद्धमें पितर अन्न ग्रहण नहीं करते, उसमें विघ्न पड़ जाता है। दामाद आदिकी उपेक्षा श्राद्धकर्ता पुरुषके लिये पितृहत्याके समान है, उसे बहुत बड़ा पातक माना गया है। इसी प्रकार यदि दान देते समय बहुत-से ब्राह्मण आ जायँ तथा उनमेंसे एकको तो दान दिया जाय और दूसरोंको न दिया जाय तो यह दानके फलको नष्ट करनेवाला बहुत बड़ा पातक माना गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको उचित है कि वह प्रत्येक पुण्यपर्वके अवसरपर निर्धन ब्राह्मणकी पूजा करें तथा जहाँतक हो सके, उसे धनकी प्राप्ति करायें। श्राद्धके समय निमन्त्रित ब्राह्मणके अतिरिक्त यदि दूसरा कोई ब्राह्मण आ जाय तो उन दोनोंकी ही भोजन, वस्त्र, ताम्बूल और दक्षिणाके द्वारा पूजा करनी चाहिये; इससे श्राद्धकर्ताके पितरोंको बड़ा हर्ष होता है। यदि श्राद्धकर्ता धनहीन हो तो वह एककी ही पूजा कर सकता है। जो श्राद्धमें ब्राह्मणको भोजन कराकर आदरपूर्वक दक्षिणा नहीं देता, उसे गोहत्या आदिके समान पाप लगता है। महाराज! व्यतीपात और वैधृति योग आनेपर अथवा अमावास्या तिथिको या पिताकी क्षयाह-तिथि प्राप्त होनेपर अपराह्णकालमें ब्राह्मण आदि वर्णोंको अवश्य श्राद्ध करना चाहिये।

विज्ञ पुरुषको उचित है कि वह अपरिचित ब्राह्मणको श्राद्धमें निमन्त्रित न करे। अपरिचितोंमें भी यदि कोई वेद-वेदाङ्गोंका पारगामी विद्वान् हो तो उस ब्राह्मणको श्राद्धमें निमन्त्रित करना और दान देना उचित है। राजन्! निमन्त्रित ब्राह्मणका अपूर्व आतिथ्य-सत्कार करना चाहिये। जो पापी इसके विपरीत

आचरण करता है, उसे निश्चय ही नरकमें जाना पड़ता है। इसलिये दान, श्राद्ध तथा पर्वके अवसरपर ब्राह्मणको निमन्त्रित करना आवश्यक है। पहले ब्राह्मणकी भलीभाँति जाँच और परख कर लेनी चाहिये, उसके बाद उसे श्राद्ध और दानमें सम्मिलित करना उचित है। जो बिना ब्राह्मणके श्राद्ध करता है, उसके घरमें पितर भोजन नहीं करते, शाप देकर लौट जाते हैं। ब्राह्मणहीन श्राद्ध करनेसे मनुष्य महापापी होता है तथा ब्राह्मणघाती कहलाता है। राजन्! जो पितृकुलके आचारका परित्याग करके स्वेच्छानुसार बर्ताव करता है, उसे महापापी समझना चाहिये; वह सब धर्मोंसे बहिष्कृत है। जो पापी मनुष्य शिवकी परिचर्या छोड़कर शिवभक्तोंसे द्वेष रखते हैं तथा जो ब्राह्मणोंसे द्रोह करते हुए सदा भगवान् श्रीविष्णुकी निन्दा करते हैं, वे महापापी हैं, सदाचारकी निन्दा करनेवाले पुरुषोंकी गणना भी इसी श्रेणीमें है।

सर्वप्रथम उत्तम ज्ञानस्वरूप पुण्यमय भागवत पुराणकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् विष्णुपुराण, हरिवंश, मत्स्यपुराण और कूर्मपुराणका पूजन करना उचित है। जो पद्मपुराणकी पूजा करते हैं, उनके द्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी प्रत्यक्ष पूजा हो जाती है। जो श्रीभगवान्‌के ज्ञानस्वरूप पुराणकी पूजा किये बिना ही उसे पढ़ते और लिखते हैं, लोभमें आकर बेच देते हैं, अपवित्र स्थानमें मनमाने ढंगसे रख देते हैं तथा स्वयं अशुद्ध रहकर अशुद्ध स्थानमें पुराणकी कथा कहते और सुनते हैं, उनका यह सब कार्य गुरुनिन्दाके समान माना गया है। जो गुरुकी पूजा किये बिना ही उनसे शास्त्र श्रवण करना चाहता है, गुरुकी सेवा नहीं करता, उनकी आज्ञा भङ्ग करनेका विचार रखता है, उनकी बातका अभिनन्दन नहीं करता, अपितु प्रतिवाद कर देता है, गुरुके कार्यकी, करनेयोग्य होनेपर भी, उपेक्षा करता है तथा जो गुरुको रोगादिसे पीड़ित, असमर्थ, विदेशकी ओर प्रस्थित और शत्रुओंद्वारा अपमानित देखकर भी उनका साथ छोड़ देता है, वह पापी तबतक कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है, जबतक कि चौदह इन्द्रोंकी आयु पूरी नहीं हो जाती। जो स्त्री, पुत्र और मित्रोंकी अवहेलना करता है, उसके इस कार्यको भी गुरुनिन्दाके समान महान् पातक समझना चाहिये। ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला, शराबी, गुरुकी शय्यापर सोनेवाला तथा इनका सहयोगी—ये पाँच प्रकारके मनुष्य महापातकी माने गये हैं। जो क्रोध, द्वेष, भय अथवा लोभसे विशेषतः ब्राह्मणके मर्म आदिका उच्छेद करता है, दरिद्र भिक्षुक ब्राह्मणको द्वारपर बुलाकर पीछे कोरा जवाब दे देता है, जो विद्याके अभिमानमें आकर सभामें उदासीन भावसे बैठे हुए ब्राह्मणोंको भी निस्तेज कर देता है तथा जो मिथ्या गुणोंद्वारा अपनेको जबर्दस्ती ऊँचा सिद्ध करता है और गुरुको ही उपदेश करने लगता है—इन सबको ब्राह्मणघाती माना गया है।

जिनका शरीर भूख और प्याससे पीड़ित है, जो अन्न खाना चाहते हैं, उनके कार्यमें विघ्न खड़ा करनेवाला मनुष्य भी ब्राह्मणघाती ही है। जो चुगलखोर, सब लोगोंके दोष ढूँढ़नेमें तत्पर, सबको उद्वेगमें डालनेवाला और क्रूर है तथा जो देवताओं, ब्राह्मणों और गौओंके निमित्त पहलेकी दी हुई भूमिको हर लेता है, उसे ब्रह्मघाती कहते हैं। दूसरोंके द्वारा उपार्जित द्रव्यका और ब्राह्मणके धनका अपहरण भी ब्रह्महत्याके समान ही भारी पातक है। जो अग्निहोत्र तथा पञ्चयज्ञादि कर्मोंका परित्याग करके माता, पिता और गुरुका अनादर करता है, झूठी गवाही देता है, शिवभक्तोंकी बुराई और अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करता है, वनमें जाकर निरपराध प्राणियोंको मारता है तथा गोशाला, देवमन्दिर, गाँव और नगरमें आग लगाता है, उसके ये भयङ्कर पाप पूर्वोक्त पापोंके ही समान हैं।

दीनोंका सर्वस्व छीन लेना, परायी स्त्री, दूसरेके हाथी, घोड़े, गौ, पृथ्वी, चाँदी, रत्न, अनाज, रस, चन्दन, अरगजा, कपूर, कस्तूरी, मालपूआ और वस्त्रको चुरा लेना तथा परायी धरोहरको हड़प लेना—ये सब पाप सुवर्णकी चोरीके समान माने गये हैं। विवाह करनेयोग्य कन्याका योग्य वरके साथ विवाह न करना, पुत्र एवं मित्रकी भार्याओं और अपनी बहिनोंके साथ समागम

करना, कुमारी कन्याके साथ बलात्कार करना, अन्त्यज जातिकी स्त्रीका सेवन तथा सवर्णा स्त्रीके साथ सम्भोग—ये पाप गुरु-पत्नी-गमनके समान बताये गये हैं। जो ब्राह्मणको धन देनेकी प्रतिज्ञा करके न तो उसे देता है और न फिर उसको याद ही रखता है, उसका यह कार्य उपपातकोंकी श्रेणीमें रखा गया है। ब्राह्मणके धनका अपहरण, मर्यादाका उल्लङ्घन, अत्यन्त मान, अधिक क्रोध, दम्भ कृतघ्नता, अत्यन्त विषयासक्ति, कृपणता, शठता, मात्सर्य, परस्त्री-गमन और साध्वी कन्याको कलङ्कित करना; परिवित्ति[1], परिवेत्ता तथा उसकी पत्नी—इनसे सम्पर्क रखना, इन्हें कन्या देना अथवा इनका यज्ञ कराना; धनके अभावमें पुत्र, मित्र और पत्नीका परित्याग करना; बिना किसी कारणके ही स्त्रीको छोड़ देना, साधु और तपस्वियोंकी उपेक्षा करना; गौ, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री तथा शूद्रोंके प्राण लेना; शिवमन्दिर, वृक्ष और फुलवाड़ीको नष्ट करना; आश्रमवासियोंको थोड़ा-सा भी कष्ट पहुँचाना, भृत्यवर्गको दुःख देना; अन्न, वस्त्र और पशुओंकी चोरी करना; जिनसे माँगना उचित नहीं है, ऐसे लोगोंसे याचना करना; यज्ञ, बगीचा, पोखरा, स्त्री और सन्तानका विक्रय करना; तीर्थयात्रा, उपवास, व्रत और शुभ कर्मोंका फल बेचना, स्त्रियोंके धनसे जीविका चलाना, स्त्रीद्वारा उपार्जित अन्नसे जीवन-निर्वाह करना तथा किसीके छिपे हुए अधर्मको लोगोंके सामने खोलकर रख देना—इन सब पापोंमें जो लोग रचे-पचे रहते हैं, जो दूसरोंके दोष बताते, पराये छिद्रपर दृष्टि रखते, औरोंका धन हड़पना चाहते और परस्त्रियोंपर कुदृष्टि रखते हैं—इन सभी पापियोंको गोघातकके तुल्य समझना चाहिये।

जो मनुष्य झूठ बोलता, स्वामी, मित्र और गुरुसे द्रोह रखता, माया रचना और शठता करता है; जो स्त्री, पुत्र, मित्र, बालक, वृद्ध, दुर्बल मनुष्य, भृत्य, अतिथि और बन्धु-बान्धवोंको भूखे छोड़, अकेले भोजन कर लेता है; जो अपने तो खूब मिठाई उड़ाते और दूसरोंको अन्न भी नहीं देते, उन सबको पृथक्पाकी समझना चाहिये। वेदज्ञ पुरुषोंमें उनकी बड़ी निन्दा की गयी है। जो स्वयं ही नियम लेकर फिर उन्हें छोड़ देते हैं, जिन्होंने दूसरोंके साथ धोखा किया है, जो मदिरा पीनेवालोंसे संसर्ग रखते और घाव एवं रोगसे पीड़ित तथा भूख-प्याससे व्याकुल गौका यत्नपूर्वक पालन नहीं करते, वे गो-हत्यारे माने गये हैं; उन्हें नरककी यातना भोगनी पड़ती है। जो सब प्रकारके पापोंमें डूबे रहते; साधु, ब्राह्मण, गुरु और गौको मारते तथा सन्मार्गमें स्थित निर्दोष स्त्रीको पीटते हैं; जिनका सारा शरीर आलस्यसे व्याप्त रहता है, अतएव जो बार-बार सोया करते हैं, जो दुर्बल पशुओंको काममें लगाते, बलपूर्वक हाँकते, अधिक भार लादकर कष्ट देते और घायल होनेपर भी उन्हें जोतते रहते हैं, जो दुरात्मा मनुष्य बैलोंको बधिया करते हैं तथा गायके बछड़ोंको नाथते हैं, वे सभी महापापी हैं। उनके ये कार्य महापातकोंके तुल्य हैं।

जो भूख-प्यास और परिश्रमसे पीड़ित एवं आशा लगाकर घरपर आये हुए अतिथिका अनादर करते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो मूर्ख, अनाथ, विकल, दीन, बालक, वृद्ध और क्षुधातुर व्यक्तिपर दया नहीं करते, उन्हें नरकके समुद्रमें गिरना पड़ता है। जो नीतिशास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके प्रजासे मनमाना कर वसूल करते हैं और अकारण ही दण्ड देते हैं, उन्हें नरकमें पकाया जाता है। जिस राजाके राज्यमें प्रजा सूदखोरों, अधिकारियों और चोरोंद्वारा पीड़ित होती है, उसे नरकोंमें पकना पड़ता है। जो ब्राह्मण अन्यायी राजासे दान लेते हैं, उन्हें भी घोर नरकोंमें जाना पड़ता है। पापाचारी पुरवासियोंका पाप राजाका ही समझा जाता है। अतः राजाको उस पापसे डरकर प्रजाको शासनमें रखना चाहिये। जो राजा भलीभाँति विचार न करके, जो चोर नहीं है उसे भी चोरके समान दण्ड देता और चोरको भी साधु समझकर छोड़ देता है, वह नरकमें जाता है।

जो मनुष्य दूसरोंके घी, तेल, मधु, गुड़, ईख, दूध,

---

१-बड़े भाईके अविवाहित रहते यदि छोटे भाईका विवाह हो जाय तो बड़ा भाई 'परिवित्ति' और छोटा भाई 'परिवेत्ता' कहलाता है।

साग, दही, मूल, फल, घास, लकड़ी, फूल, पत्ती, काँसा, चाँदी, जूता, छाता, बैलगाड़ी, पालकी, मुलायम आसन, ताँबा, सीसा, राँगा, शङ्ख, वंशी आदि बाजा, घरकी सामग्री, ऊन, कपास, रेशम, रङ्ग, पत्र आदि तथा महीन वस्त्र चुराते हैं या इसी तरहके दूसरे-दूसरे द्रव्योंका अपहरण करते हैं, वे सदा नरकमें पड़ते हैं। दूसरेकी वस्तु थोड़ी हो या बहुत—जो उसपर ममता करके उसे चुराता है, वह निस्सन्देह नरकमें गिरता है। इस तरहके पाप करनेवाले मनुष्य मृत्युके पश्चात् यमराजकी आज्ञासे यमलोकमें जाते हैं। यमराजके महाभयंकर दूत उन्हें ले जाते हैं। उस समय उनको बहुत दुःख उठाना पड़ता है। देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी—इनमेंसे जो भी अधर्ममें मन लगाते हैं, उनके शासक धर्मराज माने गये हैं। वे भाँति-भाँतिके भयानक दण्ड देकर पापोंका भोग कराते हैं। विनय और सदाचारसे युक्त मनुष्य यदि भूलसे मलिन आचारमें लिप्त हो जायँ तो उनके लिये गुरु ही शासक माने गये हैं; वे कोई प्रायश्चित्त कराकर उनके पाप धो सकते हैं। ऐसे लोगोंको यमराजके पास नहीं जाना पड़ता। परस्त्री-लम्पट, चोर तथा अन्यायपूर्ण बर्ताव करनेवाले पुरुषोंपर राजाका शासन होता है—राजा ही उनके दण्ड-विधाता माने गये हैं; परन्तु जो पाप छिपकर किये जाते हैं, उनके लिये धर्मराज ही दण्डका निर्णय करते हैं। इसलिये अपने किये हुए पापोंके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। अन्यथा वे करोड़ों कल्पोंमें भी [फल-भोग कराये बिना] नष्ट नहीं होते। मनुष्य मन, वाणी तथा शरीरसे जो कर्म करता है, उसका फल उसे स्वयं भोगना पड़ता है; कर्मोंके अनुसार उसकी सद्गति या अधोगति होती है। राजन्! इस प्रकार संक्षेपसे मैंने तुम्हें पापोंके भेद बताये हैं; बोलो, अब और क्या सुनाऊँ?

**ययातिने कहा**—मातले! अधर्मके सारे फलोंका वर्णन तो मैंने सुन लिया; अब धर्मका फल बताओ।

**मातलिने कहा**—राजन्! जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जूता और खड़ाऊँ दान करता है, वह बहुत बड़े विमानपर बैठकर सुखसे परलोककी यात्रा करता है, वस्त्र-दान करनेवाले मनुष्य दिव्य वस्त्र धारण करके परलोकमें जाते हैं। पालकी दान करनेसे भी जीव विमानद्वारा सुखपूर्वक यात्रा करता है। सुखासन (गद्दे, कुर्सी आदि)के दानसे भी वह सुखपूर्वक जाता है। बगीचा लगानेवाला पुरुष शीतल छायामें सुखसे परलोककी यात्रा करता है। फूल-माला दान करनेवाले पुरुष पुष्पक विमानसे जाते हैं। जो देवताओंके लिये मन्दिर, संन्यासियोंके लिये आश्रम तथा अनाथों और रोगियोंके लिये घर बनवाते हैं, वे परलोकमें उत्तम महलोंके भीतर रहकर विहार करते हैं। जो देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, माता और पिताकी पूजा करता है तथा गुणवानों और दीनोंको रहनेके लिये घर देता है, वह सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। राजन्! जिसने श्रद्धाके साथ ब्राह्मणको एक कौड़ीका भी दान किया है, वह स्वर्गलोकमें देवताओंका अतिथि होता है तथा उसकी कीर्ति बढ़ती है। अतः श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। उसका फल अवश्य होता है।

अहिंसा, क्षमा, सत्य, लज्जा, श्रद्धा, इन्द्रिय-संयम, दान, यज्ञ, ध्यान [और ज्ञान]—ये धर्मके दस साधन हैं। अन्न देनेवालेको प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदाता है, वही सब कुछ देनेवाला है। अतः अन्न-दान करनेसे सब दानोंका फल मिल जाता है। अन्नसे पुष्ट होकर ही मनुष्य पुण्यका संचय करता है; अतः पुण्यका आधा अंश अन्न-दाताको और आधा भाग पुण्यकर्ताको प्राप्त होता—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। धर्म, अर्थ काम और मोक्षका सबसे बड़ा साधन है शरीर और शरीर स्थिर रहता है अन्न तथा जलसे; अतः अन्न और जल ही सब पुरुषार्थोंके साधन हैं। अन्न-दानके समान दान न हुआ है न होगा। जल तीनों लोकोंका जीवन माना गया है। वह परम पवित्र, दिव्य, शुद्ध तथा सब रसोंका आश्रय है।

अन्न, पानी, घोड़ा, गौ, वस्त्र शय्या, सूत और आसन—इन आठ वस्तुओंका दान प्रेतलोकके लिये बहुत उत्तम है। इस प्रकार दानविशेषसे मनुष्य

धर्मराजके नगरमें सुखपूर्वक जाता है; इसलिये धर्मका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। राजन्! जो लोग क्रूर कर्म करते और दान नहीं देते हैं, उन्हें नरकमें दुःसह दुःख भोगना पड़ता है। दान करके मनुष्य अनुपम सुख भोगते हैं।

जो एक दिन भी भक्तिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह भी शिवलोकको प्राप्त होता है; फिर जो अनेकों बार उनकी अर्चना कर चुका है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। श्रीविष्णुकी भक्तिमें तत्पर और श्रीविष्णुके ध्यानमें संलग्न रहनेवाले वैष्णव वैकुण्ठधाममें चक्रधारी भगवान् श्रीविष्णुके समीप जाते हैं। श्रीविष्णुका उत्तम लोक श्रीशङ्करजीके निवासस्थानसे ऊपर समझना चाहिये। वहाँ श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले वैष्णव मनुष्य ही जाते हैं। मनुष्योंमें श्रेष्ठ, सदाचारी, यज्ञ करानेवाले, सुनीतियुक्त और विद्वान् ब्राह्मण ब्रह्मलोकको जाते हैं। युद्धमें उत्साहपूर्वक जानेवाले क्षत्रियोंको इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है तथा अन्यान्य पुण्यकर्ता भी पुण्यलोकोंमें गमन करते हैं।

## मातलिके द्वारा भगवान् शिव और श्रीविष्णुकी महिमाका वर्णन, मातलिको विदा करके राजा ययातिका वैष्णवधर्मके प्रचारद्वारा भूलोकको वैकुण्ठ-तुल्य बनाना तथा ययातिके दरबारमें काम आदिका नाटक खेलना

**ययाति बोले**—मातले! तुमने धर्म और अधर्म—सबका उत्तम प्रकारसे वर्णन किया। अब देवताओंके लोकोंकी स्थितिका वर्णन करो। उनकी संख्या बताओ। जिस पुण्यके प्रसङ्गसे जिसने जो लोक प्राप्त किया हो, उसका भी वर्णन करो।

**मातलिने कहा**—राजन्! देवताओंके लोक भावमय हैं। भावोंके अनेक रूप दिखायी देते हैं; अतः भावात्मक जगत्की संख्या करोड़ोंतक पहुँच जाती है। परन्तु पुण्यात्माओंके लिये उनमेंसे अट्ठाईस लोक ही प्राप्य हैं, जो एक-दूसरेके ऊपर स्थित और अत्यन्त विशाल हैं। जो लोग भगवान् शङ्करको नमस्कार करते हैं, उन्हें शिवलोकका विमान प्राप्त होता है। जो प्रसङ्गवश भी शिवका स्मरण या नाम-कीर्तन अथवा उन्हें नमस्कार कर लेता है, उसे अनुपम सुखकी प्राप्ति होती है। फिर जो निरन्तर उनके भजनमें ही लगे रहते हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या है। जो ध्यानके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करते हैं और सदा उन्हींमें मन लगाये रहते हैं, वे उन्हींके परम पदको प्राप्त होते हैं। नरश्रेष्ठ! श्रीशिव और भगवान् श्रीविष्णुके लोक एक-से ही हैं, उन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि उन दोनों महात्माओं—श्रीशिव तथा श्रीविष्णुका स्वरूप भी एक ही है। श्रीविष्णुरूपधारी शिव और श्रीशिवरूपधारी विष्णुको नमस्कार है। श्रीशिवके हृदयमें विष्णु और श्रीविष्णुके हृदयमें भगवान् शिव विराजमान हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीनों देवता एकरूप ही हैं। इन तीनोंके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है, केवल गुणोंका भेद बतलाया गया है।* राजेन्द्र! आप श्रीशिवके भक्त तथा भगवान् विष्णुके अनुरागी हैं; अतः आपपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों देवता प्रसन्न हैं। मानद! मैं इन्द्रकी आज्ञासे इस समय आपके पास आया हूँ। अतः पहले इन्द्रलोकमें चलिये; उसके बाद क्रमशः ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा विष्णुलोकको जाइयेगा। वे लोक दाह

---

*शैवं च वैष्णवं लोकमेकरूपं नरोत्तम। द्वयोश्चाप्यन्तरं नास्ति एकरूपं महात्मनोः॥
शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे। शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः॥
एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। त्रयाणामन्तरं नास्ति गुणभेदाः प्रकीर्तिताः॥
(७१। १८—२०)

और प्रलयसे रहित हैं।

**पिप्पलने पूछा**—ब्रह्मन्! मातलिकी बात सुनकर नहुषपुत्र राजा ययातिने क्या किया? इसका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

**सुकर्मा बोले**—विप्रवर! सुनिये, उस समय सम्पूर्ण धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ नृपवर ययातिने मातलिसे इस प्रकार कहा—'देवदूत! तुमने स्वर्गका सारा गुण-अवगुण मुझे पहले ही बता दिया है। अतः अब मैं शरीर छोड़कर स्वर्गलोकमें नहीं जाऊँगा। देवाधिदेव इन्द्रसे तुम यही जाकर कह देना। भगवान् हृषीकेशके नामोंका उच्चारण ही सर्वोत्तम धर्म है। मैं प्रतिदिन इसी रसायनका सेवन करता हूँ। इससे मेरे रोग, दोष और पापादि नष्ट हो गये हैं। संसारमें श्रीकृष्णका नाम सबसे बड़ी औषध है। इसके रहते हुए भी मनुष्य पाप और व्याधियोंसे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त हो रहे हैं—यह कितने आश्चर्यकी बात है। लोग कितने बड़े मूर्ख हैं कि श्रीकृष्ण-नामका रसायन नहीं पीते।* भगवान्की पूजा, ध्यान, नियम, सत्य-भाषण तथा दानसे शरीरकी शुद्धि होती है। इससे रोग और दोष नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर भगवान्के प्रसादसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। इसलिये मैं अब स्वर्गलोकको नहीं चलूँगा। अपने तपसे, भावसे और धर्माचरणके द्वारा भगवत्-कृपासे इस पृथ्वीको ही स्वर्ग बनाऊँगा। यह जानकर तुम यहाँसे जाओ और सारी बातें इन्द्रसे कह सुनाओ।'

राजा ययातिकी यह बात सुनकर मातलि चले गये। उन्होंने इन्द्रसे सब बातें निवेदन कीं। उन्हें सुनकर इन्द्र पुनः राजाको स्वर्गमें लानेके विषयमें विचार करने लगे।

**पिप्पलने पूछा**—ब्रह्मन्! इन्द्रके दूत महाभाग मातलिके चले जानेपर धर्मात्मा ययातिने कौन-सा कार्य किया?

**सुकर्मा बोले**—विप्रवर! देवराजके दूत मातलि जब चले गये, तब राजा ययातिने मन-ही-मन कुछ विचार किया और तुरंत ही प्रधान-प्रधान दूतोंको बुलाकर उन्हें धर्म और अर्थसे युक्त उत्तम आदेश दिया—'दूतो! तुमलोग मेरी आज्ञा मानकर अपने और दूसरे देशोंमें जाओ; तुम्हारे मुखसे वहाँके सब लोग मेरी धर्मयुक्त बात सुनें और सुनकर उसका पालन करें। जगत्के मनुष्य परम पवित्र और अमृतके समान सुखदायी भगवत्-सम्बन्धी भावोंद्वारा उत्तम मार्गका आश्रय लें। सदा तत्पर होकर शुभ कर्मोंका अनुष्ठान, भगवत्तत्त्वका ज्ञान, भगवान्का ध्यान और तपस्या करें। सब लोग विषयोंका परित्याग करके यज्ञ और दानके द्वारा एकमात्र मधुसूदनका पूजन करें। सर्वत्र सूखे और गीलेमें, आकाश और पृथ्वीपर तथा चराचर प्राणियोंमें केवल श्रीहरिका दर्शन करें। जो मानव लोभ या मोहवश लोकमें मेरी इस आज्ञाका पालन नहीं करेगा, उसे निश्चय ही कठोर दण्ड दिया जायगा। मेरी दृष्टिमें वह चोरकी भाँति निकृष्ट समझा जायगा।'

राजाके ये वचन सुनकर दूतोंका हृदय प्रसन्न हो गया। वे समूची पृथ्वीपर घूम-घूमकर समस्त प्रजाको महाराजका आदेश सुनाने लगे—'ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके मनुष्यो! राजा ययातिने संसारमें परम पवित्र अमृत ला दिया है। आप सब लोग उसका पान करें। उस अमृतका नाम है—पुण्यमय वैष्णव धर्म। वह सब दोषोंसे रहित और उत्तम परिणामका जनक है। भगवान् केशव सबका क्लेश हरनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, आनन्दस्वरूप और परमार्थ-तत्त्व हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं सुलभ कर दिया है। संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें। भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। उनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। वे जगत्के आधारभूत और महेश्वर हैं। पापोंका नाश करके आनन्द प्रदान करते हैं। दानवों और दैत्योंका संहार करनेवाले हैं। यज्ञ उनके अङ्गस्वरूप हैं, उनके

---

*विद्यमाने हि संसारे कृष्णनाम्नि महौषधे। मानवा मरणं यान्ति पापव्याधिप्रपीडिताः।
न पिबन्ति महामूढाः कृष्णनामरसायनम्॥ (७२। १८)

हाथमें सुदर्शन चक्र शोभा पाता है। वे पुण्यकी निधि और सुखरूप हैं। उनके स्वरूपका कहीं अन्त नहीं है। सम्पूर्ण विश्व उनके हृदयमें निवास करता है। वे निर्मल, सबको आराम देनेवाले, 'राम'-नामसे विख्यात, सबमें रमण करनेवाले, मुर दैत्यके शत्रु, आदित्यस्वरूप, अन्धकारके नाशक, मलरूप कमलोंके लिये चाँदनीरूप, लक्ष्मीके निवासस्थान, सगुण और देवेश्वर हैं। उनका नामामृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। राजा ययातिने उसे यहीं सुलभ कर दिया है, सब लोग उसका पान करें। यह नामामृतस्तोत्र दोषहारी और उत्तम पुण्यका जनक है। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाला जो महात्मा पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल नियमपूर्वक इसका पाठ करता है, वह मुक्त हो जाता है।*

**सुकर्मा कहते हैं**—राजा ययातिके दूत सम्पूर्ण देशों, द्वीपों, नगरों और गाँवोंमें कहते फिरते थे—'लोगो! महाराजकी आज्ञा सुनो, तुमलोग पूरा जोर लगाकर सर्वतोभावेन भगवान् विष्णुकी पूजा करो। दान, यज्ञ, शुभकर्म, धर्म और पूजन आदिके द्वारा भगवान् मधुसूदनकी आराधना करते हुए मनकी सम्पूर्ण वृत्तियोंसे उन्हींका ध्यान—चिन्तन करो।' इस प्रकार राजाके उत्तम आदेशका, जो शुभ पुण्य उत्पन्न करनेवाला था, भूतल-निवासी सब लोगोंने श्रवण किया। उसी समयसे सम्पूर्ण मनुष्य एकमात्र भगवान् मुरारिका ध्यान, गुणगान, जप और तप करने लगे। वेदोक्त सूक्तों और मन्त्रोंद्वारा, जो कानोंको पवित्र करनेवाले तथा अमृतके समान मधुर थे, श्रीकेशवका यजन करने लगे। उनका चित्त सदा भगवान्‌में ही लगा रहता था। वे समस्त विषयों और दोषोंका परित्याग करके व्रत, उपवास, नियम और दानके द्वारा भक्तिपूर्वक जगन्निवास श्रीविष्णुका पूजन करते थे। राजाका भगवदाराधन-सम्बन्धी आदेश भूमण्डलपर प्रवर्तित हो गया। सब लोग वैष्णव प्रभावके कारण भगवान्‌का यजन करने लगे। यज्ञ-विधिको जाननेवाले विद्वान् नाम और कर्मोंके द्वारा श्रीविष्णुका यजन करते और उन्हींके ध्यानमें संलग्न रहते थे। उनका सारा उद्योग भगवान्‌के लिये ही होता था। वे विष्णु-पूजामें निरन्तर लगे रहते थे। जहाँतक यह सारा भूमण्डल है और जहाँतक प्रचण्ड किरणोंवाले भगवान् सूर्य तपते हैं, वहाँतक समस्त मनुष्य भगवद्भक्त हो गये। श्रीविष्णुके प्रभावसे, उनका पूजन, स्तवन और नाम-कीर्तन करनेसे सबके शोक दूर हो गये। सभी पुण्यात्मा और तपस्वी बन गये। किसीको रोग नहीं सताता था। सब-के-सब दोष और रोषसे शून्य तथा समस्त ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हो गये थे।

महाभाग! उन लोगोंके घरोंके दरवाजोंपर सदा ही पुण्यमय कल्पवृक्ष और समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली गौएँ रहती थीं। उनके घरमें चिन्तामणि नामकी मणि थी, जो परम पवित्र और सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली मानी गयी है। भगवान् विष्णुकी कृपासे पृथ्वीके समस्त मानव सब प्रकारके दोषोंसे रहित हो गये थे। पुत्र तथा पौत्र उनकी शोभा बढ़ाते थे। वे मङ्गलसे युक्त, परम पुण्यात्मा, दानी ज्ञानी और ध्यानपरायण थे। धर्मके ज्ञाता महाराज ययातिके शासनकालमें दुर्भिक्ष

---

* श्रीकेशवं क्लेशहरं वरेण्यमानन्दरूपं परमार्थमेव। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
श्रीपद्मनाभं कमलेक्षणं च आधाररूपं जगतां महेशम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
पापापहं व्याधिविनाशरूपमानन्ददं दानवदैत्यनाशनम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
यज्ञाङ्गरूपं च रथाङ्गपाणिं पुण्याकरं सौख्यमनन्तरूपम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
विश्वाधिवासं विमलं विरामं रामाभिधानं रमणं मुरारिम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
आदित्यरूपं तमसां विनाशं चन्द्रप्रकाशं मलपङ्कजानाम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
सखड्गपाणिं मधुसूदनाख्यं तं श्रीनिवासं सगुणं सुरेशम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
नामामृतं दोषहरं सुपुण्यमधीत्य यो माधवविष्णुभक्तः। प्रभातकाले नियतो महात्मा स याति मुक्तिं न हि कारणं च॥
(७३। १०—१७)

और व्याधियोंका भय नहीं था। मनुष्योंकी अकाल-मृत्यु नहीं होती थी। सब लोग विष्णु-सम्बन्धी व्रतोंका पालन करनेवाले और वैष्णव थे। भगवान्‌का ही ध्यान और उन्हींके नामोंका जप उनकी दिनचर्याका अङ्ग बन गया था। वे सब लोग भाव-भक्तिके साथ भगवान्‌की आराधनामें तत्पर रहते थे। द्विजश्रेष्ठ! उस समय सब लोगोंके घरोंमें तुलसीके वृक्ष और भगवान्‌के मन्दिर शोभा पाते थे। सबके घर साफ-सुथरे और चमकीले थे तथा उत्तम गुणोंके कारण दिव्य दिखायी देते थे। सर्वत्र वैष्णव भाव छा रहा था। नाना प्रकारके माङ्गलिक उत्सवोंका दर्शन होता था। विप्रवर! भूलोकमें सदा शङ्खोंकी ध्वनियाँ सुनायी पड़ती थीं, जो आपसमें टकराया करती थीं। वे ध्वनियाँ समस्त दोषों और पापोंका विनाश करनेवाली थीं। भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाली स्त्रियोंने अपने-अपने घरके दरवाजेपर शङ्ख, स्वस्तिक और पद्मकी आकृतियाँ लिख रखी थीं। सब लोग केशवका गुणगान करते थे। कोई 'हरि' और 'मुरारि' का उच्चारण करता तो कोई 'श्रीश', 'अच्युत' तथा माधवका नाम लेता था। कितने ही श्रीनरसिंह, कमलनयन, गोविन्द, कमलापति, कृष्ण और राम-नामकी रट लगाते हुए भगवान्‌की शरणमें जाते, मन्त्रोंके द्वारा उनका जप करते तथा पूजन भी करते थे। सब-के-सब वैष्णव थे; अतः वे श्रीविष्णुके ध्यानमें मग्न रहकर उन्हींको दण्डवत् प्रणाम किया करते थे।

कृष्ण, विष्णु, हरि, राम, मुकुन्द, मधुसूदन, नारायण, हृषीकेश, नरसिंह, अच्युत, केशव, पद्मनाभ, वासुदेव, वामन, वाराह, कमठ, मत्स्य, कपिल, सुराधिप, विश्वेश, विश्वरूप, अनन्त, अनघ, शुचि, पुरुष, पुष्कराक्ष, श्रीधर, श्रीपति, हरि, श्रीद, श्रीश, श्रीनिवास, सुमोक्ष, मोक्षद और प्रभु—इन नामोंका उच्चारण करते हुए पृथ्वीके समस्त मानव—बाल, वृद्ध और कुमार भी भगवान्‌का भजन करते थे। घरके काम-धंधोंमें लगी हुई स्त्रियाँ सदा भगवान् श्रीहरिको प्रणाम करतीं और बैठते, सोते, चलते, ध्यान लगाते तथा ज्ञान प्राप्त करते समय भी वे लक्ष्मीपतिका स्मरण करती रहती थीं। खेल-कूदमें लगे हुए बालक गोविन्दको मस्तक झुकाते और दिन-रात मधुर हरिनामका कीर्तन करते रहते थे। द्विजश्रेष्ठ! सर्वत्र भगवान् विष्णुके नामकी ही ध्वनि सुनायी पड़ती थी। भूतलके समस्त मानव वैष्णवोचित भावसे रहा करते थे। महलों और देवमन्दिरोंके कलशोंपर सूर्यमण्डलके समान चक्र शोभा पाते थे। पृथ्वीपर सर्वत्र श्रीकृष्णका भाव दृष्टिगोचर होता था। यह भूतल विष्णुलोककी समानताको पहुँच गया था। वैकुण्ठमें वैष्णव लोग जैसे विष्णुका उच्चारण करते हैं, उसी प्रकार इस पृथ्वीपर मनुष्य कृष्ण-नामका कीर्तन करते थे। भूतल और वैकुण्ठ दोनों लोकोंका एक ही भाव दिखायी देता था। वृद्धावस्था और रोगका भय नहीं था; क्योंकि मनुष्य अजर-अमर हो गये थे। भूलोकमें दान और भोगका अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता था। प्रायः सब मनुष्य—द्विजमात्र वेदोंके विद्वान् और ज्ञान-ध्यानपरायण थे। सब यज्ञ और दानमें लगे रहते थे। सबमें दयाका भाव था। सभी परोपकारी, शुभ विचार-सम्पन्न और धर्मनिष्ठ थे। महाराज ययातिके उपदेशसे भूमण्डलके समस्त मानव वैष्णव हो गये थे।

**भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं**—नृपश्रेष्ठ वेन! नहुषपुत्र महाराज ययातिका चरित्र सुनो; वे सर्वधर्म-परायण और निरन्तर भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाले थे। उन्हें इस पृथ्वीपर रहते एक लाख वर्ष व्यतीत हो गये। परन्तु उनका शरीर नित्य-नूतन दिखायी देता था, मानो वे पच्चीस वर्षके तरुण हों। भगवान् विष्णुके प्रसादसे राजा ययाति बड़े ही प्रशस्त और प्रौढ़ हो गये थे। भूमण्डलके मनुष्य कामनाओंके बन्धनसे रहित होनेके कारण यमराजके पास नहीं जाते थे। वे दान-पुण्यसे सुखी थे और सब धर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहते थे। जैसे दूर्वा और वटवृक्ष पृथ्वीपर विस्तारको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार वे मनुष्य पुत्र-पौत्रोंके द्वारा वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे। मृत्युरूपी दोषसे हीन होनेके कारण वे दीर्घजीवी होते थे। उनका शरीर अधिक कालतक दृढ़ रहता था। वे सुखी थे और बुढ़ापेका रोग उन्हें छू भी नहीं गया था। पृथ्वीके सभी मनुष्य पच्चीस वर्षकी

अवस्थाके दिखायी देते थे। सबका आचार-विचार सत्यसे युक्त था। सभी भगवान्‌के ध्यानमें तन्मय रहते थे। समूची पृथ्वीपर जगत्‌में किसीकी मृत्यु नहीं सुनी जाती थी। किसीको शोक नहीं देखना पड़ता था। कोई भी दोषसे लिप्त नहीं होते थे।

एक समय इन्द्रने कामदेव और गन्धर्वोंको बुलाया तथा उनसे इस प्रकार कहा—'तुम सब लोग मिलकर ऐसा कोई उपाय करो, जिससे राजा ययाति यहाँ आ जायँ।' इन्द्रके यों कहनेपर कामदेव आदि सब लोग नटके वेषमें राजा ययातिके पास आये और उन्हें आशीर्वादसे प्रसन्न करके बोले—महाराज! हमलोग एक उत्तम नाटक खेलना चाहते हैं।' राजा ययाति ज्ञान-विज्ञानमें कुशल थे। उन्होंने नटोंकी बात सुनकर सभा एकत्रित की और स्वयं भी उसमें उपस्थित हुए। नटोंने विप्ररूपधारी भगवान् वामनके अवतारकी लीला उपस्थित की। राजा उनका नाटक देखने लगे। उस नाटकमें साक्षात् कामदेवने सूत्रधारका काम किया। वसन्त पारिपार्श्वक बना। अपने वल्लभको प्रसन्न करनेवाली रति-नटीके वेषमें उपस्थित हुई। नाटकमें सब लोग पात्रके अनुरूप वेष धारण किये अभिनय करने लगे। मकरन्द (वसन्त) ने महाप्राज्ञ राजा ययातिके चित्तको क्षोभमें डाल दिया।

## ययातिके शरीरमें जरावस्थाका प्रवेश, कामकन्यासे भेंट, पूरुका यौवन-दान, ययातिका कामकन्याके साथ प्रजावर्गसहित वैकुण्ठधाम-गमन

**सुकर्मा कहते हैं**—पिप्पल! महाराज ययाति कामदेवके गीत, नृत्य और ललित हास्यसे मोहित होकर स्वयं भी नट-स्वरूप हो गये। वे मल-मूत्रका त्याग करके आये और पैरोंको धोये बिना ही आसनपर बैठ गये। यह छिद्र पाकर वृद्धावस्था तथा कामदेवने राजाके शरीरमें प्रवेश किया। नृपश्रेष्ठ! उन सबने मिलकर इन्द्रका कार्य पूरा कर दिया। नाटक समाप्त हो गया। सब लोग अपने-अपने स्थानको चले गये। तत्पश्चात् धर्मात्मा राजा ययाति जरावस्थासे पराजित हुए। उनका चित्त काम-भोगमें आसक्त हो गया।

एक दिन वे कामयुक्त होकर वनमें शिकार खेलनेके लिये गये। उस समय उनके सामने एक हिरन निकला, जिसके चार सींग थे। उसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। उसके सभी अङ्ग सुन्दर थे। रोमावलियाँ सुनहरे रंगकी थीं, मस्तकपर रत्न-सा जड़ा हुआ प्रतीत होता था। सारा शरीर चितकबरे रंगका था। वह मनोहर मृग देखने ही योग्य था। राजा धनुष-बाण लेकर बड़े वेगसे उसके पीछे दौड़े। मृग भी उन्हें बहुत दूर ले गया और उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गया। राजाको वहाँ नन्दनवनके समान एक अद्भुत वन दिखायी दिया, जो सभी गुणोंसे युक्त था। उसके भीतर राजाने एक बहुत सुन्दर तालाब देखा, जो दस योजन लंबा और पाँच योजन चौड़ा था। सब ओर कल्याणमय जलसे भरा वह सर्वतोभद्र नामक तालाब दिव्य भावोंसे शोभा पा रहा था। राजा रथके वेगपूर्वक चलनेसे खिन्न हो गये थे। परिश्रमके कारण उन्हें कुछ पीड़ा हो रही थी; अतः सरोवरके तटपर ठंडी छायाका आश्रय लेकर बैठ गये।

थोड़ी देर बाद स्नान करके उन्होंने कमलकी सुगन्धसे सुवासित सरोवरका शीतल जल पिया। इतनेमें ही उन्हें अत्यन्त मधुर स्वरमें गाया जानेवाला एक दिव्य संगीत सुनायी पड़ा, जो ताल और मूर्च्छनासे युक्त था। राजा तुरंत उठकर उस स्थानकी ओर चल दिये, जहाँ गीतकी मनोहर ध्वनि हो रही थी। जलके निकट एक विशाल एवं सुन्दर भवन था। उसीके ऊपर बैठकर रूप, शील और गुणसे सुशोभित एक सुन्दरी नारी मनोहर गीत गा रही थी। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं। रूप और तेज उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। चराचर जगत्‌में उसके-जैसी सुन्दरी स्त्री दूसरी कोई नहीं थी। महाराज ययातिके शरीरमें जरायुक्त कामका सञ्चार पहले ही हो चुका था। उस स्त्रीको देखते ही वह काम विशाल रूपमें प्रकट

हुआ। राजा कामाग्निसे जलने और कामज्वरसे पीड़ित होने लगे। उन्होंने उस सुन्दरीसे पूछा—'शुभे! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? तुम्हारे पास यह कौन बैठी है? कल्याणी! मुझे सब बातोंका परिचय दो। मैं नहुषका पुत्र हूँ। मेरा जन्म चन्द्रवंशमें हुआ है। पृथ्वीके सातों द्वीपोंपर मेरा अधिकार है। मैं तीनों लोकोंमें विख्यात हूँ। मेरा नाम ययाति है। सुन्दरी! मुझे दुर्जय काम मारे डालता है। मैं उत्तम शीलसे युक्त हूँ। मेरी रक्षा करो। तुम्हारे समागमके लिये मैं अपना राज्य, समूची पृथ्वी और यह शरीर भी अर्पण कर दूँगा। यह त्रिलोकी तुम्हारी ही है।'

राजाकी बात सुनकर सुन्दरीने अपनी सखी विशालाको उत्तर देनेके लिये प्रेरित किया। तब विशालाने कहा—'नरश्रेष्ठ! यह रतिकी पुत्री है। इसका नाम अश्रुबिन्दुमती है। मैं इसके प्रेम और सौहार्दवश सदा इसके साथ रहती हूँ। हम दोनोंमें स्वाभाविक मित्रता है, जिससे मैं सर्वदा प्रसन्न रहती हूँ। मेरा नाम विशाला है। मैं वरुणकी पुत्री हूँ। महाराज! मेरी यह सुन्दरी सखी योग्य वरकी प्राप्तिके लिये तपस्या कर रही है। इस प्रकार मैंने आपसे अपनी इस सखीका तथा अपना भी पूरा-पूरा परिचय दे दिया।'

**ययाति बोले**—शुभे! मेरी बात सुनो—यह सुन्दर मुखवाली रतिकुमारी मुझे ही पतिरूपमें स्वीकार करे। यह बाला जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करेगी, वह सब मैं इसे प्रदान करूँगा।

**विशालाने कहा**—राजन्! मैं इसका नियम बतलाती हूँ, पहले उसे सुन लीजिये। यह स्थिर यौवनसे युक्त; सर्वज्ञ, वीरके लक्षणोंसे सुशोभित, देवराजके समान तेजस्वी, धर्मका आचरण करनेवाले, त्रिलोक-पूजित, सुबुद्धि, सुप्रिय तथा उत्तम गुणोंसे युक्त पुरुषको अपना पति बनाना चाहती है।

**ययाति बोले**—मुझे इन सभी गुणोंसे युक्त समझो। मैं इसके योग्य पति हो सकता हूँ।

**विशालाने कहा**—राजन्! मैं जानती हूँ, आप अपने पुण्यके लिये तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। मैंने पहले जिन-जिन गुणोंकी चर्चा की है, वे सभी आपके भीतर विद्यमान हैं; केवल एक ही दोषके कारण यह मेरी सखी आपको पसंद नहीं करती। आपके शरीरमें वृद्धावस्थाका प्रवेश हो गया है। यदि आप उससे मुक्त हो सकें, तो यह आपकी प्रियतमा हो सकती है। राजन्! यही इसका निश्चय है। मैंने सुना है, पुत्र, भ्राता और भृत्य—जिसके शरीरमें भी इस जरावस्थाको डाला जाय, उसीमें इसका संचार हो जाता है। अतः भूपाल! आप अपना बुढ़ापा तो पुत्रको दे दीजिये और स्वयं उसका यौवन लेकर परम सुन्दर बन जाइये। मेरी सखी जिस रूपमें आपका उपभोग करना चाहती है, उसीके अनुकूल व्यवस्था कीजिये।

**ययाति बोले**—महाभागे! एवमस्तु, मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा।

राजा ययाति काम-भोगमें आसक्त होकर अपनी विवेकशक्ति खो बैठे थे। वे घर जाकर अपने पुत्रोंसे बोले—'तुमलोगोंमेंसे कोई एक मेरी दुःखदायिनी जरावस्थाको ग्रहण कर ले और अपनी जवानी मुझे दे दे, जिससे मैं इच्छानुसार भोग भोग सकूँ। जो मेरी वृद्धावस्थाको ग्रहण करेगा, वह पुत्रोंमें श्रेष्ठ समझा जायगा और वही मेरे राज्यका स्वामी होगा। उसको सुख, सम्पत्ति, धन-धान्य, बहुत-सी सन्तानें तथा यश और कीर्ति प्राप्त होगी।'

**तुरुने कहा**—पिताजी! इसमें सन्देह नहीं कि पिता-माताकी कृपासे ही पुत्रको शरीरकी प्राप्ति होती है; अतः उसका कर्तव्य है कि वह विशेष चेष्टाके साथ माता-पिताकी सेवा करे। परन्तु महाराज! यौवन-दान करनेका यह मेरा समय नहीं है।

तुरुकी बात सुनकर धर्मात्मा राजाको बड़ा क्रोध हुआ। वे उसे शाप देते हुए बोले—'तूने मेरी आज्ञाका अनादर किया है, अतः तू सब धर्मोंसे बहिष्कृत और पापी हो जा। तेरा हृदय पवित्र ज्ञानसे शून्य हो जाय और तू कोढ़ी हो जा।' तुरुको इस प्रकार शाप देकर वे अपने दूसरे पुत्र यदुसे बोले—'बेटा! तू मेरी जरावस्थाको ग्रहण कर और मेरा अकण्टक राज्य भोग।' यह सुनकर

यदुने हाथ जोड़कर कहा—'पिताजी ! कृपा कीजिये। मैं बुढ़ापेका भार नहीं ढो सकता। शीतका कष्ट सहना, अधिक राह चलना, कदन्न भोजन करना, जिनकी जवानी बीत गयी हो ऐसी स्त्रियोंसे सम्पर्क रखना और मनकी प्रतिकूलताका सामना करना—ये वृद्धावस्थाके पाँच हेतु हैं।' यदुके यों कहनेपर महाराज ययातिने कुपित होकर उन्हें भी शाप दिया—'जा, तेरा वंश राज्यहीन होगा, उसमें कभी कोई राजा न होगा।'

**यदुने कहा**—महाराज ! मैं निर्दोष हूँ। आपने मुझे शाप क्यों दे दिया ? मुझ दीनपर दया कीजिये, प्रसन्न हो जाइये।

**ययाति बोले**—बेटा ! महान् देवता भगवान् विष्णु जब तेरे वंशमें अपने अंशसहित अवतार लेंगे, उस समय तेरा कुल पवित्र—शापसे मुक्त हो जायगा।

राजा ययातिने कुरुको शिशु समझकर छोड़ दिया और शर्मिष्ठाके पुत्र पूरुको बुलाकर कहा—'बेटा ! तू मेरी वृद्धावस्था ग्रहण कर ले।' पूरुने कहा—'राजन् ! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। मुझे अपनी वृद्धावस्था दीजिये और आज ही मेरी युवावस्थासे सुन्दर रूप धारण कर उत्तम भोग भोगिये।' यह सुनकर महामनस्वी राजाका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वे पूरुसे बोले—'महामते ! तूने मेरी वृद्धावस्था ग्रहण की और अपना यौवन मुझे दिया; इसलिये मेरे दिये हुए राज्यका उपभोग कर।' अब राजाकी बिलकुल नयी अवस्था हो गयी। वे सोलह वर्षके तरुण प्रतीत होने लगे। देखनेमें अत्यन्त सुन्दर, मानो दूसरे कामदेव हों। महाराजने पूरुको अपना धनुष, राज्य, छत्र, घोड़ा, हाथी, धन, खजाना, देश, सेना, चँवर और व्यजन—सब कुछ दे डाला। धर्मात्मा नहुषकुमार अब कामात्मा हो गये। वे कामासक्त होकर बारंबार उस स्त्रीका चिन्तन करने लगे। उन्हें अपने पहले वृत्तान्तका स्मरण न रहा। नयी जवानी पाकर वे बड़ी शीघ्रताके साथ कदम बढ़ाते हुए अश्रुबिन्दुमतीके पास गये। उस समय उनका चित्त कामसे उन्मत्त हो रहा था। वे विशाल नेत्रोंवाली विशालाको देखकर बोले—'भद्रे ! मैं प्रबल दोषरूप वृद्धावस्थाको त्यागकर यहाँ आया हूँ। अब मैं तरुण हूँ; अतः तुम्हारी सखी मुझे स्वीकार करे।'

**विशाला बोली**—राजन् ! आप दोषरूपा जरावस्थाको त्यागकर आये हैं, यह बड़ी अच्छी बात है; परन्तु अब भी आप एक दोषसे लिप्त हैं, जिससे यह आपको स्वीकार करना नहीं चाहती। आपकी दो सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रियाँ हैं—शर्मिष्ठा और देवयानी। ऐसी दशामें आप मेरी इस सखीके वशमें कैसे रह सकेंगे ? जलती हुई आगमें समा जाना और पर्वतके शिखरसे कूद पड़ना अच्छा है; किन्तु रूप और तेजसे युक्त होनेपर भी ऐसे पतिसे विवाह करना अच्छा नहीं है, जो सौतरूपी विषसे युक्त हो। यद्यपि आप गुणोंके समुद्र हैं, तो भी इसी एक दोषके कारण यह आपको पति बनाना पसंद नहीं करती।

**ययातिने कहा**—शुभे ! मुझे देवयानी और शर्मिष्ठासे कोई प्रयोजन नहीं है। इस बातके लिये मैं सत्यधर्मसे युक्त अपने शरीरको छूकर शपथ करता हूँ।

**अश्रुबिन्दुमती बोली**—राजन् ! मैं ही आपके राज्य और शरीरका उपभोग करूँगी। जिस-जिस कार्यके लिये मैं कहूँ, उसे आपको अवश्य पूर्ण करना होगा। इस बातका विश्वास दिलानेके लिये अपना हाथ मेरे हाथमें दीजिये।

**ययातिने कहा**—राजकुमारी ! मैं तुम्हारी सिवा किसी दूसरी स्त्रीको नहीं ग्रहण करूँगा। वरानने ! मेरा राज्य, समूची पृथ्वी, मेरा यह शरीर और खजाना—सबका तुम इच्छानुसार उपभोग करो। सुन्दरी ! लो, मैंने तुम्हारे हाथमें अपना हाथ दे दिया।

**अश्रुबिन्दुमती बोली**—महाराज ! अब मैं आपकी पत्नी बनूँगी। इतना सुनते ही महाराज ययातिकी आँखें हर्षसे खिल उठीं; उन्होंने गान्धर्व-विवाहकी विधिसे काम-कुमारी अश्रुबिन्दुमतीको ग्रहण किया और युवावस्थाके द्वारा वे उसके साथ विहार करने लगे। अश्रुबिन्दुमतीमें आसक्त होकर वहाँ रहते हुए राजाको बीस हजार वर्ष बीत गये। इस प्रकार इन्द्रके लिये किये हुए कामदेवके प्रयोगसे उस स्त्रीने महाराजको भलीभाँति

मोहित कर लिया। एक दिनकी बात है—कामनन्दिनी अश्रुबिन्दुमतीने मोहित हुए राजा ययातिसे कहा—'प्राणनाथ ! मेरे हृदयमें कुछ अभिलाषा जाग्रत् हुई है। आप मेरे उस मनोरथको पूर्ण कीजिये। पृथ्वीपते ! आप यज्ञोंमें प्रधान अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करें।'

**राजा बोले**—महाभागे ! एवमस्तु, मैं तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूँगा।

ऐसा कहकर महाराजने राज्य-भोगसे निःस्पृह अपने पुत्र पूरुको बुलाया। पिताका आह्वान सुनकर पूरु आये; उन्होंने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर राजाके चरणोंमें प्रणाम किया और अश्रुबिन्दुमतीके युगल चरणोंमें भी मस्तक झुकाया। इसके बाद वे पितासे बोले—'महाप्राज्ञ ! मैं आपका दास हूँ; बताइये, मेरे लिये आपकी क्या आज्ञा है, मैं कौन-सा कार्य करूँ ?'

**राजाने कहा**—बेटा ! पुण्यात्मा द्विजों, ऋत्विजों और भूमिपालोंको आमन्त्रित करके तुम अश्वमेध यज्ञकी तैयारी करो।

महातेजस्वी पूरु बड़े धार्मिक थे। उन्होंने पिताके कहनेपर उनकी आज्ञाका पूर्णतया पालन किया। तत्पश्चात् राजा ययातिने काम-कन्याके साथ यज्ञकी दीक्षा ली। उन्होंने अश्वमेध यज्ञमें ब्राह्मणों और दीनोंको अनेक प्रकारके दान दिये। यज्ञ समाप्त होनेपर महाराजने उस सुमुखीसे पूछा—'बाले ! और कोई कार्य भी, जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय हो, बताओ; मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ ?' यह सुनकर उसने राजासे कहा—'महाराज ! मैं इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा विष्णुलोकका दर्शन करना चाहती हूँ।' राजा बोले—'महाभागे ! तुमने जो प्रस्ताव किया है, वह इस समय मुझे असाध्य प्रतीत होता है। वह तो पुण्य, दान, यज्ञ और तपस्यासे ही साध्य है। मैंने आजतक ऐसा कोई मनुष्य नहीं देखा या सुना है, जो पुण्यात्मा होकर भी मर्त्यलोकसे इस शरीरके साथ ही स्वर्गको गया हो। अतः सुन्दरी ! तुम्हारा बताया हुआ कार्य मेरे लिये असाध्य है। प्रिये ! दूसरा कोई कार्य बताओ, उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

**अश्रुबिन्दुमती बोली**—राजन् ! इसमें सन्देह नहीं कि यह कार्य दूसरे मनुष्योंके लिये सर्वथा असाध्य है; पर आपके लिये तो साध्य ही है—यह मैं बिलकुल सच-सच कह रही हूँ। इसी उद्देश्यसे मैंने आपको अपना स्वामी बनाया था; आप सब प्रकारके शुभ-लक्षणोंसे सम्पन्न और सब धर्मोंसे युक्त हैं। मैं जानती हूँ—आप भगवान् विष्णुके भक्त हैं, वैष्णवोंमें परम श्रेष्ठ हैं। जिसके ऊपर भगवान् विष्णुकी कृपा होती है, वह सर्वत्र जा सकता है। इसी आशासे मैंने आपको पति-रूपमें अङ्गीकार किया था। राजन् ! केवल आपने ही मृत्युलोकमें आकर सम्पूर्ण मनुष्योंको जरावस्थाकी पीड़ासे रहित और मृत्युहीन बनाया है। नरश्रेष्ठ ! आपने इन्द्र और यमराजका विरोध करके मर्त्यलोकको रोग और पापसे शून्य कर दिया है। महाराज ! आपके समान दूसरा कोई भी राजा नहीं है। बहुत-से पुराणोंमें भी आपके-जैसे राजाका वर्णन नहीं मिलता। मैं अच्छी तरह जानती हूँ, आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं।

**राजाने कहा**—भद्रे ! तुम्हारा कहना सत्य है, मेरे लिये कोई साध्य-असाध्यका प्रश्न नहीं है। जगदीश्वरकी कृपासे मुझे स्वर्गलोकमें सब कुछ सुलभ है। तथापि मैं स्वर्गमें जो नहीं जाता हूँ, इसका कारण सुनो। मेरे छोड़ देनेपर मानवलोककी सारी प्रजा मृत्युका शिकार हो जायगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। सुमुखि ! यही सोचकर मैं स्वर्गमें नहीं चलता हूँ; यह मैंने तुम्हें सच्ची बात बतायी है।

**रानी बोली**—महाराज ! उन लोकोंको देखकर मैं फिर मर्त्यलोकमें लौट आऊँगी। इस समय उन्हें देखनेके लिये मेरे मनमें इतनी उत्सुकता हुई है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है।

**राजाने कहा**—देवि ! तुमने जो कुछ कहा है, उसे निःसन्देह पूर्ण करूँगा।

अपनी प्रिया अश्रुबिन्दुमतीसे यों कहकर राजा सोचने लगे—'मत्स्य पानीके भीतर रहता है, किन्तु वह भी जालसे बँध जाता है। स्वर्गमें या पृथ्वीपर जो स्थावर आदि प्राणी हैं, उन सबपर कालका प्रभाव है। एकमात्र काल ही इस जगत्के रूपमें उपलब्ध होता है। कालसे

पीड़ित मनुष्यको मन्त्र, तप, दान, मित्र और बन्धु-बान्धव—कोई भी नहीं बचा सकते। विवाह, जन्म और मृत्यु—ये कालके रचे हुए तीन बन्धन हैं। ये जहाँ, जैसे और जिस हेतुसे होनेको होते हैं, होकर ही रहते हैं; कोई मेट उन्हें नहीं सकता।* उपद्रव, आघातदोष, सर्प और व्याधियाँ—ये सभी कर्मसे प्रेरित होकर मनुष्यको प्राप्त होते हैं। आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँच बातें जीवके गर्भमें रहते समय ही रच दी जाती हैं।† जीवको देवत्व, मनुष्यत्व, पशु-पक्षी आदि तिर्यग्योनियाँ और स्थावर योनि—ये सब कुछ अपने-अपने कर्मानुसार ही प्राप्त होते हैं।‡ मनुष्य जैसा करता है, वैसा भोगता है; उसे अपने किये हुएको ही सदा भोगना पड़ता है। वह अपना ही बनाया हुआ दुःख और अपना ही रचा हुआ सुख भोगता है। जो लोग अपने धन और बुद्धिसे किसी वस्तुको अन्यथा करनेकी युक्ति रखते हैं, वे भी अपने उपार्जित सुख-दुःखोंका उपभोग करते हैं। जैसे बछड़ा हजारों गौओंके बीचमें खड़ी होनेपर भी अपने माताको पहचानकर उसके पास पहुँच जाता है, उसी प्रकार पूर्व-जन्मके किये हुए शुभाशुभ कर्म कर्ताका अनुसरण करते हैं। पहलेका किया हुआ कर्म कर्ताके सोनेपर उसके साथ ही सोता है, उसके खड़े होनेपर खड़ा होता है और चलनेपर पीछे-पीछे चलता है। तात्पर्य यह कि कर्म छायाकी भाँति कर्ताके साथ लगा रहता है। जैसे छाया और धूप सदा एक-दूसरेसे सम्बद्ध होते हैं, उसी प्रकार कर्म और कर्ताका भी परस्पर सम्बन्ध है। शस्त्र, अग्नि, विष आदिसे जो बचाने योग्य वस्तु है, उसको भी दैव ही बचाता है। जो वास्तवमें अरक्षित वस्तु है, उसकी दैव ही रक्षा करता है। दैवने जिसका नाश कर दिया हो, उसकी रक्षा नहीं देखी जाती। यह मेरे पूर्वकर्मोंका परिणाम ही है, दूसरा कुछ नहीं है। इस स्त्रीके रूपमें दैव ही यहाँ आ पहुँचा है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मेरे घरमें जो नाटक खेलनेवाले नट और नर्तक आये थे, उन्हींके सङ्गसे मेरे शरीरमें जरावस्थाने प्रवेश किया है। इन सब बातोंको मैं अपने कर्मोंका ही परिणाम मानता हूँ।'

इस प्रकारकी चिन्तामें पड़कर राजा ययाति बहुत दुःखी हो गये। उन्होंने सोचा—'यदि मैं प्रसन्नतापूर्वक इसकी बात नहीं मानूँगा तो मेरे सत्य और धर्म—दोनों ही चले जायँगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जैसा कर्म मैंने किया था, उसके अनुरूप ही फल आज दृष्टिगोचर हुआ है। यह निश्चित बात है कि दैवका विधान टाला नहीं जा सकता है।'

इस तरह सोच-विचारमें पड़े हुए राजा ययाति सबके क्लेश दूर करनेवाले भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये। उन्होंने मन-ही-मन भगवान् मधुसूदनका ध्यान और नमस्कारपूर्वक स्तवन किया तथा कातरभावसे कहा—'लक्ष्मीपते! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप मेरा उद्धार कीजिये।'

**सुकर्मा कहते हैं**—परम धर्मात्मा राजा ययाति इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि रतिकुमारी देवी अश्रुबिन्दुमतीने कहा—'राजन्! अन्यान्य प्राकृत मनुष्योंकी भाँति आप दुःखपूर्ण चिन्ता कैसे कर रहे हैं। जिसके कारण आपको दुःख हो, वह कार्य मुझे कभी नहीं करना है।' उसके यों कहनेपर राजाने उस वराङ्गनासे कहा—'देवि! मुझे जिस बातकी चिन्ता हुई है, उसे बताता हूँ; सुनो। मेरे स्वर्ग चले जानेपर सारी प्रजा दीन

---

* न मन्त्रा न तपो दानं न मित्राणि न बान्धवाः। शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम्॥
त्रयः कालकृताः पाशाः शक्यन्ते न निवर्तितुम्। विवाहो जन्म मरणं यथा यत्र च येन च॥
(८१। ३३-३४)

† पञ्चैतानि विसृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः। आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च॥
(८१। ४१)

‡ देवत्वमथ मानुष्यं पशुत्वं पक्षिता तथा। तिर्यक्त्वं स्थावरत्वं च प्राप्यते वै स्वकर्मभिः॥
(८१। ४३)

हो जायगी। तथापि अब मैं तुम्हारे साथ स्वर्गलोकको चलूँगा।' यों कहकर राजाने अपने उत्तम पुत्र पूरुको, जो सब धर्मोंके ज्ञाता, वृद्धावस्थासे युक्त और परम बुद्धिमान् थे, बुलाया और इस प्रकार कहा—'धर्मात्मन्! मेरी आज्ञासे तुमने धर्मका पालन किया है, अब मेरी वृद्धावस्था दे दो और अपनी युवावस्था ग्रहण करो। खजाना, सेना तथा सवारियोंसहित मेरा यह राज्य तथा समुद्रसहित समूची पृथ्वीको भोगो। मैंने इसे तुम्हें ही दिया है। दुष्टोंको दण्ड देना और साधु पुरुषोंकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है।

तात! तुम्हें धर्मशास्त्रको प्रमाण मानकर उसीके अनुसार सब कार्य करना चाहिये। महाभाग! शास्त्रीय विधिके अनुसार भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन करना, क्योंकि वे तीनों लोकोंमें पूजनीय हैं। पाँचवें-सातवें दिन खजानेकी देखभाल करते रहना, सेवकोंको धन और भोजन आदिसे प्रसन्न करके सदा इनका आदर करना। गुप्तचरोंको नियुक्त करके राज्यके प्रत्येक अङ्गपर दृष्टि रखना, सदा दान देते रहना, शत्रुपर अनुराग या विश्वास न करना, विद्वान् पुरुषोंके द्वारा सदा अपनी रक्षाका प्रबन्ध रखना। बेटा! अपने मनको काबूमें रखना, कभी शिकार खेलनेके लिये न जाना। स्त्री, खजाना, सेना और शत्रुपर कभी विश्वास न करना। सुयोग्य पात्रों और सब प्रकारके बलोंका संग्रह करना। यज्ञोंके द्वारा भगवान् हृषीकेशका पूजन करना और सदा पुण्यात्मा बने रहना। प्रजाको जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह सब उन्हें प्रतिदिन देते रहना। बेटा! तुम प्रजाको सुख पहुँचाओ, प्रजाका पालन-पोषण करो। पराये धन और परायी स्त्रियोंके प्रति कभी दूषित विचार मनमें न लाना। वेद और शास्त्रोंका निरन्तर चिन्तन करना और सदा अस्त्र-शस्त्रोंके अभ्यासमें लगे रहना। हाथी और रथ हाँकनेका अभ्यास भी बढ़ाते रहना।'

पुत्रको ऐसा आदेश देकर राजाने आशीर्वादके द्वारा उसे प्रसन्न किया और अपने हाथसे राजसिंहासनपर बिठाया। फिर अपनी वृद्धावस्था ले पुत्रको यौवन समर्पित करके महाराजने समस्त प्रजाओंको बुलाया और बड़े हर्षमें भरकर यह वचन कहा—'सज्जनो! मैं अपनी इस पत्नीके साथ पहले इन्द्रलोकमें जाता हूँ, फिर क्रमशः ब्रह्मलोक और शिवलोकमें जाऊँगा। इसके बाद समस्त लोकोंके पाप दूर करनेवाले तथा जीवोंको सद्गति प्रदान करनेवाले विष्णुधामको प्राप्त होऊँगा—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—मेरी समस्त प्रजाको कुटुम्बसहित यहीं सुखपूर्वक रहना चाहिये। यही मेरी आज्ञा है। आजसे ये महाबाहु पूरु आपलोगोंके रक्षक हैं। इनका स्वभाव धीर है, मैंने इन्हें शासनका अधिकार देकर राजाके पदपर प्रतिष्ठित किया है।'

महाराजके यों कहनेपर प्रजाजनोंने कहा—नृपश्रेष्ठ सम्पूर्ण वेदोंमें धर्मका ही श्रवण होता है, पुराणोंमें भी धर्मकी ही व्याख्या की गयी है, किन्तु पूर्वकालमें किसीने धर्मका साक्षात् दर्शन नहीं किया। केवल हमलोगोंने ही चन्द्रवंशमें राजा नहुषके घर उत्पन्न हुए आपके रूपमें उस दशाङ्ग धर्मका साक्षात्कार किया है। महाराज! आप सत्यप्रिय, ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न, पुण्यकी महान् राशि, गुणोंके आधार तथा सत्यके ज्ञाता हैं। सत्यका पालन करनेवाले महान् ओजस्वी पुरुष परम-धर्मका अनुष्ठान करते हैं। आपसे बढ़कर दूसरा कोई पुरुष हमारे देखनेमें नहीं आया है। आप-जैसे धर्मपालक एवं सत्यवादी राजाको हम मन, वाणी और शरीर—किसीकी भी क्रियाद्वारा छोड़नेमें असमर्थ हैं। महाराज! जब आप ही नहीं रहेंगे, तब स्त्री, धन, भोग और जीवन लेकर हम क्या करेंगे। अतः राजेन्द्र! अब हमें यहाँ रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आपके साथ ही हम भी चलेंगे।'

प्रजाजनोंकी यह बात सुनकर राजा ययातिको बड़ा हर्ष हुआ। वे बोले—'आप सब लोग परम पुण्यात्मा हैं, मेरे साथ चलें।' यों कहकर वे कामकन्याके साथ रथपर सवार हुए। वह रथ चन्द्रमण्डलके समान जान पड़ता था। सेवकगण हाथमें चँवर और व्यजन लेकर महाराजको हवा कर रहे थे। राजाके मनमें किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं थी। उनके राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य तथा शूद्र—सभी वैष्णव थे। इनके सिवा, जो अन्त्यज थे, उनके मनमें भी भगवान् विष्णुके प्रति भक्ति थी। सभी दिव्य माला धारण किये तुलसीदलोंसे शोभा पा रहे थे। उनकी संख्या अरबों-खरबोंतक पहुँच गयी। सभी भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर और जप एवं दानमें संलग्न रहनेवाले थे। सब-के-सब विष्णु-भक्त और पुण्यात्मा थे। उन सबने महाराजके साथ दिव्य लोकोंकी यात्रा की। उस समय सबके हृदयमें महान् आनन्द छा रहा था। राजा ययाति सबसे पहले इन्द्रलोकमें गये, उनके तेज, पुण्य, धर्म और तपोबलसे और लोग भी साथ-साथ गये। वहाँ पहुँचनेपर देवता, गन्धर्व, किन्नर तथा चारणोंसहित देवराज इन्द्र उनके सामने आये और उनका सम्मान करते हुए बोले—'महाभाग! आपका स्वागत है! आइये, मेरे घरमें पधारिये और दिव्य, पावन एवं मनोरम भोगोंका उपभोग कीजिये।'

**राजाने कहा**—देवराज! आपके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके हमलोग सनातन ब्रह्मलोकमें जा रहे हैं।

यह कहकर देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे ब्रह्मलोकमें गये। वहाँ मुनिवरोंके साथ महातेजस्वी ब्रह्माजीने अर्घ्यादि सुविस्तृत उपचारोंके द्वारा उनका आतिथ्य-सत्कार किया और कहा—'राजन्! तुम अपने शुभ कर्मोंके फलस्वरूप विष्णुलोकको जाओ।' ब्रह्माजीके यों कहनेपर वे पहले शिवलोकमें गये, वहाँ भगवान् शङ्करने पार्वतीजीके साथ उनका स्वागत-सत्कार किया और इस प्रकार कहा—'महाराज! तुम भगवान् विष्णुके भक्त हो, अतः मेरे भी अत्यन्त प्रिय हो, क्योंकि मुझमें और विष्णुमें कोई अन्तर नहीं है। जो विष्णु हैं, वही मैं हूँ तथा मुझीको विष्णु समझो, पुण्यात्मा विष्णुभक्तके लिये भी यही स्थान है। अतः महाराज! तुम यहाँ इच्छानुसार रह सकते हो।'

भगवान् शिवके यों कहनेपर श्रीविष्णुके प्रिय भक्त ययातिने मस्तक झुकाकर उनके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा—'महादेव! आपने इस समय जो कुछ भी कहा है, सत्य है, आप दोनोंमें वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। एक ही परमात्माके स्वरूपकी ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीन रूपोंमें अभिव्यक्ति हुई है। तथापि मेरी विष्णुलोकमें जानेकी इच्छा है, अतः आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ।' भगवान् शिव बोले—'महाराज! एवमस्तु, तुम विष्णुलोकको जाओ।' उनकी आज्ञा पाकर राजाने कल्याणमयी भगवती उमाको नमस्कार किया और उन परमपावन विष्णुभक्तोंके साथ वे विष्णुधामको चल दिये। ऋषि और देवता सब ओर खड़े हो उनकी स्तुति कर रहे थे। गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, पुण्यात्मा, चारण, साध्य, विद्याधर, उनचास मरुद्गण, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, बारहों आदित्य, लोकपाल तथा समस्त त्रिलोकी चारों ओर उनका गुणगान कर रही थी। महाराज ययातिने रोग-शोकसे रहित अनुपम विष्णु-लोकका दर्शन किया। सब प्रकारकी शोभासे सम्पन्न सोनेके विमान उस लोककी सुषमा बढ़ा रहे थे। चारों ओर दिव्य छटा छा रही थी। वह मोक्षका उत्तम धाम वैष्णवोंसे शोभा पा रहा था। देवताओंकी वहाँ भीड़-सी लगी थी।

नहुषनन्दन ययातिने सब प्रकारके दाहसे रहित उस दिव्य धाममें प्रवेश करके क्लेशहारी भगवान् नारायणका दर्शन किया। भगवान्के ऊपर चँदोवे तने हुए थे, जिनसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। वे सब प्रकारके आभूषण और पीत वस्त्रोंसे विभूषित थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न शोभा पा रहा था। सबके महान् आश्रय भगवान् जगन्नाथ लक्ष्मीके साथ गरुड़पर विराजमान थे। वे ही परात्पर परमेश्वर हैं। सम्पूर्ण देवलोकोंकी गति हैं। परमानन्दमय कैवल्यसे सुशोभित हैं। बड़े-बड़े लोक, पुण्यात्मा वैष्णव, देवता तथा गन्धर्व उनकी सेवामें रहते हैं। राजा ययातिने अपनी पत्नीसहित निकट जाकर गन्धर्वोंद्वारा सेवित, देववृन्दसे घिरे, दुःख-क्लेशहारी प्रभु नारायणको नमस्कार किया तथा उनके साथ जो अन्य वैष्णव पधारे थे, उन्होंने भी भक्तिपूर्वक भगवान्के दोनों चरण-कमलोंमें मस्तक झुकाया। परम तेजस्वी राजाको प्रणाम करते देख भगवान् हृषीकेशने कहा—'महाराज! मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ। तुम मेरे भक्त हो; अतः तुम्हारे मनमें यदि कोई दुर्लभ मनोरथ हो तो उसके लिये वर

माँगो। मैं उसे निस्सन्देह पूर्ण करूँगा।'

**राजा बोले**—मधुसूदन! जगत्पते! देवेश्वर! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो सदाके लिये मुझे अपना दास बना लीजिये।

**भगवान् श्रीविष्णुने कहा**—महाभाग! ऐसा ही होगा। तुम मेरे भक्त हो, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। राजन्! तुम अपनी पत्नीके साथ सदा मेरे लोकमें निवास करो।

भगवान्‌की ऐसी आज्ञा पाकर उनकी कृपासे महाराज ययाति परम प्रकाशमान विष्णुलोकमें निवास करने लगे।

**सुकर्मा कहते हैं**—पिप्पलजी! यह सम्पूर्ण पापनाशक चरित्र मैंने आपको सुना दिया। संसारमें राजा ययातिका दिव्य एवं शुभ जीवनचरित्र परम कल्याण-दायक तथा पितृभक्त पुत्रोंका उद्धार करनेवाला है। पिताकी सेवाके प्रभावसे पूरुको राज्य प्राप्त हुआ। पिता-माताके समान अभीष्ट फल देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। जो पुत्र माताके बुलानेपर हर्षमें भरकर उसकी ओर जाता है, उसे गङ्गास्नानका फल मिलता है। जो माता और पिताके चरण पखारता है, वह महायशस्वी पुत्र उन दोनोंकी कृपासे समस्त तीर्थोंके सेवनका फल भोगता है। उनके शरीरको दबाकर व्यथा दूर करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो भोजन और वस्त्र देकर माता-पिताका पालन करता है, उसे पृथ्वीदानका पुण्य प्राप्त होता है। गङ्गा और माता सर्वतीर्थमयी मानी गयी हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जैसे जगत्‌में समुद्र परम पुण्यमय एवं प्रतिष्ठित माना गया है, उसी प्रकार इस संसारमें पिता-माताका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐसा पौराणिक विद्वानोंका कथन है। जो पुत्र माता-पिताको कटुवचन सुनाता और कोसता है, वह बहुत दुःख देनेवाले नरकमें पड़ता है। जो गृहस्थ होकर भी बूढ़े माता-पिताका पालन नहीं करता, वह पुत्र नरकमें पड़ता और भारी यातना भोगता है। जो दुर्बुद्धि एवं पापाचारी पुरुष पिताकी निन्दा करता है, उसके उस पापका प्रायश्चित्त प्राचीन विद्वानोंको भी कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ है।*

विप्रवर! यही सब सोचकर मैं प्रतिदिन माता-पिताकी भक्तिपूर्वक पूजा करता हूँ और चरण दबाने आदिकी सेवामें लगा रहता हूँ। मेरे पिता मुझे बुलाकर जो कुछ भी आज्ञा देते हैं, उसे मैं अपनी शक्तिके अनुसार बिना विचारे पूर्ण करता हूँ। इससे मुझे सद्गति प्रदान करनेवाला उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है। पिता-माताकी कृपासे संसारमें तीनों कालोंका ज्ञान सुलभ हो जाता है। पृथ्वीपर रहनेवाले जो मनुष्य माता-पिताकी भक्ति करते हैं, उन्हें यह ज्ञान प्राप्त होता है। मैं यहीं रहकर स्वर्गलोकतककी बातें जानता हूँ। विद्याधरश्रेष्ठ! आप भी जाइये और भगवत्स्वरूप माता-पिताकी आराधना कीजिये। देखिये, इन माता-पिताके प्रसादसे ही मुझे ऐसा ज्ञान मिला है।†

**भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं**—राजन्! विप्रवर

---

* पितृमातृसमं नास्ति अभीष्टफलदायकम्।। .....
समाहूतो यदा पुत्रः प्रयाति मातरं प्रति। यो याति हर्षसंयुक्तो गङ्गास्नानफलं लभेत्॥
पादप्रक्षालनं यश्च कुरुते च महायशाः। सर्वतीर्थफलं भुङ्क्ते प्रसादादुभयोः सुतः॥
अङ्गसंवाहनाच्चाथ अश्वमेधफलं लभेत्। भोजनाच्छादनैश्चैव गुरुं च परिपोषयेत्॥
पृथ्वीदानस्य यत्पुण्यं तत्पुण्यं तस्य जायते। सर्वतीर्थमयी गङ्गा तथा माता न संशयः॥
बहुपुण्यमयः सिन्धुर्यथा लोके प्रतिष्ठितः। अस्मिन्नेव पिता तद्वत् पुराणाः कवयो विदुः॥
शंसते क्रोशते यस्तु पितरं मातरं पुनः। स पुत्रो नरकं याति बहुदुःखप्रदायकम्॥
मातरं पितरं वृद्धौ गृहस्थो यो न पोषयेत्। स पुत्रो नरकं याति वेदनां प्राप्नुयाद् ध्रुवम्॥
कुत्सते पापकर्ता यो गुरुं पुत्रः सुदुर्मतिः। निष्कृतिस्तस्य नोद्दिष्टा पुराणैः कविभिः कदा॥(८४। ५—१३)

† एवं मत्वा त्वहं विप्र पूजयामि दिने दिने। मातरं पितरं भक्त्या पादसंवाहनादिभिः॥
कृत्याकृत्यं वदेच्चैव समाहूय गुरुर्मम। तत्करोम्यविचारेण शक्त्या स्वस्य च पिप्पल॥
तेन मे परमं ज्ञानं संजातं गतिदायकम्। एतयोश्च प्रसादेन संसारे परिवर्तते॥

सुकर्माके मुखसे ये उपदेश सुनकर पिप्पलको अपनी करतूतपर बड़ी लज्जा आयी और वे द्विजश्रेष्ठ सुकर्माको प्रणाम करके स्वर्गको चले गये। तत्पश्चात् धर्मात्मा सुकर्मा माता-पिताकी सेवामें लग गये। महामते! पितृतीर्थसे सम्बन्ध रखनेवाली ये सारी बातें मैंने तुम्हें बता दीं; बोलो अब और किस विषयका वर्णन करूँ?

## गुरुतीर्थके प्रसङ्गमें महर्षि च्यवनकी कथा—कुञ्जल पक्षीका अपने पुत्र उज्ज्वलको ज्ञान, व्रत और स्तोत्रका उपदेश

**वेनने कहा**—भगवन्! देवदेवेश्वर! आपने मुझपर कृपा करके भार्यातीर्थ, परम उत्तम पितृतीर्थ एवं परम पुण्यदायक मातृतीर्थका वर्णन किया। हृषीकेश! अब प्रसन्न होकर मुझे गुरुतीर्थकी महिमा बतलाइये।

**भगवान् श्रीविष्णु बोले**—राजन्! गुरुतीर्थ बड़ा उत्तम तीर्थ है, मैं उसका वर्णन करता हूँ। गुरुके अनुग्रहसे शिष्यको लौकिक आचार-व्यवहारका ज्ञान होता है, विज्ञानकी प्राप्ति होती है और वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्य सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार गुरु शिष्योंको उत्तम बुद्धि देकर उनके अन्तर्जगत्को प्रकाशपूर्ण बनाते हैं*। सूर्य दिनमें प्रकाश करते हैं, चन्द्रमा रातमें प्रकाशित होते हैं और दीपक केवल घरके भीतर उजाला करता है; परन्तु गुरु अपने शिष्यके हृदयमें सदा ही प्रकाश फैलाते रहते हैं। वे शिष्यके अज्ञानमय अन्धकारका नाश करते हैं; अतः शिष्योंके लिये गुरु ही सबसे उत्तम तीर्थ हैं। यह समझकर शिष्यको उचित है कि वह सब तरहसे गुरुको प्रसन्न रखे। गुरुको पुण्यमय जानकर मन, वाणी और शरीर—तीनोंकी क्रियासे उनकी आराधना करता रहे।

नृपश्रेष्ठ! भार्गव-वंशमें उत्पन्न महर्षि च्यवन मुनियोंमें श्रेष्ठ थे। एक दिन उनके मनमें यह विचार हुआ कि 'मैं इस पृथ्वीपर कब ज्ञानसम्पन्न होऊँगा।' इस प्रकार सोचते-सोचते उनके मनमें यह बात आयी कि 'मैं तीर्थयात्राको चलूँ; क्योंकि तीर्थयात्रा अभीष्ट फलको देनेवाली है।' ऐसा निश्चय करके वे पिता आदिको तथा पत्नी, पुत्र और धनको भी घरपर ही छोड़कर तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे भूतलपर विचरने लगे। मुनीश्वर च्यवनने नर्मदा, सरस्वती तथा गोदावरी आदि समस्त नदियों और समुद्रके तटोंकी यात्रा की। अन्यान्य क्षेत्रों, सम्पूर्ण तीर्थों तथा पुण्यमय देवताओंके स्थानोंमें भ्रमण किया। इस प्रकार यात्रा करते हुए वे ओंकारेश्वर तीर्थमें आये और एक बरगदकी शीतल छायामें बैठकर सुखपूर्वक विश्राम करने लगे। उस वृक्षकी छाया ठंडी और थकावटको दूर करनेवाली थी। मुनिश्रेष्ठ च्यवन वहाँ लेट गये। लेटे-लेटे ही उनके कानोंमें पक्षियोंका मनोहर शब्द सुनायी पड़ा, जो ज्ञान-विज्ञानसे युक्त था। उस वृक्षके ऊपर अपनी पत्नीके साथ एक दीर्घजीवी तोता रहता था, जो कुञ्जलके नामसे प्रसिद्ध था। वह तोता बड़ा ज्ञानी था। उसके उज्ज्वल, समुज्ज्वल, विज्ज्वल और कपिञ्जल—ये चार पुत्र थे। चारों ही माता-पिताके बड़े भक्त थे। वे भूखसे आकुल होनेपर चारा चुगनेके लिये पर्वतीय कुञ्जों और समस्त द्वीपोंमें भ्रमण किया करते थे। उनका चित्त बहुत एकाग्र रहता था। सन्ध्याके समय मुनिवर च्यवनके देखते-देखते वे चारों तोते अपने पिताके सुन्दर घोंसलेमें आये। वहाँ आकर उन सबने माता-पिताको प्रणाम किया और उन्हें चारा निवेदन करके उनके सामने खड़े हो गये। तत्पश्चात् अपने पंखोंकी शीतल हवासे माता-पिताकी सेवा करने लगे।

---

ये विप्रभक्तिं कुर्वन्ति मानवा भुवि संस्थिताः। अत्रस्थस्तदहं जाने अधिस्वर्गे प्रवर्तते॥
एतयोश्च प्रसादेन ज्ञानं मम प्रदृश्यताम्। गच्छ विद्याधरश्रेष्ठ भवानर्चतु माधवम्॥(८४। १४—१८)

* सर्वेषामेव लोकानां यथा सूर्यः प्रकाशकः। गुरुः प्रकाशकस्तद्वच्छिष्याणां बुद्धिदानतः॥ (८५। ८)

कुञ्जल पक्षी अपनी पत्नीके साथ भोजन करके जब तृप्त हुआ, तब पुत्रोंके साथ बैठकर परम पवित्र दिव्य कथाएँ कहने लगा।

**उज्ज्वलने कहा**—पिताजी ! इस समय पहले मेरे लिये उत्तम ज्ञानका वर्णन कीजिये; इसके बाद ध्यान, व्रत, पुण्य तथा भगवान्‌के शत-नामका भी उपदेश दीजिये।

**कुञ्जल बोला**—बेटा ! मैं तुम्हें उस उत्तम ज्ञानका उपदेश देता हूँ, जिसे किसीने इन चर्मचक्षुओंसे नहीं देखा है; उसका नाम है—कैवल्य (मोक्ष)। वह केवल—अद्वितीय और दुःखसे रहित है। जैसे वायुशून्य प्रदेशमें रखा हुआ दीपक हवाका झोंका न लगनेके कारण स्थिर भावसे जलता है और घरके समूचे अन्धकारका नाश करता रहता है, उसी प्रकार कैवल्य-स्वरूप ज्ञानमय आत्मा सब दोषोंसे रहित और स्थिर है। उसका कोई आधार नहीं है [ वही सबका आधार है ]।* बेटा ! वह आशा-तृष्णासे रहित और निश्चल है। आत्मा न किसीका मित्र है न शत्रु। उसमें न शोक है, न हर्ष, न लोभ है न मात्सर्य। वह भ्रम, प्रलाप, मोह तथा सुख-दुःखसे रहित है। जिस समय इन्द्रियाँ सम्पूर्ण विषयोंमें भोग-बुद्धिका त्याग कर देती हैं, उस समय [सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित] केवल आत्मा रह जाता है; उसे कैवल्य-रूपकी प्राप्ति हो जाती है। जैसे दीपक प्रज्वलित होकर जब प्रकाश फैलाता है, तब बत्तीके आधारसे वह तेलको सोखता रहता है। फिर उस तेलको भी काजलके रूपमें उगल देता है। महामते ! दीपक स्वयं ही तेलको खींचता और अपने तेजसे निर्मल बना रहता है। इसी प्रकार देहरूपी बत्तीमें स्थित हुआ आत्मा कर्मरूपी तेलका शोषण करता रहता है। वह विषयोंका काजल बनाकर प्रत्यक्ष दिखा देता है और जपसे निर्मल होकर स्वयं ही प्रकाशित होता है। उसमें क्रोध आदि दोषोंका अभाव है। क्लेश नामक वायु उसका स्पर्श नहीं करती। वह निःस्पृह और निश्चल होकर स्वयं अपने तेजसे प्रकाशमान रहता है। स्वकीय स्थानपर स्थित रहकर ही अपने तेजसे सम्पूर्ण त्रिलोकीको देखा करता है। यह आत्मा केवल ज्ञानस्वरूप है [इसीको परमात्मा कहते हैं]। इस परमात्माका ही मैंने तुमसे वर्णन किया है।

अब मैं चक्रधारी भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानका वर्णन आरम्भ करता हूँ। वह ध्यान दो प्रकारका है—निराकार और साकार। निराकारका ध्यान केवल ज्ञानरूपसे होता है, ज्ञाननेत्रसे उनका दर्शन किया जाता है। योगयुक्त महात्मा तथा परमार्थपरायण संन्यासी उन सर्वज्ञ एवं सर्वद्रष्टा परमेश्वरका साक्षात्कार करते हैं। वत्स ! वे हाथ-पैरसे हीन होकर भी सर्वत्र जाते और समस्त चराचर त्रिलोकीको ग्रहण करते हैं। उनके मुख और नाक नहीं हैं, फिर भी वे खाते और सूँघते हैं। बिना कानके ही सब कुछ श्रवण करते हैं। वे सबके साक्षी और जगत्‌के स्वामी हैं। रूपहीन होते हुए भी पाँच इन्द्रियोंसे युक्त रूप धारण करते हैं। समस्त लोकोंके प्राण हैं। चराचर जगत्‌के जीव उनकी पूजा करते हैं। बिना जिह्वाके ही वे बोलते हैं। उनकी सब बातें वेदशास्त्रोंके अनुकूल होती है। उनके त्वचा नहीं है, फिर भी वे सबके स्पर्शका अनुभव करते हैं। उनका स्वरूप सत् और आनन्दमय है; वे विरक्तात्मा हैं। उनका रूप एक है। वे आश्रयरहित और जरावस्थासे शून्य हैं। ममता तो उन्हें छू भी नहीं गयी है। वे सर्वव्यापक, सगुण, निर्गुण और निर्मल हैं। वे किसीके वशमें नहीं हैं तो भी उनका मन सब भक्तोंके अधीन रहता है। वे सब कुछ देनेवाले और सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। उनका पूर्णरूपसे ध्यान करनेवाला कोई नहीं है। वे सर्वमय और सर्वत्र व्यापक हैं।†

---

* यथा दीपो निवातस्थो निश्चलो वायुवर्जितः। प्रज्वलन्नाशयेत्सर्वमन्धकारं महामते॥
तद्वद्दोषविहीनात्मा भवत्येव निराश्रयः। (८६। ५९-६०)

† ध्यानं चैव प्रवक्ष्यामि द्विविधं तस्य चक्रिणः। केवलं ज्ञानरूपेण दृश्यते ज्ञानचक्षुषा॥

इस प्रकार जो परमात्माके सर्वमय स्वरूपका ध्यान करता है, वह अमृतके समान सुखदायी और आकार-रहित परम पद (मोक्ष) को प्राप्त होता है।*

अब परमात्माके ध्यानका दूसरा रूप—साकार ध्यान बतलाता हूँ। मूर्तिमान् आकारके चिन्तनको साकार ध्यान कहते हैं तथा जो निरामय तत्त्वका चिन्तन है, उसे निराकार ध्यान कहा गया है। यह समस्त ब्रह्माण्ड, जिसकी कहीं तुलना नहीं है, भगवान्‌की वासनासे ही वासित है—भगवान्‌में ही इसका निवास है; इसीलिये उन्हें 'वासुदेव' कहते हैं। वर्षाके लिये उन्मुख मेघका जैसा वर्ण होता है, वैसा ही उनका भी वर्ण है। वे सूर्यके समान तेजस्वी, चतुर्भुज और देवताओंके स्वामी हैं। उनके दाहिने हाथोंमेंसे एकमें सुवर्ण और रत्नोंसे विभूषित शङ्ख शोभा पा रहा है। बायें हाथोंमेंसे एकमें चक्र प्रतिष्ठित है, जिसकी तेजोमयी आकृति सूर्यमण्डलके समान है। कौमोदकी गदा, जो बड़े-बड़े असुरोंका विनाश करनेवाली है, उन परमात्माके दूसरे बायें हाथमें सुशोभित है तथा उनके दूसरे दाहिने हाथमें सुगन्धपूर्ण महान् पद्म शोभा पा रहा है। इस प्रकार आयुधोंसहित भगवान् कमलापतिका ध्यान करना चाहिये। शङ्खके समान ग्रीवा, गोल-गोल मुख और पद्मपत्रके समान बड़ी-बड़ी आँखें अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं। रत्नोंके समान चमकीले दाँतोंसे भगवान् हृषीकेशकी बड़ी शोभा हो रही है। उनके घुँघराले बाल हैं, बिम्बाफलके समान लाल-लाल ओठ हैं तथा मस्तकपर धारण किये हुए किरीटसे कमल-नयन श्रीहरि अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। विशाल रूप, सुन्दर नेत्र तथा कौस्तुभमणिसे उनकी कान्ति बहुत बढ़ गयी है। सूर्यके समान तेजसे प्रकाशित होनेवाले कुण्डल और पुण्यमय श्रीवत्स-चिह्नसे श्रीहरि सदा देदीप्यमान दिखायी देते हैं। उनके श्यामविग्रहपर बाजूबन्द, कंगन और मोतियोंके हार नक्षत्रोंके समान छबि पा रहे हैं। इनसे सुशोभित भगवान् विजय विजयी पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ जान पड़ते हैं। सोनेके समान रंगवाले पीताम्बरसे गोविन्दकी सुषमा और भी बढ़ गयी है। रत्नजटित मुँदरियोंसे सुशोभित अँगुलियोंके कारण भगवान् बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं। सब प्रकारके आयुधोंसे पूर्ण और दिव्य आभूषणोंसे विभूषित श्रीहरि गरुड़की पीठपर विराजमान हैं। वे इस विश्वके स्रष्टा और जगत्‌के स्वामी हैं। जो मनुष्य इस प्रकार भगवान्‌की मनोहर झाँकीका प्रतिदिन अनन्य चित्तसे ध्यान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो अन्तमें भगवान् श्रीविष्णुके लोकको जाता है। बेटा! इस जगदीश्वरके ध्यानका यह सारा प्रकार मैंने तुम्हें बता दिया।†

---

योगयुक्ता महात्मानः परमार्थपरायणाः। यं पश्यन्ति यतीन्द्रास्ते सर्वज्ञं सर्वदर्शकम्॥
हस्तपादादिहीनश्च सर्वत्र परिगच्छति। सर्वं गृह्णाति त्रैलोक्यं स्थावरं जङ्गमं सुत॥
मुखनासाविहीनस्तु घ्राति भुङ्क्ते हि पुत्रक। अकर्णः शृणुते सर्वं सर्वसाक्षी जगत्पतिः॥
अरूपो रूपसम्पन्नः पञ्चवर्गसमन्वितः। सर्वलोकस्य यः प्राणः पूजितः सचराचरैः॥
अजिह्वो वदते सर्वं वेदशास्त्रानुगं सुत। अत्वचः स्पर्शमेवापि सर्वेषामेव जायते॥
सदानन्दो विरक्तात्मा एकरूपो निराश्रयः। निर्जरो निर्ममो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽमलः॥
अवश्यः सर्ववश्यात्मा सर्वदः सर्ववित्तमः। तस्य ध्याता न चैवास्ति स वै सर्वमयो विभुः॥ (८६। ६९—७६)

* एवं सर्वमयं ध्यानं पश्यते यो महात्मनः। स याति परमं स्थानममूर्तममृतोपमम्॥ (८६। ७७)

† द्वितीयं तु प्रवक्ष्यामि ह्यस्य ध्यानं महात्मनः। मूर्ताकारं तु साकारं निराकारं निरामयम्॥
ब्रह्माण्डं सर्वमतुलं वासितं यस्य वासनात्। स तस्माद् वासुदेवेति उच्यते मम नन्दन॥
वर्षमाणस्य मेघस्य यद्वर्षं तस्य तद्भवेत्। सूर्यतेजःप्रतीकाशं चतुर्बाहुं सुरेश्वरम्॥
दक्षिणे शोभते शङ्खो हेमरत्नविभूषितः। सूर्यबिम्बसमाकारं चक्रं पद्मप्रतिष्ठितम्॥
कौमोदकीं गदा तस्य महासुरविनाशिनी। वामे च शोभते वत्स करे तस्य महात्मनः॥
महापद्मं तु गन्धाढ्यं तस्य दक्षिणहस्तगम्। शोभमानं सदा ध्यायेत् सायुधं कमलाप्रियम्॥
कम्बुग्रीवं वृत्तमास्यं पद्मपत्रनिभेक्षणम्। राजमानं हृषीकेशं दशनैः रत्नसन्निभैः॥

अब व्रतोंके भेद बताता हूँ, जिनके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना होती है। जया, विजया, पापनाशिनी, जयन्ती, त्रिःस्पृशा, वञ्जुली, तिलगन्धा, अखण्डा तथा मनोरक्षा—ये सब एकादशी या द्वादशियोंके भेद हैं। इनके सिवा और भी बहुत-सी ऐसी तिथियाँ हैं, जिनका प्रभाव दिव्य है। अशून्यशयन और जन्माष्टमी—ये दोनों महान् व्रत हैं। इन व्रतोंका आचरण करनेसे प्राणियोंके सब पाप दूर हो जाते हैं।

पुत्र! अब भगवान्‌के शतनाम-स्तोत्रका वर्णन करता हूँ। यह मनुष्योंकी पापराशिका नाशक और उत्तम गति प्रदान करनेवाला है। विष्णुके इस शतनाम-स्तोत्रके ऋषि ब्रह्मा, देवता ओंकार तथा छन्द अनुष्टुप् है। सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि तथा मोक्षके निमित्त इसका विनियोग किया जाता है।*

हृषीकेश (इन्द्रियोंके स्वामी), केशव, मधुसूदन (मधु दैत्यको मारनेवाले), सर्वदैत्यसूदन (सम्पूर्ण दैत्योंके संहारक), नारायण, अनामय (रोग-शोकसे रहित), जयन्त, विजय, कृष्ण, अनन्त, वामन, विष्णु, विश्वेश्वर, पुण्य, विश्वात्मा, सुरार्चित (देवताओंद्वारा पूजित), अनघ (पापरहित), अघहर्ता, नारसिंह, श्रीप्रिय (लक्ष्मीके प्रियतम), श्रीपति, श्रीधर, श्रीद (लक्ष्मी प्रदान करनेवाले), श्रीनिवास, महोदय (महान् अभ्युदयशाली), श्रीराम, माधव, मोक्ष, क्षमारूप, जनार्दन, सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, सर्वेश्वर, सर्वदायक, हरि, मुरारि, गोविन्द, पद्मनाभ, प्रजापति, आनन्द, ज्ञानसम्पन्न, ज्ञानद, ज्ञानदायक, अच्युत, सबल, चन्द्रवक्त्र (चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले), व्याप्तपरावर (कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण जगत्‌में व्याप्त), योगेश्वर, जगद्योनि (जगत्‌की उत्पत्तिके स्थान), ब्रह्मरूप, महेश्वर, मुकुन्द, वैकुण्ठ, एकरूप, कवि, ध्रुव, वासुदेव, महादेव, ब्राह्मण्य ब्राह्मण-प्रिय, गोप्रिय, गोहित, यज्ञ, यज्ञाङ्ग, यज्ञवर्धन (यज्ञोंका विस्तार करनेवाले), यज्ञ-भोक्ता, वेद-वेदाङ्गपारग, वेदज्ञ, वेदरूप, विद्यावास, सुरेश्वर, प्रत्यक्ष, महाहंस, शङ्खपाणि, पुरातन, पुष्कर, पुष्कराक्ष, वाराह, धरणीधर, प्रद्युम्न, कामपाल, व्यासध्यात (व्यासजीके द्वारा चिन्तित), महेश्वर (महान् ईश्वर), सर्वसौख्य, महासौख्य, सांख्य, पुरुषोत्तम, योगरूप, महाज्ञान, योगीश्वर, अजित, प्रिय, असुरारि, लोकनाथ, पद्महस्त, गदाधर, गुहावास, सर्ववास, पुण्यवास, महाजन, वृन्दानाथ, बृहत्काय, पावन, पापनाशन, गोपीनाथ, गोपसख, गोपाल, गोगणाश्रय, परात्मा, पराधीश, कपिल तथा कार्यमानुष (संसारका उद्धार करनेके लिये मानव-शरीर धारण करनेवाले) आदि नामोंसे प्रसिद्ध सर्वस्वरूप परमेश्वरको मैं प्रतिदिन मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा नमस्कार करता हूँ। जो पुण्यात्मा पुरुष शतनामस्तोत्र पढ़कर स्थिरचित्तसे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करता है, वह सम्पूर्ण दोषोंका त्याग करके इस लोकमें पुण्यस्वरूप हो जाता है तथा अन्तमें वह भगवान् मधुसूदनके लोकको प्राप्त होता है। यह शतनाम-स्तोत्र महान् पुण्यका जनक और समस्त

---

गुडाकेशाः सन्ति यस्य अधरं बिम्बसन्निभम्। शोभते पुण्डरीकाक्षः किरीटेनापि पुत्रक॥
विशालेनापि रूपेण केशवस्तु सुचक्षुषा। कौस्तुभेनापि वै तेन राजमानो जनार्दनः॥
सूर्यतेजःप्रकाशाभ्यां कुण्डलाभ्यां प्रभाति च। श्रीवत्साङ्केन पुण्येन सर्वदा राजते हरिः॥
केयूरकङ्कणैर्हारैर्मौक्तिकैर्ऋक्षसन्निभैः। वपुषा भ्राजमानस्तु विजयो जयतां वरः॥
राजते सोऽपि गोविन्दो हेमवर्णेन वाससा। मुद्रिकारत्नयुक्ताभिरङ्गुलीभिर्विराजते॥
सर्वायुधैः सुसंपूर्णो दिव्यैराभरणैर्हरिः। वैनतेयसमारूढो लोककर्त्ता जगत्पतिः॥
एवं तं ध्यायते नित्यमनन्यमनसा नरः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं ध्यानमेवं जगत्पतेः॥ (८६। ७८—९२)

* शतनाम-स्तोत्रका विनियोग इस प्रकार है—'ॐ अस्य श्रीविष्णुशतनामस्तोत्रस्य ब्रह्मा ऋषिरनुष्टुप् छन्दः प्रणवो देवता सर्वकामिकसंसिद्ध्यै मोक्षार्थे च जपे विनियोगः।

पातकोंकी शुद्धि करनेवाला है। मनुष्यको ध्यानयुक्त होकर अनन्यचित्तसे इसका जप और चिन्तन करना चाहिये। प्रतिदिन इसका जप करनेवाले पुरुषको नित्यप्रति गङ्गास्नानका फल मिलता है। इसलिये सुस्थिर और एकाग्रचित्त होकर इसका जप करना उचित है।*

सुखकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि जहाँ शालग्रामकी शिला तथा द्वारकाकी शिला (गोमतीचक्र) हों, उन दोनों शिलाओंके समीप पूर्वोक्त स्तोत्रका जप करे। ऐसा करनेसे वह संसारमें नाना प्रकारके सुख भोगकर अन्तमें अपने सहित एक सौ एक पीढ़ीका उद्धार कर देता है। जो कार्तिकमें प्रतिदिन प्रातःस्नान करके मधुसूदनकी पूजा करता और भगवान्‌के सामने शतनाम-स्तोत्रको पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। बेटा ! माघ-स्नान करनेवाला पुरुष यदि भगवान्‌की पूजा करके उनका ध्यान करता और इस स्तोत्रका जप अथवा श्रवण करता है तो वह मदिरा-पान आदिसे होनेवाले पापोंका भी त्याग करके परमपदको प्राप्त होता है। बिना किसी विघ्नके उसे विष्णुपदकी प्राप्ति हो जाती है। जो मनुष्य श्राद्ध-कालमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके सामने इस पापनाशक शतनाम-स्तोत्रका पाठ करता है, उसके पितर संतुष्ट होकर परमगतिको प्राप्त होते हैं। यह स्तोत्र सुख तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। निश्चय ही इसका जप करना चाहिये। जपकर्ता मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे पूर्ण सिद्ध हो जाता है—उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

---

*शतनामस्तोत्रका मूल पाठ इस प्रकार है—

नमाम्यहं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम्। सूदनं सर्वदैत्यानां नारायणमनामयम्॥
जयन्तं विजयं कृष्णमनन्तं वामनं तथा। विष्णुं विश्वेश्वरं पुण्यं विश्वात्मानं सुरार्चितम्॥
अनघं त्वघहर्तारं नारसिंहं श्रियःप्रियम्। श्रीपतिं श्रीधरं श्रीदं श्रीनिवासं महोदयम्॥
श्रीरामं माधवं मोक्षं क्षमारूपं जनार्दनम्। सर्वज्ञं सर्ववेत्तारं सर्वेशं सर्वदायकम्॥
हरिं मुरारिं गोविन्दं पद्मनाभं प्रजापतिम्। आनन्दं ज्ञानसम्पन्नं ज्ञानदं ज्ञानदायकम्॥
अच्युतं सबलं चन्द्रवक्त्रं व्याप्तपरावरम्। योगेश्वरं जगद्योनिं ब्रह्मरूपं महेश्वरम्॥
मुकुन्दं चापि वैकुण्ठमेकरूपं कविं ध्रुवम्। वासुदेवं महादेवं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्॥
गोप्रियं गोहितं यज्ञं यज्ञाङ्गं यज्ञवर्धनम्। यज्ञस्यापि सुभोक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम्॥
वेदज्ञं वेदरूपं तं विद्यावासं सुरेश्वरम्। प्रत्यक्षं च महाहंसं शङ्खपाणिं पुरातनम्॥
पुष्करं पुष्कराक्षं च वाराहं धरणीधरम्। प्रद्युम्नं कामपालं च व्यासध्यातं महेश्वरम्॥
सर्वसौख्यं महासौख्यं सांख्यं च पुरुषोत्तमम्। योगरूपं महाज्ञानं योगीशमजितं प्रियम्॥
असुरारिं लोकनाथं पद्महस्तं गदाधरम्। गुहावासं सर्ववासं पुण्यवासं महाजनम्॥
वृन्दानाथं बृहत्कायं पावनं पापनाशनम्। गोपीनाथं गोपसखं गोपालं गोगणाश्रयम्॥
परात्मानं पराधीशं कपिलं कार्यमानुषम्। नमामि निखिलं नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः॥
नाम्नां शतेनापि तु पुण्यकर्ता यः स्तौति कृष्णं मनसा स्थिरेण। स याति लोकं मधुसूदनस्य विहाय दोषानिह पुण्यभूतः॥
नाम्नां शतं महापुण्यं सर्वपातकशोधनम्। अनन्यमनसा ध्यायेज्जपेद्ध्यानसमन्वितः॥
नित्यमेवं नरः पुण्यं गङ्गास्नानफलं लभेत्। तस्मात्तु सुस्थिरो भूत्वा समाहितमना जपेत्॥

(८७। ९—२५)

## कुञ्जलका अपने पुत्र विज्वलको उपदेश—महर्षि जैमिनिका सुबाहुसे दानकी महिमा कहना तथा नरक और स्वर्गमें जानेवाले पुरुषोंका वर्णन

तदनन्तर कुञ्जलने अपने पुत्र विज्वलको उपदेश देते हुए कहा—'बेटा ! प्रत्येक भोगमें शुभ और अशुभ कर्म ही कारण हैं। पुण्य-कर्मसे जीव सुख भोगता है और पाप-कर्मसे दुःखका अनुभव करता है। किसान अपने खेतमें जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल उसे प्राप्त होता है। इसी प्रकार जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फलका उपभोग किया जाता है। इस शरीरके विनाशका कारण भी कर्म ही है। हम सब लोग कर्मके अधीन हैं। संसारमें कर्म ही जीवोंकी संतान है। कर्म ही उनके बन्धु-बान्धव हैं तथा कर्म ही यहाँ पुरुषको सुख-दुःखमें प्रवृत्त करते हैं। जैसे किसानको उसके प्रयत्नके अनुसार खेतीका फल प्राप्त होता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म ही कर्ताको मिलता है। जीव अपने कर्मोंके अनुसार ही देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी और स्थावर योनियोंमें जन्म लेता है तथा उन योनियोंमें वह सदा अपने किये हुए कर्मको ही भोगता है। दुःख और सुख दोनों अपने ही किये हुए कर्मोंके फल हैं। जीव गर्भकी शय्यापर सोकर पूर्व-शरीरके किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगता है। पृथ्वीपर कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है, जो पूर्वजन्मके किये हुए कर्मको अन्यथा कर सके। सभी जीव अपने कमाये हुए सुख-दुःखको ही भोगते हैं। भोगके बिना किये हुए कर्मका नाश नहीं होता। पूर्वजन्मके बन्धनस्वरूप कर्मको कौन मेटा सकता है।

बेटा ! विषय एक प्रकारके विघ्न हैं। जरा आदि अवस्थाएँ उपद्रव हैं। ये पूर्वजन्मके कर्मोंसे पीड़ित मनुष्यको पुनः-पुनः पीड़ा पहुँचाते रहते हैं। जिसको जहाँ भी सुख या दुःख भोगना होता है, दैव उसे बलपूर्वक वहाँ पहुँचा देता है, जीव कर्मोंसे बँधा रहता है। प्रारब्धको ही जीवोंके सुख-दुःखका उत्पादक बताया गया है।

महाप्राज्ञ ! चोल देशमें सुबाहु नामके एक राजा हो गये हैं। जैमिनि नामके ब्राह्मण उनके पुरोहित थे। एक दिन पुरोहितने राजा सुबाहुको सम्बोधित करके कहा—'राजन् ! आप उत्तम-उत्तम दान दीजिये। दानके ही प्रभावसे सुख भोगा जाता है। मनुष्य मरनेके पश्चात् दानके ही बलसे दुर्गम लोकोंको प्राप्त होता है। दानसे सुख और सनातन यशकी प्राप्ति होती है। दानसे ही मर्त्यलोकमें मनुष्यकी उत्तम कीर्ति होती है। जबतक इस जगत्में कीर्ति स्थिर रहती है, तबतक उसका कर्ता स्वर्गलोकमें निवास करता है। अतः मनुष्योंको चाहिये कि वे पूर्ण प्रयत्न करके सदा दान करते रहें।'

**राजाने पूछा**—द्विजश्रेष्ठ ! दान और तपस्या—इन दोमें दुष्कर कौन है ? तथा परलोकमें जानेपर कौन महान् फलको देनेवाला होता है ? यह मुझे बतलाइये।

**जैमिनि बोले**—राजन् ! इस पृथ्वीपर दानसे बढ़कर दुष्कर कार्य दूसरा कोई नहीं है। यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है। सारा लोक इसका साक्षी है। संसारमें लोभसे मोहित मनुष्य धनके लिये अपने प्यारे प्राणोंकी भी परवा न करके समुद्र और घने जंगलोंमें प्रवेश कर जाते हैं। कितने ही मनुष्य धनके लिये दूसरोंकी सेवातक स्वीकार कर लेते हैं। विद्वान् लोग धनके लिये पाठ करते हैं तथा दूसरे-दूसरे लोग धनकी इच्छासे ही हिंसापूर्ण और कष्टसाध्य कार्य करते हैं। इसी प्रकार कितने ही लोग खेतीके कार्यमें संलग्न होते हैं। इस तरह दुःख उठाकर कमाया हुआ धन प्राणोंसे भी अधिक प्रिय जान पड़ता है। ऐसे धनका परित्याग करना अत्यन्त कठिन है। महाराज ! उसमें भी जो न्यायसे उपार्जित धन है, उसे यदि श्रद्धापूर्वक विधिके अनुसार सुपात्रको दान दिया जाय तो उसका फल अनन्त होता है। श्रद्धा देवी धर्मकी पुत्री हैं, वे विश्वको पवित्र एवं अभ्युदयशील बनानेवाली हैं। इतना ही नहीं, वे सावित्रीके समान पावन, जगत्को उत्पन्न करनेवाली तथा संसारसागरसे उद्धार करनेवाली हैं। आत्मवादी विद्वान् श्रद्धासे ही धर्मका चिन्तन करते हैं। जिनके पास किसी भी वस्तुका

संग्रह नहीं है, ऐसे अकिञ्चन मुनि श्रद्धालु होनेके कारण ही स्वर्गको प्राप्त हुए हैं।*

नृपश्रेष्ठ ! दानके कई प्रकार हैं। परन्तु अन्नदानसे बढ़कर प्राणियोंको सद्गति प्रदान करनेवाला दूसरा कोई दान नहीं है। इसलिये जलसहित अन्नका दान अवश्य करना चाहिये। दानके समय मधुर और पवित्र वचन बोलनेकी भी आवश्यकता है। अन्नदान संसार-सागरसे तारनेवाला, हितसाधक तथा सुख-सम्पत्तिका हेतु है। यदि शुद्ध चित्तसे श्रद्धापूर्वक सुपात्र व्यक्तिको एक बार भी अन्नका दान दिया जाय तो मनुष्य सदा ही उसका उत्तम फल भोगता रहता है। अपने भोजनमेंसे मुट्ठीभर अन्न 'अग्रग्रास'के रूपमें अवश्य दान करना चाहिये। उस दानका बहुत बड़ा फल है, उसे अक्षय बताया गया है। जो प्रतिदिन सेरभर या मुट्ठीभर भी अन्न न दे सके, वह मनुष्य पर्व आनेपर आस्तिकता, श्रद्धा तथा भक्तिके साथ एक ब्राह्मणको भोजन करा दे। राजन् ! जो प्रतिदिन ब्राह्मणको अन्न देते और जलसहित मिष्टान्न भोजन कराते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। वेदोंके पारगामी ऋषि अन्नको ही प्राणस्वरूप बतलाते हैं; अन्नकी उत्पत्ति अमृतसे हुई है। महाराज ! जिसने किसीको अन्नका दान किया है, उसने मानो प्राणदान दिया है। इसलिये आप यत्न करके अन्नका दान दीजिये।

**सुबाहुने कहा**—द्विजश्रेष्ठ ! अब मुझसे स्वर्गके गुणोंका वर्णन कीजिये।

**जैमिनि बोले**—राजन् ! स्वर्गमें नन्दनवन आदि अनेकों दिव्य उद्यान हैं, जो अत्यन्त मनोहर, पवित्र और समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। इनके सिवा वहाँ परम सुन्दर दिव्य विमान भी हैं। पुण्यात्मा मनुष्य उन विमानोंपर सुखपूर्वक विचरण किया करते हैं। वहाँ नास्तिक नहीं जाते; चोर, असंयमी, निर्दय, चुगलखोर, कृतघ्न और अभिमानी भी नहीं जाने पाते। जो सत्यके आधारपर रहनेवाले, शूर, दयालु, क्षमाशील, याज्ञिक तथा दानशील हैं, वे ही मनुष्य वहाँ जाने पाते हैं। वहाँ किसीको रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, जाड़ा, गर्मी, भूख, प्यास और ग्लानि नहीं सताती। राजन् ! ये तथा और भी बहुत-से स्वर्गलोकके गुण हैं। अब वहाँके दोषोंका वर्णन सुनिये। वहाँ सबसे बड़ा दोष यह है कि दूसरोंकी अपनेसे बढ़ी हुई सम्पत्ति देखकर मनमें असंतोष होता है तथा स्वर्गीय सुखमें आसक्त चित्तवाले प्राणियोंका [पुण्य क्षीण होते ही] सहसा वहाँसे पतन हो जाता है। यहाँ जो शुभ कर्म किया जाता है, उसका फल वहीं (स्वर्गमें) भोगा जाता है। राजन् ! यह कर्मभूमि है और स्वर्गको भोगभूमि माना गया है।

**सुबाहुने कहा**—ब्रह्मन् ! स्वर्गके अतिरिक्त जो दोषरहित सनातन लोक हों, उनका मुझसे वर्णन कीजिये।

**जैमिनि बोले**—राजन् ! ब्रह्मलोकसे ऊपर भगवान् श्रीविष्णुका परम पद है। वह शुभ, सनातन एवं ज्योतिर्मय धाम है। उसीको परब्रह्म कहा गया है। विषयासक्त मूढ़ पुरुष वहाँ नहीं जा सकते। दम्भ, लोभ, भय, क्रोध, द्रोह और द्वेषसे आक्रान्त मनुष्योंका वहाँ प्रवेश नहीं हो सकता। जो ममता और अहंकारसे रहित, निर्द्वन्द्व, जितेन्द्रिय तथा ध्यान-योगपरायण हैं, वे साधु पुरुष ही उस धाममें प्रवेश करते हैं।

**सुबाहुने कहा**—महाभाग ! मैं स्वर्गमें नहीं जाऊँगा, मुझे उसकी इच्छा नहीं है। जिस स्वर्गसे एक दिन नीचे गिरना पड़ता है, उसकी प्राप्ति करानेवाला कर्म ही मैं नहीं करूँगा। मैं तो ध्यानयोगके द्वारा देवेश्वर लक्ष्मीपतिका पूजन करूँगा और दाह तथा प्रलयसे रहित विष्णु-लोकमें जाऊँगा।

**जैमिनि बोले**—राजन् ! तुम्हारा कहना ठीक है, तुमने सबके कल्याणकी बात कही है। वास्तवमें राजा दानशील हुआ करते हैं। वे बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा भगवान्

---

* श्रद्धा धर्मसुता देवी पावनी विश्वभाविनी ॥
सावित्री प्रसवित्री च संसारार्णवतारिणी। श्रद्धया ध्यायते धर्मो विद्वद्भिश्चात्मवादिभिः ॥
निष्किञ्चनास्तु मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः।
(९४। ४४—४६)

श्रीविष्णुका यजन करते हैं। यज्ञोंमें सब प्रकारके दान दिये जाते हैं। उत्तम यज्ञोंमें पहले अन्न और फिर वस्त्र एवं ताम्बूलका दान किया जाता है। इसके बाद सुवर्णदान, भूमिदान और गोदानकी बात कही जाती है। इस प्रकार उत्तम यज्ञ करके राजालोग अपने शुभ कर्मोंके फलस्वरूप विष्णुलोकमें जाते हैं। दानसे तृप्तिलाभ करते और संतुष्ट रहते हैं। अतः राजेन्द्र! आप भी न्यायोपार्जित धनका दान कीजिये। दानसे ज्ञान और ज्ञानसे आपको सिद्धि प्राप्त होगी।

जो मनुष्य इस उत्तम और पवित्र आख्यानका श्रवण करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें जायगा।

**सुबाहुने पूछा**—ब्रह्मन्! मनुष्य किस दुष्कर्मसे नरकमें पड़ते हैं और किस शुभकर्मके प्रभावसे स्वर्गमें जाते हैं? यह बात मुझे बताइये।

**जैमिनिने कहा**—जो द्विज लोभसे मोहित हो पावन ब्राह्मणत्वका परित्याग करके कुकर्मसे जीविका चलाते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो नास्तिक हैं, जिन्होंने धर्मकी मर्यादा भङ्ग की है; जो काम-भोगके लिये उत्कण्ठित, दाम्भिक और कृतघ्न हैं; जो ब्राह्मणोंको धन देनेकी प्रतिज्ञा करके भी नहीं देते, चुगली खाते, अभिमान रखते और झूठ बोलते हैं; जिनकी बातें परस्पर विरुद्ध होती हैं; जो दूसरोंका धन हड़प लेते, दूसरोंपर कलङ्क लगानेके लिये उत्सुक रहते और परायी सम्पत्ति देखकर जलते हैं, वे नरकमें जाते हैं। जो मनुष्य सदा प्राणियोंके प्राण लेनेमें लगे रहते, परायी निन्दामें प्रवृत्त होते; कुएँ, बगीचे, पोखरे और पौंसलेको दूषित करते; सरोवरोंको नष्ट-भ्रष्ट करते तथा शिशुओं, भृत्यों और अतिथियोंको भोजन दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं; जिन्होंने पितृयाग (श्राद्ध) और देवयाग (यज्ञ)का त्याग कर दिया है, जो संन्यास तथा अपने रहनेके आश्रमको कलङ्कित करते हैं और मित्रोंपर लाच्छन लगाते हैं, वे सब-के-सब नरकगामी होते हैं।

जो प्रयाज नामक यज्ञों, शुद्ध चित्तवाली कन्याओं, साधु पुरुषों और गुरुजनोंको दूषित करते हैं; जो काठ, कील, शूल अथवा पत्थर गाड़कर रास्ता रोकते हैं, कामसे पीड़ित रहते और सब वर्णोंके यहाँ भोजन कर लेते हैं तथा जो भोजनके लिये द्वारपर आये हुए जीविकाहीन ब्राह्मणोंकी अवहेलना करते हैं, वे नरकोंमें पड़ते हैं। जो दूसरोंके खेत, जीविका, घर और प्रेमको नष्ट करते हैं; जो हथियार बनाते और धनुष-बाणका विक्रय करते हैं; जो मूढ़ मानव अनाथ, वैष्णव, दीन, रोगातुर और वृद्ध पुरुषोंपर दया नहीं करते तथा जो पहले कोई नियम लेकर फिर संयमहीन होनेके कारण चञ्चलतावश उसका परित्याग कर देते हैं, वे नरकगामी होते हैं।

अब मैं स्वर्गगामी पुरुषोंका वर्णन करूँगा। जो मनुष्य सत्य, तपस्या, ज्ञान, ध्यान तथा स्वाध्यायके द्वारा धर्मका अनुसरण करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो प्रतिदिन हवन करते तथा भगवान्‌के ध्यान और देवताओंके पूजनमें संलग्न रहते हैं, वे महात्मा स्वर्गलोकके अतिथि होते हैं। जो बाहर-भीतरसे पवित्र रहते, पवित्र स्थानमें निवास करते, भगवान् वासुदेवके भजनमें लगे रहते तथा भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुकी शरणमें जाते हैं; जो सदा आदरपूर्वक माता-पिताकी सेवा करते और दिनमें नहीं सोते; जो सब प्रकारकी हिंसासे दूर रहते, साधुओंका सङ्ग करते और सबके हितमें संलग्न रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो गुरुजनोंकी सेवामें संलग्न, बड़ोंको आदर देनेवाले, दान न लेनेवाले, सहस्रों मनुष्योंको भोजन परोसनेवाले, सहस्रों मुद्राओंका दान करनेवाले तथा सहस्रों मनुष्योंको दान देनेवाले हैं, वे पुरुष स्वर्गलोकको जाते हैं। जो युवावस्थामें भी क्षमाशील और जितेन्द्रिय हैं; जिनमें वीरता भरी है; जो सुवर्ण, गौ, भूमि, अन्न और वस्त्रका दान करते हैं; जो अपनेसे द्वेष रखनेवालोंके भी दोष कभी नहीं कहते, बल्कि उनके गुणोंका ही वर्णन करते हैं; जो विज्ञ पुरुषोंको देखकर प्रसन्न होते, दान देकर प्रिय वचन बोलते तथा दानके फलकी इच्छाका परित्याग कर देते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो पुरुष प्रवृत्ति-मार्गमें तथा निवृत्तिमार्गमें भी मुनियों और शास्त्रोंके कथनानुसार ही आचरण करते हैं, वे स्वर्गलोकके अतिथि होते हैं।

जो मनुष्योंसे कटु वचन बोलना नहीं जानते, जो प्रिय वचन बोलनेके लिये प्रसिद्ध हैं; जिन्होंने बावली, कुआँ, सरोवर, पौंसला, धर्मशाला और बगीचे बनवाये हैं; जो मिथ्यावादियोंके लिये भी सत्यपूर्ण बर्ताव करनेवाले और कुटिल मनुष्योंके लिये भी सरल हैं, वे दयालु तथा सदाचारी मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं।

जो एकमात्र धर्मका अनुष्ठान करके अपने प्रत्येक दिवसको सदा सफल बनाते हैं तथा नित्य ही व्रतका पालन करते हैं; जो शत्रु और मित्रकी समान भावसे सराहना करते और सबको समान दृष्टिसे देखते हैं; जिनका चित्त शान्त है, जो अपने मनको वशमें कर चुके हैं, जिन्होंने भयसे डरे हुए ब्राह्मणों तथा स्त्रियोंकी रक्षाका नियम ले रखा है; जो गङ्गा, पुष्कर तीर्थ और विशेषतः गयामें पितरोंको पिण्ड-दान करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो इन्द्रियोंके वशमें नहीं रहते, जिनकी संयममें प्रवृत्ति है; जिन्होंने लोभ, भय और क्रोधका परित्याग कर दिया है; जो शरीरमें पीड़ा देनेवाले जूँ, खटमल और डाँस आदि जन्तुओंका भी पुत्रकी भाँति पालन करते हैं—उन्हें मारते नहीं; सर्वदा मन और इन्द्रियोंके निग्रहमें लगे रहते हैं और परोपकारमें ही जीवन व्यतीत करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकके अतिथि होते हैं। जो विशेष विधिके अनुसार यज्ञोंका अनुष्ठान करते, सब प्रकारके द्वन्द्वोंको सहते तथा इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं; जो पवित्र और सत्त्वगुणमें स्थित रहकर मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा भी कभी परायी स्त्रियोंके साथ रमण नहीं करते; निन्दित कर्मोंसे दूर रहते, विहित कर्मोंका अनुष्ठान करते तथा आत्माकी शक्तिको जानते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं।

जो दूसरोंके प्रतिकूल आचरण करता है, उसे अत्यन्त दुःखदायी घोर नरकमें गिरना पड़ता है तथा जो सदा दूसरोंके अनुकूल चलता है, उस मनुष्यके लिये सुखदायिनी मुक्ति दूर नहीं है। राजन्! कर्मोंद्वारा जिस प्रकार दुर्गति और सुगति प्राप्त होती है, वह सब मैंने तुम्हें यथार्थरूपसे बतला दिया।

**कुञ्जल कहता है**—धर्म-अधर्मकी सम्पूर्ण गतिके विषयमें महर्षि जैमिनिका भाषण सुनकर राजा सुबाहुने कहा—'द्विजश्रेष्ठ! मैं भी धर्मका ही अनुष्ठान करूँगा, पापका नहीं। जगत्की उत्पत्तिके स्थानभूत भगवान् वासुदेवका निरन्तर भजन करूँगा।'

इस निश्चयके अनुसार राजा सुबाहुने धर्मके द्वारा भगवान् मधुसूदनका पूजन किया तथा नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्की आराधना करके तथा सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर वे शीघ्र ही प्रसन्नतापूर्वक विष्णुलोकको पधार गये।

★

## कुञ्जलका अपने पुत्र विज्वलको श्रीवासुदेवाभिधान-स्तोत्र सुनाना

तदनन्तर वक्ताओंमें श्रेष्ठ कुञ्जलने विज्वलको परम पवित्र श्रीवासुदेवाभिधान-स्तोत्रका उपदेश किया—

इस श्रीवासुदेवाभिधान-स्तोत्रके अनुष्टुप् छन्द, नारद ऋषि और ओंकार देवता हैं; सम्पूर्ण पातकोंके नाश तथा चतुर्वर्गकी सिद्धिके लिये इसका विनियोग है।* **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**—यही इस स्तोत्रका मूलमन्त्र है।†

‡ जो परम पावन, पुण्यस्वरूप, वेदके ज्ञाता,

---

* ॐ अस्य श्रीवासुदेवाभिधानस्तोत्रस्यानुष्टुप् छन्दः, नारद ऋषिः, ओंकारो देवता, सर्वपातकनाशाय चतुर्वर्गसाधने च विनियोगः।

† 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इति मन्त्रः। (९८। ३८)

‡ परमं पावनं पुण्यं वेदज्ञं वेदमन्दिरम्। विद्याधारं मखाधारं प्रणवं तं नमाम्यहम्॥
निरावासं निराकारं सुप्रकाशं महोदयम्। निर्गुणं गुणकर्तारं नमामि प्रणवं परम्॥
गायत्रीसाम गायन्तं गीतज्ञं गीतसुप्रियम्। गन्धर्वगीतभोक्तारं प्रणवं तं नमाम्यहम्॥

वेदमन्दिर, विद्याके आधार तथा यज्ञके आश्रय हैं, उन प्रणवस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो आवास (गृह) और आकारसे रहित, उत्तम प्रकाशरूप, महान् अभ्युदयशाली, निर्गुण तथा गुणोंके उत्पादक हैं, उन प्रणवस्वरूप परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ। जो गायत्री-सामका गान करनेवाले, गीतके ज्ञाता, गीतप्रेमी तथा गन्धर्वगीतका अनुभव करनेवाले हैं, उन प्रणव-स्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ।

---

महाकान्तं महोत्साहं महामोहविनाशनम्। आचिन्वन्तं जगत् सर्वं गुणातीतं नमाम्यहम्॥
भाति सर्वत्र यो भूत्वा भूतानां भूतिवर्धनः। समभावाय सद्धर्मं नमामि प्रणवं परम्॥
विचारं वेदरूपं तं यज्ञाख्यं यज्ञवल्लभम्। योनिं सर्वस्य लोकस्य ओंकारं प्रणमाम्यहम्॥
तारकं सर्वलोकानां नौरूपेण विराजितम्। संसारार्णवमग्नानां नमामि प्रणवं हरिम्॥
वसते सर्वभूतेषु एकरूपेण नैकधा। धामकैवल्यरूपेण नमामि वरदं सुखम्॥
सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं शुद्धं निर्गुणं गुणनायकम्। वर्जितं प्राकृतैर्भावैर्वेदाख्यं तं नमाम्यहम्॥
देवदैत्यवियोगैश्च वर्जितं तुष्टिभिस्तथा। वेदैश्च योगिभिर्ध्येयं तमोङ्कारं नमाम्यहम्॥
व्यापकं विश्ववेत्तारं विज्ञानं परमं पदम्। शिवं शिवगुणं शान्तं वन्दे प्रणवमीश्वरम्॥
यस्य मायां प्रविष्टास्तु ब्रह्माद्याश्च सुरासुराः। न विन्दन्ति परं शुद्धं मोक्षद्वारं नमाम्यहम्॥
आनन्दकन्दाय च केवलाय शुद्धाय हंसाय परावराय। नमोऽस्तु तस्मै गुणनायकाय श्रीवासुदेवाय महाप्रभाय॥
श्रीपाञ्चजन्येन विराजमानं रविप्रभेणापि सुदर्शनेन। गदाख्यकेनापि विशोभमानं विष्णुं सदैवं शरणं प्रपद्ये॥
यं वेद कोशं सुगुणं गुणानामाधारभूतं सचराचरस्य। यं सूर्यवैश्वानरतुल्यतेजसं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
तमोघनानां स्वकरैर्विनाशं करोति नित्यं यतिधर्महेतुम्। उद्योतमानं रवितेजसोर्ध्वं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
सुधानिधानं विमलांशुरूपमानन्दमानेन विराजमानम्। यं प्राप्य जीवन्ति सुरादिलोकास्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
यो भाति सर्वत्र रविप्रभावैः करोति शोषं च रसं ददाति। यः प्राणिनामन्तरगः स वायुस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
ज्येष्ठस्तु रूपेण स देवदेवो बिभर्ति लोकान् सकलान् महात्मा। एकार्णवे नौरिव वर्तते यस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
अन्तर्गतो लोकमयः सदैव भवत्यसौ स्थावरजङ्गमानाम्। स्वाहामुखो देवगणस्य हेतुस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
रसैः सुपुण्यैः सकलैस्तु पुष्टः ससौम्यरूपैर्गुणवित् स लोके। रत्नाधिपो निर्मलतेजसैव तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
अस्त्येव सर्वत्र विनाशहेतुः सर्वाश्रयः सर्वमयः स सर्वः। विना हृषीकैर्विषयान् प्रभुङ्क्ते तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
तेजःस्वरूपेण बिभर्ति लोकान् सत्त्वान् समस्तान् स चराचरस्य। निष्केवलो ज्ञानमयः सुशुद्धस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
दैत्यान्तकं दुःखविनाशमूलं शान्तं परं शक्तिमयं विशालम्। संप्राप्य देवा विलयं प्रयान्ति तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
सुखं सुखाप्तं सुहृदं सुरेशं ज्ञानार्णवं तं सुहितं हितं च। सत्याश्रयं सत्यगुणोपविष्टं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
यज्ञस्वरूपं पुरुषार्थरूपं सत्यान्वितं मापतिमेव पुण्यम्। विज्ञानमेतं जगतां निवासं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
अम्भोधिमध्ये शयनं हि यस्य नागाङ्गभोगे शयने विशाले। श्रीः पादपद्मद्वयमेव सेवते तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
पुण्यान्वितं शङ्करमेव नित्यं तीर्थैरनेकैः परिसेव्यमानम्। तत्पादपद्मद्वयमेव तस्य श्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम्॥
अघापहं वा यदि वाम्बुजं तद्रक्तोत्पलाभं ध्वजवायुयुक्तम्। अलंकृतं नूपुरमुद्रिकाभिः श्रीवासुदेवस्य नमामि पादम्॥
देवैस्तु सिद्धैर्मुनिभिः सदैव नुतं सुभक्त्या भुजगाधिपैश्च। तत्पादपङ्केरुहमेव पुण्यं श्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम्॥
यस्यापि पादाम्भसि मज्जमानाः पूतं दिवं यान्ति विकल्मषास्ते। मोक्षं लभन्ते मुनयः सुतुष्टास्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥
पादोदकं तिष्ठति यत्र विष्णोर्गङ्गादितीर्थानि सदैव तत्र। पिबन्ति येऽद्यापि सपापदेहाः प्रयान्ति शुद्धाः सुगृहं मुरारेः॥
पादोदकेनाप्यभिषिच्यमाना अत्युग्रपापैः परिलिप्तदेहाः। ते यान्ति मुक्तिं परमेश्वरस्य तस्यैव पादौ सततं नमामि॥
नैवेद्यमात्रेण सुभक्षितेन सुचक्रिणस्तस्य महात्मनश्च। ते वाजपेयस्य फलं लभन्ते सर्वार्थयुक्ताश्च नरा भवन्ति॥
नारायणं दुःखविनाशनं तं मायाविहीनं सकलं गुणज्ञम्। यं ध्यायमानाः सुगतिं व्रजन्ति तं वासुदेवं सततं नमामि॥

यो वन्द्यस्त्वृषिसिद्धचारणगणैर्दैवैः सदा पूज्यते यो विश्वस्य हि सृष्टिहेतुकरणे ब्रह्मादिकानां प्रभुः।
यः संसारमहार्णवे निपतितस्योद्धारको वत्सलस्तस्यैवापि नमाम्यहं सुचरणौ भक्त्या वरौ साधकौ॥
यो दृष्टो निजमण्डपेऽसुरगणैः श्रीवामनः सामगः सामोद्गीतकुतूहलःसुरगणैस्त्रैलोक्य एकः प्रभुः।
कुर्वस्तु ध्वनितैः स्वकैर्गतभयान् यः पापभीतान् रणे तस्याहं चरणारविन्दयुगलं वन्दे परं पावनम्॥

जो महान् कान्तिमान्, अत्यन्त उत्साही, महामोहके नाशक, सम्पूर्ण जगत्में व्यापक तथा गुणातीत हैं; जो सर्वत्र विद्यमान रहकर शोभायमान हो रहे हैं, प्राणियोंके ऐश्वर्य एवं कल्याणकी वृद्धि करते हैं तथा समताका भाव उत्पन्न करनेके लिये सद्धर्मका प्रसार करनेवाले हैं, उन प्रणवरूप परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो विचारक हैं, वेद जिनका स्वरूप है, जो 'यज्ञ' के नामसे पुकारे जाते हैं, यज्ञ जिन्हें अत्यन्त प्रिय है, जो सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्तिके स्थान तथा समस्त जगत्का उद्धार करनेवाले हैं; संसार-सागरमें डूबे हुए प्राणियोंको बचानेके लिये जो नौकारूपसे विराजमान हैं, उन प्रणवस्वरूप श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सम्पूर्ण भूतोंमें निवास करते हैं, नाना रूपोंमें प्रतीत होते हुए भी एक रूपसे विराजमान हैं तथा जो परमधाम और कैवल्य (मोक्ष)के रूपमें प्रतिष्ठित हैं, उन सुखस्वरूप वरदाता भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ।

जो सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, शुद्ध, निर्गुण, गुणोंके नियन्ता और प्राकृत भावोंसे रहित हैं, उन वेदसंज्ञक परमात्माको नमस्कार करता हूँ। जो देवताओं और दैत्योंके वियोगसे वर्जित (सर्वदा सबसे संयुक्त), तुष्टियोंसे रहित तथा वेदों और योगियोंके ध्येय हैं, उन ॐकारस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। व्यापक, विश्वके ज्ञाता, विज्ञानस्वरूप, परमपदरूप, शिव, कल्याणमय गुणोंसे युक्त, शान्त एवं प्रणवरूप ईश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनकी मायाके प्रभावमें आकर ब्रह्मा आदि देवता और असुर भी उनके परम शुद्ध रूपको नहीं जानते तथा जो मोक्षके द्वार हैं, उन परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ।

जो आनन्दके मूलस्रोत, केवल (अद्वितीय) तथा शुद्ध हंसस्वरूप हैं; कार्य-कारणमय जगत् जिनका स्वरूप है; जो गुणोंके नियन्ता तथा महान् प्रभा-पुञ्जसे परिपूर्ण हैं, उन श्रीवासुदेवको नमस्कार है। जो पाञ्चजन्य नामक शङ्ख और सूर्यके समान तेजस्वी सुदर्शन चक्रसे विराजमान हैं तथा कौमोदकी गदा जिनकी शोभा बढ़ा रही है, उन भगवान् श्रीविष्णुकी मैं सदा शरण लेता हूँ। जो उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हैं, जिन्हें गुणोंका कोश माना जाता है, जो चराचर जगत्के आधार तथा सूर्य एवं अग्निके समान तेजस्वी हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो अपने प्रकाशकी किरणोंसे अविद्याके बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देते हैं, संन्यास-धर्मके प्रवर्तक हैं तथा सूर्यके समान तेजसे सबसे ऊँचे लोकमें प्रकाशित होते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो चन्द्रमाके रूपमें अमृतके भंडार हैं, आनन्दकी मात्रासे जिनकी विशेष शोभा हो रही है, देवताओंसे लेकर सम्पूर्ण जीव जिनका आश्रय पाकर ही जीवन धारण करते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो सूर्यके रूपमें सर्वत्र विराजमान रहकर पृथ्वीके रसको सोखते और पुनः नवीन रसकी वृष्टि करते हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर प्राणरूपसे व्याप्त हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो महात्मा स्वरूपसे सबकी अपेक्षा ज्येष्ठ हैं, देवताओंके भी आराध्य देव हैं, सम्पूर्ण लोकोंका पालन करते हैं तथा प्रलयकालीन जलमें नौकाकी भाँति स्थित रहते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो स्थावर और जङ्गम—सभी प्राणियोंके भीतर निवास करते हैं, स्वाहा जिनका मुख है तथा जो देववृन्दकी उत्पत्तिके कारण हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो सब प्रकारके परम पवित्र रसोंसे परिपुष्ट और शान्तिमय रूपोंसे युक्त हैं, संसारमें गुणज्ञ माने जाते हैं, रत्नोंके अधीश्वर हैं और निर्मल तेजसे शोभा पाते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं

---

राजन्तं द्विजमण्डले मखमुखे ब्रह्मश्रिया पूजितं दिव्येनापि सुतेजसा करमयं यं चेन्द्रनीलोपमम्।
देवानां हितकाम्यया सुतनुजं वैरोचनस्यार्पकं याचन्तं मम दीयतां त्रिपदकं वन्दे परं वामनम्॥
तं दृष्टं रविमण्डले मुनिगणैः सम्प्राप्तवन्तं दिवं चन्द्रार्कौ तु तपन्तमेव सहसा सम्प्राप्तवन्तौ सदा।
तस्यैवापि सुचक्रिणः सुरगणाः प्रापुर्लयं साम्प्रतं काये विश्वविकोशके तमतुलं भौमि प्रभोर्विक्रमम्॥

(९८। ३९—७७)

शरण लेता हूँ। जो सर्वत्र विद्यमान, सबकी मृत्युके हेतु, सबके आश्रय, सर्वमय तथा सर्वस्वरूप हैं, जो इन्द्रियोंके बिना ही विषयोंका अनुभव करते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो अपने तेजोमय स्वरूपसे समस्त लोकों तथा चराचर जगत्के सम्पूर्ण जीवोंका पालन करते हैं तथा केवल ज्ञान ही जिनका स्वरूप है, उन परम शुद्ध भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ।

जो दैत्योंका अन्त करनेवाले, दुःख-नाशके मूल कारण, परम शान्त, शक्तिशाली और विराट्रूपधारी हैं; जिनको पाकर देवता भी मुक्त हो जाते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो सुखस्वरूप और सुखसे पूर्ण हैं, सबके अकारण प्रेमी हैं, जो देवताओंके स्वामी और ज्ञानके महासागर हैं, जो परम हितैषी, कल्याणस्वरूप, सत्यके आश्रय और सत्त्व गुणमें स्थित हैं, उन भगवान् वासुदेवका मैं आश्रय लेता हूँ। यज्ञ और पुरुषार्थ जिनके रूप हैं; जो सत्यसे युक्त, लक्ष्मीके पति, पुण्यस्वरूप, विज्ञानमय तथा सम्पूर्ण जगत्के आश्रय हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो क्षीर-सागरके बीचमें शेषनागकी विशाल शय्यापर शयन करते हैं तथा भगवती लक्ष्मी जिनके युगल चरणारविन्दोंकी सेवा करती रहती हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। श्रीवासुदेवके दोनों चरण-कमल पुण्यसे युक्त, सबका कल्याण करनेवाले तथा सर्वदा अनेकों तीर्थोंसे सुसेवित हैं, मैं उन्हें प्रतिदिन प्रणाम करता हूँ। श्रीवासुदेवका चरण समस्त पापोंको हरनेवाला है, वह लाल कमलकी शोभा धारण करता है; उसके तलवेमें ध्वजा और वायुके चिह्न हैं; वह नूपुरों तथा मुद्रिकाओंसे विभूषित है। ऐसी सुषमासे युक्त भगवान् वासुदेवके चरणको मैं प्रणाम करता हूँ। देवता, उत्तम सिद्ध, मुनि तथा नागराज वासुकि आदि जिसका भक्तिपूर्वक सदा ही स्तवन करते हैं, श्रीवासुदेवके उस पवित्र चरणकमलको मैं प्रतिदिन प्रणाम करता हूँ। जिनकी चरणोदकस्वरूपा गङ्गाजीमें गोते लगानेवाले प्राणी पवित्र एवं निष्पाप होकर स्वर्गलोकको जाते हैं तथा परम संतुष्ट मुनिजन उसमें अवगाहन करके मोक्ष प्राप्त करते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जहाँ भगवान् श्रीविष्णुका चरणोदक रहता है, वहाँ गङ्गा आदि तीर्थ सदैव मौजूद रहते हैं; आज भी जो लोग उसका पान करते हैं, वे पापी रहे हों तो भी शुद्ध होकर श्रीविष्णुभगवान्के उत्तम धामको जाते हैं। जिनका शरीर अत्यन्त भयंकर पाप-पङ्कमें सना है, वे भी जिनके चरणोदकसे अभिषिक्त होनेपर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, उन परमेश्वरके युगलचरणोंको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ। उत्तम सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले महात्मा श्रीविष्णुके नैवेद्यका भक्षण करनेमात्रसे मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करते हैं तथा सम्पूर्ण पदार्थ पा जाते हैं। दुःखोंका नाश करनेवाले, मायासे रहित, सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त तथा समस्त गुणोंके ज्ञाता जिन भगवान् नारायणका ध्यान करके मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं, उन श्रीवासुदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूँ।

जो ऋषि, सिद्ध और चारणोंके वन्दनीय हैं; देवगण सदा जिनकी पूजा करते हैं, जो संसारकी सृष्टिका साधन जुटानेमें ब्रह्मा आदिके भी प्रभु हैं, संसाररूपी महासागरमें गिरे हुए जीवका जो उद्धार करनेवाले हैं, जिनमें वत्सलता भरी हुई है, जो श्रेष्ठ और समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाले हैं; उन भगवान्के उत्तम चरणोंको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ। जिन्हें असुरोंने अपने यज्ञमण्डपमें देवताओंसहित सामगान करते हुए वामन ब्रह्मचारीके रूपमें देखा था, जो सामगानके लिये उत्सुक रहते हैं, त्रिलोकीके जो एकमात्र स्वामी हैं तथा युद्धमें पाप या मृत्युसे डरे हुए आत्मीयजनोंको जो अपनी ध्वनिमात्रसे निर्भय बना देते हैं, उन भगवान्के परम पावन युगल चरणारविन्दोंकी मैं वन्दना करता हूँ। जो यज्ञके मुहानेपर विप्र-मण्डलीमें खड़े हो अपने ब्राह्मणोचित तेजसे देदीप्यमान एवं पूजित हो रहे हैं, दिव्य तेजके कारण किरणोंके समूह-से जान पड़ते हैं तथा इन्द्रनील मणिके समान दिखायी देते हैं, जो देवताओंके हितकी इच्छासे विरोचनके दानी पुत्र बलिके समक्ष 'मुझे तीन पग भूमि दीजिये।' ऐसा कहकर

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

याचना करते हैं, उन श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीवामनजीको मैं प्रणाम करता हूँ। भगवान्‌ने जब वामनसे विराट्‌रूप होकर अपना पैर बढ़ाया, तब उनका विक्रम (विशाल डग) आकाशको आच्छादित करके सहसा तपते हुए सूर्य और चन्द्रमातक पहुँच गया; इस बातको सूर्यमण्डलमें स्थित हुए मुनिगणोंने भी देखा। फिर उन चक्रधारी भगवान्‌के विराट्‌रूपमें, जो समस्त विश्वका खजाना है, सम्पूर्ण देवता भी लीन हो गये। भगवान् वामनके उस विक्रमकी कहीं तुलना नहीं है, मैं इस समय उस विक्रमका स्तवन करता हूँ।

**भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं**—राजन्! इस प्रकार यह सारा वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया।

कुञ्जल पक्षी तथा महात्मा च्यवनका चरित्र नाना प्रकारकी कल्याणमयी वार्ताओंसे युक्त है। मैं इसका वर्णन करूँगा, तुम सुनो।

## कुञ्जल पक्षी और उसके पुत्र कपिञ्जलका संवाद—कामोदाकी कथा और विहुण्ड दैत्यका वध

**भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं**—धर्मात्मा कुञ्जलने अपने चौथे पुत्र कपिञ्जलको पुकार कर बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—'बेटा! तुम मेरे उत्तम पुत्र हो; बोलो, आहार लानेके लिये यहाँसे किस स्थानपर जाते हो? वहाँ तुमने कौन-सी अपूर्व बात देखी अथवा सुनी है? वह मुझे बताओ।'

**कपिञ्जलने कहा**—पिताजी! मैंने जो अपूर्व बात देखी है, उसे बताता हूँ, सुनिये। कैलास सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ है। उसकी कान्ति चन्द्रमाके समान श्वेत है। वह नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त है। भाँति-भाँतिके वृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते हैं। गङ्गाजीका शुभ्र एवं पावन जल सब ओरसे उस पर्वतको नहलाता रहता है। वहाँसे सहस्रों विख्यात नदियोंका प्रादुर्भाव हुआ है। उस पर्वत-शिखरपर भगवान् शिवका मन्दिर है, जहाँ कोटि-कोटि शिवगण भरे रहते हैं। पिताजी! एक दिन मैं उसी कैलासपर, जो शङ्करजीका घर है, गया था। वहाँ मुझे एक ऐसा आश्चर्य दिखायी दिया, जो पहले कभी देखने या सुननेमें नहीं आया था। मैं उस अद्भुत घटनाका वर्णन करता हूँ, सुनिये। गिरिराज मेरुका पवित्र शिखर महान् अभ्युदयसे युक्त है; वहाँसे हिम और दूधके समान रंगवाला गङ्गानदीका प्रवाह बड़े वेगसे पृथ्वीकी ओर गिरता है। वह स्रोत कैलासके शिखरपर पहुँचकर सब ओर फैल जाता है। उस जलसे दस योजनका लंबा-चौड़ा एक भारी तालाब बन गया है, उसे 'गङ्गाह्रद' कहते हैं। वह तालाब परम पवित्र और निर्मल जलसे सुशोभित है।

महामते! गङ्गाह्रदके सामने ही शिलाके ऊपर एक कन्या बैठी थी, जिसके केश खुले थे। रूपके वैभवसे

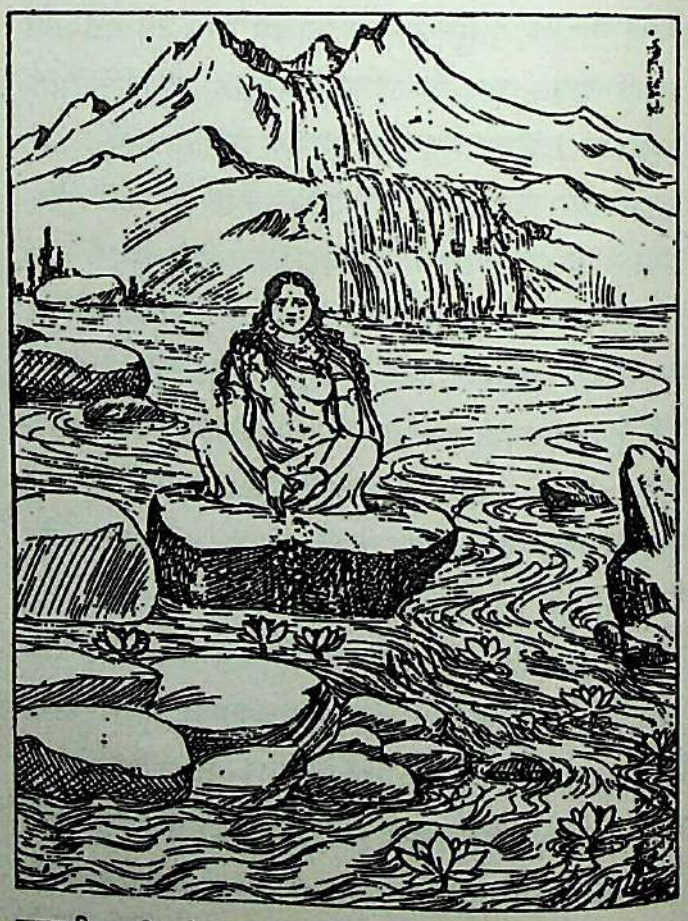

उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह कन्या दिव्य रूप और सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। उसने दिव्य आभूषण धारण कर रखे थे। उस स्थानपर वह बड़ी शोभासम्पन्न दिखायी देती थी। पता नहीं, वह